वर्ष 38, अंक 4-5, जुलाई-अक्टूबर, 2015

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

दसवां विश्व हिंदी सम्मेलन विशेषांक

१०वां विश्व हिन्दी सम्मेलन
१०-१२ सितंबर, २०१५
भोपाल, भारत

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (डी.ए.)	:	23370784
उप-महानिदेशक (एन.के.)	:	23370228
निदेशक (जे.के.)	:	23370794 23379249
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23370227
भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23370633
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1 अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370391
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स.-3388, 3347

प्रकाशक
सतीश चंद मेहता
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली

संपादक
अशोक चक्रधर

सह-संपादक
आलोक पुराणिक (कथ्य)
महेश्वर (कला एवं सज्जा)
राजीव वत्स (पाठ शोधन)

आवरण : शुभाशीष रॉय

प्रबंध संपादक
पदम तलवार

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इन्द्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110 002

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिये आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अत: प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	`	500
		US $	100
त्रैवार्षिक	:	`	1200
		US $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
www.iccr.gov.in/jaornals/hindi-journals
पर क्लिक करें।

मुद्रक : सीता फाइन आर्ट्स प्रा. लि.
नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

गगनांचल

जुलाई-अक्टूबर 2015

अनुक्रम

संपादकीय : इस 'गगनांचल' के आंचल में

हिंदी गीत

सोम ठाकुर : **अभिनंदन अपनी संस्कृति का** / 10
डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी : **हिंदी हम सबकी परिभाषा** / 15
डॉ. कुंअर बेचैन : **है प्यार की भाषा हिंदी** / 28
मनोरंजन भारती : **हिंदी मातु हमारी** / 33
डॉ. मृदुला सिन्हा : **हिंदी भारत मां की बिंदी** / 74
केशरी नाथ त्रिपाठी : **बहने लगी पुरवाई रे / 79**
नरेश शांडिल्य : **हिंदी का सम्मान बढ़ाएंगे** / 153
पवन दीक्षित : **जां मेरी हिंदी, मां मेरी हिंदी** / 206
गजेन्द्र सोलंकी : **हिंदी पावन गंगा** / 211

भाषा और संस्कृति

संस्कृति की संवाहिका है हिंदी / 16
डॉ. मृदुला सिन्हा

वैश्विक पटल

विश्व में हिंदी और भारतीय संस्कृति / 19
वीरेन्द्र गुप्ता

भारत के भाषाई राजदूत / 22
डॉ. पुनीत बिसारिया

विश्व हिंदी सम्मेलन : अपेक्षाओं का परिप्रेक्ष्य / 25
डॉ. सूरज पालीवाल

बोलियां / आंचलिक भाषाएं / हिंदीतर क्षेत्र

हिंदी है एक भाषा-समष्टि / 29
डॉ. विमलेश कांति वर्मा

छत्ते का अमृत कोश / 32
प्रो. हनुमान प्रसाद शुक्ल

'इतर' और 'भिन्न' / 35
डॉ. रंजना अरगडे

हिन्दी की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा / 38
डॉ. महावीर शरण जैन

मणिपुरी का अन्य भाषाओं से संवाद / 41
डॉ. देवराज

हिंदी संस्थाएं

हिंदी नदी के कुछ पक्के घाट / 44
डॉ. बीर पाल सिंह यादव

रग-रग हिंदी पग-पग हिंदी / 48
प्रो. महेन्द्र सिंह राणा

कोश विज्ञान

मैं छापे खाने में काम कर चुका था / 51
अरविन्द कुमार

भारत की विदेश नीति में हिंदी

नियोजन, कार्यान्वयन में हिंदी की भूमिका / 54
नारायण कुमार

विदेशों में हिंदी की हलचल

मॉरीशस में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के 115 वर्ष / 57
डॉ. जवाहर कर्नावट

अकेलापन मिटाती हिंदी / 60
स्नेह ठाकुर

हिंदी के जहां और भी हैं / 62
राकेश पांडे

यादों की परछाइयां, वर्तमान की देहरी तक / 64
डॉ. सुनीति शर्मा

भाषा का इतिहास चिंतन

उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम की हिंदी / 67
डॉ. योगेन्द्र नाथ अरुण

इतिहास पर बात करने के सूत्र / 70
डॉ. देवेन्द्र चौबे

हिंदी में शब्द विन्यास और भाषा शैली का विकास / 72
संगीत वर्मा

अनुवाद

भाषाई सद्भावना की संतान / 75
डॉ. शिब्बन कृष्ण रैना

रागात्मक अनुभवों की साझेदारी / 77
डॉ. विद्या विन्दु सिंह

गिरमिटिया हिंदी

जहाजी चालीसा / 80
डॉ. प्रेम जनमेजय

अभिमन्यु अनत : मेरे दोस्त / 82
डॉ. कमल किशोर गोयनका

सारे जग में प्यारा सूरीनाम हमारा / 85
डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव

मन पर बृहत्तर भारत का चित्र / 88
कैलाश चन्द्र पंत

मीडिया

मीडिया में हिंदी का बदलता स्वरूप / 90
सुभाष सेतिया

ये आकाशवाणी है, अब आप... / 92
राजेन्द्र उपाध्याय

बाजारोन्मुख भाषाई परिदृश्य / 95
डॉ. कुमुद शर्मा

भाषा के लिए बेचैनी होनी चाहिए / 97
पुण्य प्रसून वाजपेयी

हिंदी के नाम पर कुछ मीठा हो जाए / 99
डॉ. वर्तिका नन्दा

हिंदी संक्रमण के दौर में / 101
डॉ. प्रीति सागर

बिज़नेस मीडिया की खास भाषा हिंदी / 103
डॉ. आलोक पुराणिक

हिंदी का विस्तार पाता विश्व / 105
डॉ. प्रकाश बरतूनिया

हिंदीतर राज्यों में हिंदी पत्रकारिता / 108
डॉ. सीता लक्ष्मी

कविसम्मेलन

मंच की कविता और कविता का मंच / 111
डॉ. रश्मि

वाचिक कविता क्षितिज के पार / 115
डॉ. प्रवीण शुक्ल

नाटक

ये आठ तो सदाबहार हैं / 118
डॉ. देवेन्द्र राज अंकुर

हिंदी शिक्षण दक्षिण भारत में

हिन्दी कल आज और कल / 121
प्रो. एम. ज्ञानम

महत्वपूर्ण प्रचारक एवं प्रसारक / 124
आचार्य यार्लागड्डा लक्ष्मी प्रसाद

प्रशासनिक प्रयोजनमूलक राजभाषा

साहित्य-वाहित्य पढ़ते-पढ़ाते हैं, वही कीजिए / 127
प्रो. एम. पी. शर्मा

जलाए रखें राजभाषा की लौ / 129
अनंत कुमार सिंह

व्यावहारिक समस्याओं पर पुनर्विचार / 133
शालिनी श्रीवास्तव

सूचना प्रौद्योगिकी

हिंदी की विशुद्ध खुशबू / 135
बालेन्दु दाधीच

बहुत कुछ किया बहुत कुछ बाकी / 139
आदित्य चौधरी

इंडिक लिपियों में अंतर्निहित समानता / 142
डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा

ई-बुक्स का अनूठा संसार / 145
डॉ. वशिनी शर्मा

हर तरफ की हिंदी / 147
डॉ. स्वाति श्वेता

देवनागरी के प्रवाह की राह / 149
एम.एल. गुप्ता 'आदित्य'

बाल जगत

परी कथाएं भी हों और विज्ञान कथाएं भी / 151
डॉ. श्याम सिंह शशि

बच्चों के लिए लिखना परकाया प्रवेश / 154
ओमप्रकाश कश्यप

बाल साहित्य के चार चाँद / 156
डॉ. दिविक रमेश

बच्चों से बतियाती फ़िल्में / 159
डॉ. महेश्वर

पर्यटन

दुनिया की सैर पर हिंदी/ 161
डॉ. रमेश ऋषिकल्प

विधि और न्याय

न्याय प्राप्ति में अंग्रेज़ी व्यवधान / 163
चन्द्रशेखर आश्री

हिंदी सिनेमा और धारावाहिक

बिन्दी रहित हिंदी / 166
अमित राय

हिंदी बहुत बड़े दिल की भाषा है / 169
चित्रा देसाई

हिंदी की बहुरंगी छटाएं / 172
अभिषेक त्रिपाठी

बड़े-बड़े देशों में हिंदी / 174
संजीव श्रीवास्तव

विज्ञान

स्वाधीनता और विकास के संदर्भ / 176
डॉ. चितरंजन मिश्रा

बाल विज्ञान लेखन के आयाम / 179
अशोक मनोरम

अद्भुत प्रतिभा के मानदण्ड : गुणाकर मुले / 181
हिरण्य हिमकर

ज्ञान विज्ञान और रोजगार की भाषा के रूप में हिंदी / 183
पवन जैन

प्रकाशन जगत

समस्याएं बहुत हैं हिंदी प्रकाशकों की / 185
डॉ. ओम निश्चल

हिंदी प्रकाशन जगत की कुछ अपनी समस्याएं / 187
डॉ. लालित्य ललित

पुस्तक व्यवसाय और पुस्तक संस्कृति / 189
डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल

हिंदी प्रकाशन की समस्याएं / 191
प्रभात कुमार

ग्लोबल प्रकाशन : हिंदी और दक्षिण एशिया / 193
अरुण महेश्वरी

पुस्तकें इंसान की सबसे अच्छी मित्र हैं / 195
नरेन्द्र कुमार वर्मा

विदेशों में हिंदी शिक्षण

हिंदी भी और हिंदी समाज भी / 197
प्रो. असगर वजाहत

हिंदी बोली मैं तुम्हारे घर आऊंगी / 199
डॉ. विजया सती

हिंदी नाट्य मंचन : एक शैक्षिक सोपान / 201
डॉ. हरजेन्द्र चौधरी

प्रेमचन्द : एलिन पेलिन के वेष में / 203
प्रो. सत्यकाम

संस्कृति / संगीत

भाषा और संस्कृति की खुशबू नृत्य में / 205
शशिप्रभा तिवारी

इंटरनेट पर हिंदी

सहयात्री हिंदी वेबलिंक्स / 207
रेखा श्रीवास्तव

उपसंहार नहीं प्रस्तावना

'निकष' NIKASH : भाषा दक्षता परीक्षा / 213
प्रो. अशोक चक्रधर

प्रधान मंत्री
Prime Minister

संदेश

मुझे अत्यंत हर्ष है कि 10वें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन 10-12 सितंबर, 2015 को भोपाल, भारत में किया जा रहा है।

आशा है कि सम्मेलन में भाग ले रहे विद्वान हिंदी के माध्यम से भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के प्रसार पथ पर अग्रसर होंगे। साथ ही हिंदी जगत की विस्तार की संभावनाओं को चरम पर पहुँचाने हेतु विचार-विमर्श करेंगे।

10वें विश्व हिंदी सम्मेलन के सफल आयोजन हेतु मेरी बहुत-बहुत शुभकामनाएं।

(नरेन्द्र मोदी)

नई दिल्ली
29 मई, 2015

विदेश मंत्री
एवं प्रवासी भारतीय कार्य मंत्री
भारत
Minister of External Affairs
& Overseas Indian Affairs
India

संदेश

यह बहुत ही हर्ष की बात है कि सर्वप्रथम १९७५ में नागपुर से प्रारंभ करते हुए जोहांसबर्ग में ९वें विश्व हिंदी सम्मेलन का सफलतापूर्वक पड़ाव पार कर १०वां विश्व हिंदी सम्मेलन १०-१२ सितंबर, २०१५ के दौरान मध्य प्रदेश राज्य की राजधानी 'भोपाल' में आयोजित किया जा रहा है। १०वें विश्व हिंदी सम्मेलन का मुख्य विषय "हिंदी जगत-विस्तार एवं संभावनाएं" होगा।

चार दशकों से अधिक समय से विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन का विशेष महत्व है क्योंकि पूरे विश्व में 'हिंदी' ऐसी भाषा है जिस पर वैश्विक पटल पर इतने भव्य तरीके से सम्मेलन का आयोजन किया जाता है इससे सिद्ध हो जाता है कि हिंदी न केवल भारत अपितु विश्व के विभिन्न देशों में अपनी पकड़ एवं पहचान स्थापित करती जा रही है। इस प्रक्रिया ने स्वतः गति नहीं पकड़ी है, इसके लिए देश-विदेश के विद्वानों ने हिंदी के विकास के लिए अथक प्रयास किए हैं और हिंदी को समकालीन परिप्रेक्ष्य में और अधिक सार्थक बनाया है।

१०वां विश्व हिंदी सम्मेलन राजनीति, शिक्षा, संस्कृति, साहित्य, सिनेमा, शासकीय तंत्र तथा विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी जैसे विविध क्षेत्रों के हिंदी प्रेमियों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को प्रोत्साहित करने के लिए विचारों का आदान-प्रदान करने का मंच होगा। इस सम्मेलन में भाग ले रहे देश-विदेश के प्रतिभागियों को भोपाल की ऐतिहासिक धरोहर, सांस्कृतिक विरासत एवं गौरवशाली परंपरा को जानने का भी अवसर मिलेगा। मैं देश-विदेश के हिंदी प्रेमियों को बड़ी संख्या में १०वें विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमंत्रित करती हूँ।

सुषमा स्वराज

(सुषमा स्वराज)

विदेश एवं प्रवासी भारतीय कार्य राज्य मंत्री
सांख्यिकी एवं कार्यक्रम
कार्यान्वयन राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार)
भारत सरकार नई दिल्ली

Minister of State for External Affairs &
Overseas Indian Affairs
Minister of State (Independent Charge)
for Statistics and Programme Implementation
Government of India, New Delhi

संदेश

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि 10-12 सितंबर, 2015 के दौरान 10वां विश्व हिंदी सम्मेलन, मध्य प्रदेश के भोपाल नगर में आयोजित किया जा रहा है।

भारतीय साहित्य, संस्कृति, सामाजिक मूल्यों एवं विविध परंपराओं का प्रतिनिधित्व करती हुई हिंदी वैश्विक ऊंचाइयां छूती जा रही है। हिंदी प्राचीन और आधुनिक युग की खाई को पाटते हुए बहुत तेजी से सूचना एवं प्रौद्योगिकी, विज्ञान और तकनीकी की भाषा और माध्यम के रूप में भी उभर रही है। वाणिज्य के क्षेत्र में भी इस भाषा का उपयोग बढ़ रहा है क्योंकि विदेशी छात्र एवं भारत में कार्यरत विदेशी मल्टीनेशनल कंपनियां कारोबार बढ़ाने के लिए हिंदी को अपना रहे हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत के एक प्रमुख सांस्कृतिक केंद्र – भोपाल में आयोजित किए जा रहे इस 10वें विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान विदेशी तथा भारतीय विद्वानों और विचारकों को हिंदी भाषा के विस्तार से संबंधित विभिन्न विकल्पों पर विचार-विमर्श करने का अच्छा अवसर प्राप्त होगा।

मेरी ओर से इस सम्मेलन की सफलता के लिए शुभकामनाएं।

[जनरल (डॉ.) वी. के. सिंह (सेवानिवृत्त)]

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री

मध्यप्रदेश शासन
भोपाल-462 004

सं.क्र. 336, 31 जुलाई, 2015

संदेश

भारत के हृदय प्रदेश मध्यप्रदेश में आपका स्वागत है

विश्व हिन्दी सम्मेलन 32 वर्ष बाद भारत में हो रहा है। इस अन्तर्राष्ट्रीय दसवें सम्मेलन की मेजबानी के लिये मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल को चुना गया है। यह हमारे लिए हर्ष और गौरव का प्रसंग है।

मध्यप्रदेश एक ओर तीन विश्व स्मारकों, सांची, भीमबैठका और खजुराहो का प्रदेश है तो दूसरी ओर बारह ज्योतिर्लिंगों में से दो महाकाल और ओंकारेश्वर की भूमि वाला राज्य है। उज्जैन में अगले वर्ष महाकुंभ, सिंहस्थ 2016 का आयोजन भी हो रहा है। हमारा प्रयास आने वाले सिंहस्थ को समकालीन सामाजिक सरोकारों के विचार-विमर्श के महाकुंभ के रूप में स्थापित करने का भी है। इस दिशा में गोष्ठियों का सिलसिला शुरू भी हो गया है।

महाकवि केशव, पद्माकर, लोककवि ईसुरी, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान से लेकर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, गिरिजा कुमार माथुर, दुष्यन्त कुमार और कवि प्रदीप जैसे कई साहित्यकारों की लंबी और अटूट परम्परा वाले प्रदेश में आपका आगमन होगा।

विश्व हिन्दी सम्मेलन के सहभागियों का देश की साहित्यिक राजधानी और अध्यात्म की भावभूमि में हार्दिक स्वागत, वंदन, अभिनंदन।

प्रतीक्षा में
(शिवराज सिंह चौहान)

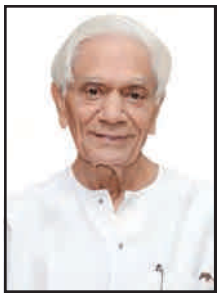

अध्यक्ष की ओर से

हमारे देश की प्रमुख सम्पर्क भाषा हिंदी अब विश्व-व्यापी हो चुकी है। साहित्य से अधिक व्यापार और मनोरंजन के उपक्रमों ने इसे वैश्विक धरातल पर खड़ा किया है। अपने उद्भव के काल से ही मनुष्य अपने संकेतों और अपनी भाषा के प्रति संवेदनशील रहा है। शब्द सीधे हृदय को छूते हैं। शब्द ही हैं जो हमें आमने-सामने लाकर हमारे अंदर के मनोजगत् की भावतंत्री को उद्वेलित कर देते हैं। शब्द ही हैं जो राग और द्वेष की परिधियां बढ़ाते और घटाते हैं।

हिंदी को प्रेम की भाषा का अलंकरण मिला हुआ है। भक्तिकाल से लेकर अब तक हमारे कानों में हिंदी के शब्दों के सांस्कृतिक घुंघुरू बज रहे हैं। जहां एक ओर दिव्यचक्षु कवि सूरदास की वीणा के साथ पद गायन हमारे अंतःकरण को शांति और आह्लाद से भर देता है वहीं दूसरी ओर मानस की चौपाइयां अवधी भाषा का उदात्त तत्व समाज को सौंपती है। लोकभाषाओं और बोलियों ने हिंदी को समृद्ध किया है।

विश्व हिंदी सम्मेलनों के नौ उत्सव सम्पन्न हो चुके हैं, जिनमें हिंदी को विश्व मंच पर स्थापित करने के प्रयत्नों को लेकर चर्चाएं और परिचर्चाएं हुई। अब यह जो दसवां विश्व हिन्दी सम्मेलन होने जा रहा है, इसमें हमारा बल इस बात पर है कि साहित्येतर क्षेत्रों में हिंदी का संवर्धन कैसे हो।

मुझे प्रसन्नता है कि भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का मुखपत्र गगनांचल इस बार सम्मेलन केन्द्रित विशेषांक है। मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि यह अंक न केवल सामग्री की दृष्टि से पठनीय होगा बल्कि इसकी साज-सज्जा भी सुरुचिपूर्ण होगी और हिंदी के प्रेमियों को संग्रहणीय लगेगा। मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

(प्रो. लोकेश चन्द्र)

अध्यक्ष

भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

प्रकाशक की ओर से

मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल पूरे देश के हृदय में स्थित है। साहित्य, संस्कृति और कलाओं का गढ़ है यह नगर। ताल-तलैयों की इस नगरी में इस बार 10 सितम्बर से 12 सितम्बर तक दसवां विश्व हिंदी सम्मेलन होने जा रहा है। दुनियाभर से हिंदी भाषी, हिंदी प्रेमी और हिंदी का उन्नयन करने वाले विद्वज्जन यहां एकजुट होंगे। आपसी संवाद बढ़ाने का अवसर मिलेगा और वैश्विक स्तर पर हिंदी के विस्तार की संभावनाओं के विषय में सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक स्तर पर चिंतन-विमर्श किए जाएंगे।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् इस सम्मेलन के बहुआयामी कार्यों में संलग्न है। 'गगनांचल' का यह संयुक्तांक दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन के विशेषांक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इस अंक की सामग्री अन्य अंकों से भिन्न है। इस बार हिंदी भाषा और लिपि से जुड़े महत्वपूर्ण बिंदुओं के साथ भाषा के विस्तार की संभावनाओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

हिंदी आज स्वतः अपनी गति से फैल रही है, लेकिन व्यापार, उद्योग और उद्यम, ज्ञान और प्रौद्यौगिकी में अंग्रेज़ी का बोलबाला है। इस सम्मेलन में चिंतन का विषय यही है कि हमारी विदेश नीति, प्रौद्यौगिकी, विधि और न्याय, जन-संचार माध्यमों और ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी के विस्तार को कैसे सम्भव बनाया जाए, बाल साहित्य को कैसे समृद्ध किया जाए और गिरमिटिया देशों में हिंदी भाषा और साहित्य को कैसे और विकसित किया जाए।

अच्छी सामग्री संकलित हुई है और मैं आशा करता हूं कि यह विशेषांक हमारे पाठकों का हिंदी के विविध क्षेत्रों की ओर ध्यानाकर्षण करेगा और पाठकों को भी लगेगा कि हिंदी के संवर्धन में उनकी भी कोई सकर्मक भूमिका है, जो उन्हें निभानी है। गगनांचल के इस अंक पर आपकी प्रतिक्रिया हमें उत्साहित करेगी। मैं गगनांचल के इस अंक के प्रकाशन और दसवें सम्मेलन के प्रति अपनी मंगलकामनाएं प्रस्तुत करता हूं।

सतीश मेहता

(सतीश चन्द मेहता)
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

करते हैं तन मन से वंदन

सोम ठाकुर

करते हैं तन मन से वंदन
जन-गण-मन की अभिलाषा का
अभिनंदन अपनी संस्कृति का,
आराधान अपनी भाषा का।

यह अपनी शक्ति-सर्जना के
माथे की है चंदन रोली
मां के आंचल की छाया में
हमने जो सीखी है बोली।

यह अपनी बंधी हुई अंजुरी,
यह अपने महके शब्द सुमन
यह पूजन अपनी संस्कृति का,
यह अर्चन अपनी भाषा का।

अपने रत्नाकर के रहते
किसकी धारा के बीच बहें
हम इतने निर्धन नहीं कि
वाणी से औरों के ऋणी रहें।

इसमें प्रतिबिंबित है अतीत
आकार ले रहा वर्तमान
यह दर्शन अपनी संस्कृति का,
यह दर्पण अपनी भाषा का।

यह ऊंचाई है तुलसी की
यह सूर-सिंध की गहराई
टंकार चंदबरदाई की
यह विद्यापति की पुरवाई।

जयशंकर का जयकार,
निराला का यह अपराजेय ओज
यह गर्जन अपनी संस्कृति का,
यह गुंजन अपनी भाषा का।

इस 'गगनांचल' के आंचल में

एक संगोष्ठी में एक विद्वान ने कहा कि हिंदी 'एल.डब्ल्यू.सी.' है। स्वयं के अज्ञान पर मेरी भ्रकुटि थोड़ी वक्र हुई, माथे पर बल पड़े, क्या? 'एल.डब्ल्यू.सी.' क्या? बच्चा होता तो वहीं पूछ लेता। बच्चे अपनी जिज्ञासाएं तत्काल मिटा लेते हैं। सोचा कि बाद में पूछूंगा, लेकिन सुयोग नहीं बना। उत्तर नहीं मिला तो प्रश्न भी कहीं खो गया। संयोग से किसी दूसरी संगोष्ठी में उन्होंने फिर वही बात दोहराई लेकिन ग़नीमत है कि अर्थ बता दिया, 'एल.डब्ल्यू.सी.' अर्थात् 'लैंग्वेज ऑफ़ वाइड सर्क्युलेशन'। मुझे सुकून मिला। हां, हिंदी 'लैंग्वेज ऑफ़ वाइड सर्क्युलेशन' है। पूरे विश्व में इसका विस्तार है। पूरे विश्व में इसकी संभावनाएं हैं।

पहला विश्व हिंदी सम्मेलन चालीस साल पहले नागपुर में हुआ था। नागपुर के बाद क्रमश: मॉरीशस, दिल्ली, मॉरीशस, त्रिनीदाद, लंदन, सूरीनाम, न्यूयॉर्क और जोहान्नेसबर्ग में आयोजित हुए। और लीजिए उम्मीद, उमंग और उल्लास के साथ दसवां ये भोपाल में! पिछले विश्व हिंदी सम्मेलनों का विगत चालीस साल में क्या प्रभाव पड़ा, हिंदी की कितनी उम्मीदें पूरी हुईं इसका आकलन करने वाले दोनों तरह की बात करते हैं और कर सकते हैं। सकारात्मक रहते हुए मेरा मानना यह है कि किसी भी मेले, से हम क्या उम्मीद रखते हैं! चालीस वर्ष में ये दसवां होने जा रहा है, इसका मतलब कि औसतन चार साल में एक बार होता है। तीन साल में ही हमारे देश में कुंभ आते हैं। कुंभ की क्या उपादेयता है? गंगा में स्नान करके कैसा लगता है?

शायद हिंदी की बात करके वैसी ही अनुभूति हो कि हम देश की उस भाषा में स्नान करने जा रहे हैं, जिसने स्वतंत्रता के आंदोलन में पूरे देश को एकजुट किया। जिसने ऐसे किसी आन्दोलन का कभी विरोध नहीं किया, जो उसके विरोध में उठा। जिसने सदैव प्रेम के गाने गाए। जिसने घृणा और द्वेष को प्रश्रय नहीं दिया। जिसके साहित्य के मूल, कई सहस्राब्दियों में विद्यमान हैं। जिसमें विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी से लेकर आधुनिक कवियों तक ने लेखनी चलाई। जिसकी छटाएं उसकी बोलियों और लोकगीतों में भरपूर दिखाई देती है। जिसमें अधिसंख्य भारतवासियों का दिल धड़कता है। जिसके नाम पर फ़िल्म उद्योग करोड़ों, अरबों का व्यापार करता है। जो भारत के संचार माध्यमों की सबसे प्रमुख भाषा है। जो अपने देश की सारी भाषाओं को प्यार करती है। यह विश्व हिंदी सम्मेलन उस हिंदी में स्नान करने का एक अवसर है।

नौ सम्मेलनों का क्या निचोड़ निकला, क्या लाभ हुआ? ऐसे मत देखिए। अगर लाभ-हानि उसी तरह से देखेंगे जिस तरह से विभिन्न अनुदान आयोग देखते हैं तब तो बात न बनेगी। वस्तुत: विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर पूरी दुनिया में हिन्दी बोलने, समझने, लिखने और पढ़ने वाले लोगों का मेला जुड़ता है। उन लोगों से मिलने का मौका मिलता है जो भारत से सुदूर स्थित देशों में किसी न किसी प्रकार से हिन्दी से जुड़े हुए हैं। वे भारतवंशी मिलते हैं जिनके

पूर्वज आज से डेढ़ सौ दो सौ वर्ष पहले ये भूमि छोड़ कर गए थे और साथ ले गए थे रामचरितमानस का एक गुटका और पोटली में सत्तू। इन सम्मेलनों का उद्देश्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की आस्था के साथ विदेशों में हिन्दी का प्रचार-प्रसार करना रहा है। दसवां सम्मेलन हिंदी के विस्तार और संभावनाओं को तलाशने के लिए है।

कुंभ नहाते हैं तो तिलक-चंदन लगाने वाले लोग भी आकर बैठ जाते हैं। भविष्य बताने वाले भी पीछे नहीं रहते। हिंदी का भविष्य क्या है और भविष्य की हिंदी कैसी होगी, यह इस दसवें सम्मेलन के सरोकार हैं। 'नव पौरी पर दसम दुआरा, तेहि पर बाजि राज घरियारा'। इस दसवें द्वार में प्रवेश करते हुए बताऊं कि साहित्य हमारे अस्तित्व की सांसों में समाया हुआ है। हम वर्ष भर उस पर चर्चाएं करते हैं। अभी तक के सम्मेलनों में प्राय: साहित्य-केन्द्रित चर्चाओं पर ज़ोर भी रहा है, लेकिन संभवत: यह पहली बार है कि ऐसे साहित्येतर विषयों पर अधिक चर्चा होने जा रही है जो हमारे जीवन में, विशेष रूप से युवाओं के बीच, हिंदी भाषा और लिपि के संवर्द्धन की केंद्रीय चिंता पर आधारित है।

मसलन, न्याय कैसे पहुंचे उस भारतवासी तक जब तक कि उसे वह न्याय उसकी अपनी भाषा में ही न दिया जाए। विज्ञान में जब तक श्रेष्ठ पुस्तकें ही उपलब्ध न हों, तो कैसे उच्च शिक्षा के प्रावधान हों। राजभाषा से संदर्भित क, ख और ग क्षेत्रों में हिंदी के लिए जो संकल्प लिए गए थे, उन्हें पूरा न किया जाए तो बात कैसे बने? सूचना प्रौद्योगिकी किस प्रकार हिंदी को आगे बढ़ा रही है, इस बात को रेखांकित न किया जाय तो हिंदी के लिए होता हुआ अरण्य-रोदन कैसे रुके?

बहरहाल, मुझे छठे से नवें तक इस सम्मेलन शृंखला में घनत्वपूर्ण सक्रिय भागीदारी का अवसर मिला। चालीस साल के इस सफ़र में एक पीड़ा प्रतिभागियों में हर बार कुलबुलाती रही कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी आधिकारिक भाषा अब तक क्यों नहीं बन पाई? मेरे मन में भी काफी उष्ण प्रतिक्रियाएं आती-जाती रहीं कि सौ-सवा सौ करोड़ की राशि और अपेक्षित देशों के समर्थन को तो हम चुटकियों में पूरा कर सकते हैं, फिर क्यों नहीं संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को मान्यता दिलाई जाती?

कुछ मित्रों ने कहा कि पहले अपने देश में तो आधिकारिक भाषा बना लीजिए, फिर संयुक्त राष्ट्र में बनाइएगा। ऐसे मित्रों के आगे एकाएक कुछ सूझता नहीं है, बोलते नहीं बनता। निर्वाक हो जाने का एक कारण यह भी है कि हिंदी का पक्ष प्रत्युत्तर में आक्रामक नहीं होता। हिंदी का पक्ष आंकड़े देकर और सारे तथ्यों और सत्यों को प्रेमपूर्वक प्रस्तुत करते हुए समझा-समझा कर बताने में भरोसा रखता है। आज नई पीढ़ी को यह समझाना भी ज़रूरी है कि यह तो सौभाग्य की बात है कि आपकी अंग्रेज़ी अच्छी हुई है, लेकिन यह अच्छा नहीं होगा कि आप अपनी हिंदी में पिछड़ जाएं।

चीज़ें सदैव एक समान नहीं होतीं। जीवनोपयोगी ज्ञान और अच्छा साहित्य, अच्छे मंच से, अच्छी शैली में अपनी भाषा में प्रस्तुत किया जाए तो यही वह नई पीढ़ी है जिसने विगत सात-आठ वर्ष में यह दिखा दिया कि जहां सन् सात में हिंदी के मात्र सात सौ ब्लॉग्स थे, वहां अब लाख के लगभग हैं। सोशल मीडिया में आज हिंदी जिस सहजता से टंकित की जा सकती है, यह बात भी जानकारियों में अंकित की जानी चाहिए।

'गगनांचल' के इस अंक में भी प्राय: साहित्येतर चिंताओं को संज्ञान में लिया गया है। साहित्य के क्षेत्र में सिर्फ़ एक ओर ध्यान दिया गया है, वह है बालसाहित्य का लेखन। हर देश अपने बच्चों की चिंता करता है। विश्व के बड़े-बड़े लेखक गर्व महसूस करते हैं, जब वे बच्चों के मनोविज्ञान में प्रवेश करते हुए उनके लिए लिखते हैं। मुंशी प्रेमचन्द ने भी बच्चों के लिए लिखा। सोहन लाल द्विवेदी, गुलज़ार, सर्वेश्वर और प्रयाग शुक्ल ने भी, लेकिन कतिपय नामों के अलावा सभी बाल साहित्यकारों को दोयम दर्जे का साहित्यकार मान लिया जाता है। बालसाहित्य की क्या चिंताएं हैं और क्या संभावनाएं हैं, बच्चों को अच्छी पुस्तकें कैसे मिलें, इन पर इस अंक में विमर्श हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक विषय-क्षेत्र ऐसे हैं जिनसे जुड़ी सामग्री हिंदी भाषा में मिलनी चाहिए। जैसे, अपनी विदेश नीति। हम अपने विदेश संबंध कैसे सुदृढ़ बना रहे हैं, यह जानकारियां हिंदी में भी उपलब्ध हों। विदेश-नीति पर पत्र-पत्रिकाओं में तो यदा-कदा कुछ मिलता है, पर पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं।

आपको एक प्रकरण बताता हूं। दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन की संचालन समिति की बैठक को जब अध्यक्ष महोदया श्रीमती सुषमा स्वराज संबोधित कर रही थीं तो उन्होंने 'एल.डब्ल्यू.सी.' के समान 'आई.सी.डब्ल्यू.ए.' का उल्लेख किया। अच्छा हुआ कि उन्होंने तत्काल बता दिया, 'इंडियन काउंसिल ऑफ़ वर्ल्ड अफेयर्स'। फिर उन्होंने अपना एक संस्मरण सुनाया— "मैं 'इंडियन काउंसिल ऑफ़ वर्ल्ड अफेयर्स' की बैठक में गई। वहां वे अपनी प्रगति का पूरा ब्यौरा दे रहे थे। मैंने उनसे केवल एक प्रश्न पूछा कि आपके यहां आज तक कोई एक मौलिक पुस्तक जो हिन्दी में निकली हो, वह बता दीजिए।

उन्होंने कहा, कोई नहीं निकली। मैंने पूछा, आपने किसी पुस्तक का अनुवाद हिंदी में कराया हो, वह बता दीजिए। उन्होंने कहा, कोई अनुवाद नहीं कराया। फिर मैंने पूछा, अच्छा, कोई लेख हिन्दी में अपने यहां आया हो? उन्होंने कहा कोई नहीं आया। कोई शोध-पत्र आपने हिन्दी का लिखवाया हो या किसी ने लिखा हो आपके अंतर्गत? कोई नहीं लिखा। यानी हिन्दी के काम के नाम पर शून्य था। वह 'आई.सी.डब्ल्यू.ए.' जहां पूरा का पूरा जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय आकर पढ़ता है। फिर मैंने कहा कि क्या आप ये समझते हैं कि कोई हिन्दी जानने वाला विदेश नीति न पढ़े तो कोई हानि की बात नहीं है! अगर आप विदेश नीति के बारे में साहित्य ही उपलब्ध नहीं कराएंगे तो कैसे समझते हैं कि विदेश नीति उन तक भी पहुंचेगी जो अंग्रेज़ी नहीं जानते हैं। कोई उत्तर नहीं था उनके पास।' इस प्रकरण से वे बताना चाहती थीं कि सम्मेलन में 'विदेश नीति में हिन्दी' एक उप-विषय क्यों बनाया गया है।

इसी तरह 'प्रशासन में हिन्दी', 'विज्ञान में हिन्दी', 'सूचना प्रौद्योगिकी और हिन्दी' विषय सोचे गए। 'हिन्दी पत्रकारिता और मीडिया में भाषा की शुद्धता' एक अलग महत्वपूर्ण मुद्दा है। उन्होंने अपनी कामना रखी कि ये विश्व हिन्दी सम्मेलन, एक दिशा देने वाला परिणाममूलक सम्मेलन बने। यहां से एक शुरुआत हो जाए, ताकि इन तमाम चीज़ों को आगे ले जाया जा सके और हिन्दी जगत में व्याप्त सम्भावनाओं को विस्तार मिल सके।

इसी सोच और आस्था के साथ 'गगनांचल' का यह अंक निकाला जा रहा है। अंक में विश्व हिंदी सम्मेलनों के सिलसिले तो आपके सामने आएंगे ही कि उनसे क्या अपेक्षाएं थीं और कितनी पूरी हुईं, विभिन्न आकलनों के साथ हमने हिंदी की ताक़त को समझने की कोशिश भी की है। कुछ प्रश्नों के उत्तर तलाशे हैं। पहली तो यही कि हमारी बोलियां और आंचलिक भाषाएं, छत्ते के अमृत कोश की तरह किस प्रकार हिंदी को समृद्ध कर रही हैं? किन संस्थाओं ने हिंदी के लिए अपने सीमित संसाधनों के बावजूद कितना काम किया है? हिंदी शब्द कोश और समांतर कोश का निर्माण अरविन्द जी ने किन कठिनाइयों से गुज़रते हुए किया? भाषा के इतिहास-चिंतन के क्या सूत्र हैं? अनुवाद का कार्य कितना महत्वपूर्ण है? प्रशासनिक एवं प्रयोजनमूलक हिंदी की असल समस्याएं क्या हैं? सूचना-प्रौद्योगिकी ने पिछले पांच वर्ष में किस प्रकाश-वर्ष गति से प्रगति की है? हिंदी सिनेमा और धारावाहिकों ने हिंदी का कितना भला या बुरा किया है? दक्षिण भारत में हिंदी शिक्षण की क्या स्थिति है? हमारे जो अध्यापक साथी हिंदी-शिक्षण के लिए विदेशों में गए, उन्हें किन सुविधाओं या समस्याओं से रू-ब-रू होने का अवसर मिला? वाचिक परम्परा के कविसम्मेलन और नाटक किस तरह हमारी बोली-भाषाओं का आस्वाद कराते हैं और भाषा के प्रति एक रागात्मक चेतना का विस्तार करते हैं? हिंदी के प्रकाशक अंग्रेज़ी के बढ़ते विस्तार में किस तरह पांव जमाए हुए हैं? और भी अनेक मुद्दे हैं, कहीं प्रश्न के रूप में कहीं उत्तर के रूप में, जिन्हें इस बार 'गगनांचल' ने अपने आंचल में समेटा है।

विनम्र संकोच के साथ कहना चाहता हूं कि हिंदी में वर्तनी के मानकीकरण का मसला जब तक विद्वज्जन सुलझा नहीं लेते तब तक 'हिन्दी' और 'हिंदी' दोनों ठीक हैं। इसी तरह चन्द्र-बिंदु और नीचे नुक़्ता लगाने का मामला है, इसके लिए भी कोई आग्रह नहीं है। अपनी उच्चारण शैली के अनुरूप जिसे जो सुहाए, हिंदी को भी सुहाएगा।

और अंत में उन सभी को धन्यवाद जिन्होंने 'गगनांचल' का पंथ बुहारा है। उन सभी के प्रति आभार-ज्ञापन जिन्होंने किसी भी रूप में 'गगनांचल' का रूप संवारा है।

लवस्कार!

(अशोक चक्रधर)
ashok@chakradhar.com

हिंदी हम सबकी परिभाषा

डॉ. लक्ष्मी मल्ल सिंघवी

कोटि-कोटि कंठों की भाषा
जन-जन की मुखरित अभिलाषा,
हिंदी है पहचान हमारी
हिंदी हम सबकी परिभाषा।

आज़ादी के दीप्त भाल की
बहुभाषी वसुधा विशाल की,
सहृदयता के एक सूत्र में
यह परिभाषा देश-काल की।

निज भाषा जो स्वाभिमान को
आम आदमी की ज़ुबान को,
मानव गरिमा के विहान को
अर्थ दे रही संविधान को।

हिंदी आज चाहती हमसे
हम सब निश्छल अंतस्तल से,
सहज, विनम्र, अथक यत्नों से
मांगें न्याय आज से, कल से।

लेखिका भारत के लोक-जीवन की मर्मज्ञ एवं हिंदी की वरिष्ठ साहित्यकार हैं। इन दिनों वे गोवा की माननीय राज्यपाल हैं।

संस्कृति की संवाहिका है हिंदी

डॉ. मृदुला सिन्हा

भाषा, भाव-प्रवाह की संवाहिका है। विश्व की सभी भाषाओं में हिंदी का विशेष स्थान है, क्योंकि यह विश्व के प्रथम ग्रंथ वेद के सूत्रों को वेद भाषा संस्कृत द्वारा प्रवाहित करते हुए असंख्य जनों के बीच बोलती, समझती और सीखती जाती पीढ़ी-दर-पीढ़ी सहज होती जा रही, भाषा है। शास्त्र के पन्नों से निकलकर जन-जन की भाषा हो गई हिंदी। आज भी भारत में हिंदी के बहुरूप हैं, क्योंकि भारत विविधताओं का देश है। 'भिन्न भाषा, भिन्न वेश, फिर भी अपना एक देश।' ठाकुर रवीन्द्र नाथ टैगोर के उद्गार हैं 'हेथाय आर्य, हेथाय अनार्य, द्रविड़, शक चीन, एक देहे होलो लीन।' भारत मां की एक सशक्त विस्तृत काया है। सदियों से विभिन्न मार्गों से आकर कई देश के लोग इसकी संस्कृति और भाषा के प्रवाह में बहते रहे। अपनी संस्कृति भूल गए, क्योंकि संस्कृत में प्रचारित, प्रसारित और बोली जाने वाली भारतीय संस्कृति व्यक्ति या स्थानमुख नहीं थी। अपने उत्पत्ति काल से ही यह मानवीय संस्कृति रही, प्रकृतिनिष्ठ संस्कृति। संस्कृत ने भारतीय संस्कृति को देश से बाहर दूसरे देशों में ले जाकर भी प्रतिष्ठा दिलवाई। संस्कृत से निकलने वाली अन्य भाषाओं को प्रचारित-प्रसारित करती हिंदी भी संस्कृति प्रवाह का ही माध्यम बनी।

देश में अंग्रेज़ों के आने तथा बड़ी अवधि तक ठहरने से राजकाज की भाषा पूर्व शासकों की भाषा पर आसीन रही। अंग्रेज़ी का विशेष प्रयोग हुआ। आंग्ल भाषा राजकाज की भाषा बनी। पढ़ाई देश में होने लगी। लंदन से भी पढ़कर भारतीय आने लगे। संस्कृति को नष्ट करने के एक बड़े साजिश की तहत हिंदी और हिंदी के माध्यम से दी जाने की शिक्षा को भी नष्ट करने का मैकाले प्रयास चला। कुछ हद तक उसे सफलता भी मिली। आज भारत में शिक्षा का माध्यम लगभग अंग्रेज़ी भाषा ही हो गई। आज हर धनी-गरीब, माता-पिता की इच्छा है कि उनका बच्चा अंग्रेज़ी माध्यम से ही पढ़े। कारण यह नहीं कि उन्हें अंग्रेज़ी से बड़ा प्रेम है। कारण यह भी नहीं कि उनका अंग्रेज़ी बोलना उन्हें सुकून देता है अथवा अंग्रेज़ी बोलकर वे अपनों के अधिक नज़दीक आ जाते

हैं। कारण यह नहीं कि अंग्रेज़ी उनकी मां की भाषा है, कारण तो स्पष्ट है और वह है अंग्रेज़ी और हिंदी के समाज में प्रतिष्ठित स्थान का।

जाने-अनजाने हमने वैश्विक शक्ति के प्रभाव में आकर अंग्रेज़ी को पेट की भाषा बना लिया। हिंदी समाप्त नहीं हुई, बढ़ती गई। अपने माध्यम से अधिक से अधिक लोगों को जोड़ती गई। लेकिन यह पेट की नहीं, हृदय की भाषा है। आज भूमंडलीकरण की दौड़ में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'विश्व-बंधुत्व' के भाव ख़त्म हो रहे हैं, पैकेज का महत्व है। अर्थकरी विद्या हो गई। विद्या भी ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं है, फिर भाषा कैसे न हो वैसी। इसलिए संस्कृत भी अपनी संतान की स्थिति देखकर विसूरती है। हिंदी और अन्य भाषाएं कुंठित हुई जान पड़ती हैं, पर यह पूर्ण सत्य नहीं।

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि जब जिन कारणों से भी हम किसी क्षेत्र में गिरावट की ओर जाते हैं, चलते-चलते ठेस लगती हैं, चलते-चलते गिरने की स्थिति में आते हैं, वहीं तत्क्षण उठकर खड़े हो जाते हैं। मानो ठेस लगी और बुद्धि बढ़ी। पुन: अपना विस्तृत स्वाभिमान जागृत होता है। आज हिंदी की यही स्थिति है। हिंदी के द्वारा ही आत्मविस्मृति को समाप्त कर पुन: अपना सोया स्वाभिमान जागृत करने की ओर हम अग्रसर हैं। हमारी संस्कृति लोक-रिवाज, नाते-रिश्ते, भाई-बंधु, संतों की वाणियों, चौपाइयों, दोहों और उत्सवों में संवर्द्धित होती है। इन सभी की भाषा संस्कृत या उससे मिलती-जुलती है। हिंदी लोकभाषा भी है। संस्कृत में ही शादी-ब्याह, उपनयन संस्कार से लेकर दाह संस्कार तक करवाया जाता है। संस्कृत में अंग्रेज़ी का वर्चस्व कैसे कहें। हमारी संस्कृति के जीवन जीने के माध्यम संस्कृत और हिंदी के साथ अन्य भारतीय भाषाएं हैं।

भारत उत्सव प्रधान देश है। हमारा उत्सवीय आचार व्यवहार होता है। यहां तो मृत्यु का भी उत्सव मनाया जाता है। उत्सवीय मन का भाव अंग्रेज़ी भाषा में नहीं प्रकट किया जा सकता। अंग्रेज़ी में बात करते-करते एक भी भारतीय मिल जाए तो मराठी, बांगला, भोजपुरी, गुजराती के साथ-साथ हिंदी बोलते ही आत्मीयता मिल जाती है। हम एक हैं का भाव उतर आता है। मन का भाव मीठा हो जाता है। इतना कुछ-कुछ देने वाली भाषा कैसे समाप्त हो सकती है। इक्कीसवीं सदी के अंत तक भी हिंदी भारतीय संस्कृति की संवाहिका रहेगी। उसके बाद भी। मॉरीशस, सूरीनाम, गयाना जैसे देशों में दो सौ वर्षों से भोजपुरी बोली जा रही है। ये भाषा देश के सबसे निचले तबके के मज़दूरों के साथ वहां गई। उन्होंने इसी भाषा के माध्यम से अपनी एकता बनाए रखी। उनकी तीसरी पीढ़ी इसी भाषा को बोलते हुए राजसत्ता के सर्वोच्च स्थान पर पहुंच गई। उन्होंने केवल भाषा को जीवित नहीं रखा। उन देशों में खान-पान, रहन-सहन, शादी-ब्याह सब उसी प्रकार से होते हैं, जैसे दो सौ वर्ष पूर्व भारत के विभिन्न भागों में हुआ करते थे। भारत में रहकर हम बदल गए, वे नहीं बदले। इसलिए न संस्कृति बदली, न भाषा, संस्कृति की संवाहिका भाषा ही बनी रही।

यह दसवां विश्व हिंदी सम्मेलन है। पिछले पांच सम्मेलनों से मैं इस आयोजन में सम्मिलित होती रही हूं। विभिन्न देशों से आए लोग किस प्रकार स्नेह से मिलते हैं, भाईचारे के भाव में डूब जाते हैं। परस्पर हिंदी में स्नेह बांटते हुए भूल जाते हैं कि वे अपने-अपने देश में अंग्रेज़ी, फेंच, जर्मन या अन्य भाषा भी बोलते हैं। विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी को जीवंत बनाए रखने के संकल्प लिए जाते हैं। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इसे फ़ैलाने के उपाय, योजनाएं ढूंढ़ी जाती हैं। अगले दो वर्षों तक विश्व हिंदी सम्मेलन से लौट कर गए हिंदी पुत्र-पुत्रियां उसे अपने-अपने क्षेत्र में प्रस्थापित करने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार विश्व हिंदी सम्मेलन भी भारतीय मानवीय संस्कृति को विश्व में जीवित रखने के लिए सहयोग करता है।

विदेशों में बसे भारतीय उन्हीं देशों में अपने परिवारों में संस्कारों के आयोजन करने लगे हैं। बड़े पैमाने पर भारत से पंडितों का भी पलायन हुआ है। भारतीय मंदिरों में जहां वे पूजा-अर्चना करवाते हैं, वहीं उपनयन, विवाह और अन्य संस्कारों को भी संपन्न करवाते हैं। ऐसे संस्कार कार्यक्रम एक प्रतिशत अंग्रेज़ी या स्थानीय विदेशी भाषाओं में भी संपन्न कराए जाते हैं, परन्तु नब्बे प्रतिशत कार्यक्रमों में संस्कृत और हिंदी का ही प्रयोग होता है। ढेर सारे सांस्कृतिक कार्यक्रम हिंदी में संपन्न होते हैं।

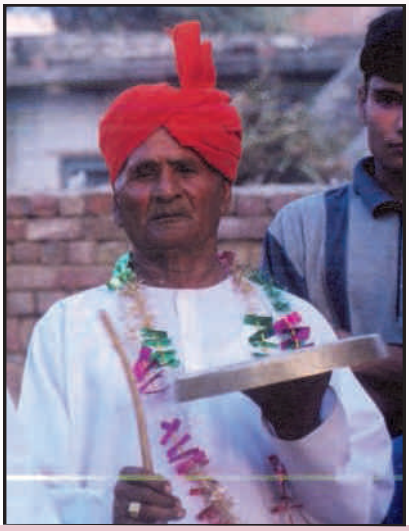

हमारे देश से हमारी संस्कृति के संवाहक विद्वान, विदुषियां, नृत्यांगनाएं और प्रवचनकर्ताओं का विदेश-भ्रमण होता है। वे अपने कार्यक्रमों में हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। विदेश में रह रहे लाखों भारतीय यद्यपि अंग्रेज़ी या अन्य विदेशी भाषाओं का ही प्रयोग करते हैं, परंतु अधिकांश अपने घरों में हिंदी का प्रयोग करते हैं।

विश्व में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने की आवश्यकता इसलिए भी है कि यह मानवीय संस्कृति की संवाहिका है। विश्व, विकास के नाम पर आज जिस विध्वंसक पथ पर बढ़ रहा है, जीवन में भोग की प्रवृत्ति बढ़ रही है, उसे संयम की आवश्यकता है। रचनात्मक विकास की आवश्यकता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के मंत्र की ज़रूरत है। मानव के अंदर के प्राकृतिक मनुष्य का विकास आवश्यक है, वह अहिंसा, आयुर्वेद और योग के त्रिगुणात्मक सहयोग से ही संभव है। हिंदी के विस्तार की ज़रूरत है। सभी भाषाओं के बीच समन्वय और संबद्ध सूत्र हिंदी ही हो सकती है। यह संस्कृति की संवाहिका जो है, मात्र संपर्क-सूत्र नहीं।

mridulasinha@hotmail.com

भारतीय संस्कृति की पहचान

राजदूत वीरेंद्र गुप्ता

लेखक : राजदूत वीरेंद्र गुप्ता, भारतीय विदेश सेवा-1977 (सेवानिवृत्त)। श्री गुप्ता ने 38 वर्षों के अपने राजनयिक कैरियर में तंजानिया, त्रिनिदाद एवं टोबेगो और दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में, भारतीय उच्चायोग में उच्चायुक्त के पद पर कार्य किया और भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के महानिदेशक रहे। इस लेख में अभिव्यक्त विचार उनके निजी विचार हैं।

भारत की संस्कृति समृद्ध और विविधता लिए हुए है। आर्थिक रूप से भारत के बढ़ते प्रभाव के कारण विश्व में इसकी अपनी पहचान बनी है। लगभग बीस वर्ष पहले तक विश्व में भारत को लोग अधिक महत्व नहीं देते थे, संस्कृति की बात तो छोड़ ही दें। किंतु, अब भारत का 'योग' सब जगह प्रचलन में आ गया है। दुनिया हमारी शास्त्रीय और लोक कलाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा करते नहीं अघाती है। आज के युग में किसी देश की संस्कृति और मूल्य व्यवस्था से हासिल सॉफ्ट पावर उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी कि किसी देश की सैन्य शक्ति। इसी सॉफ्ट पावर से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किसी देश की साख कायम होती है और वह देश अंतरराष्ट्रीय समुदाय में आदर और सम्मान का पात्र भी बनता है। इसीलिए यह कहना तर्कसंगत होगा कि भारत को अंतरराष्ट्रीय मंचों पर अपनी इस सॉफ्ट पावर को प्रदर्शित करने में उदारता से और पर्याप्त संसाधनों के साथ निवेश करना चाहिए।

भारतीय संस्कृति से हमारा तात्पर्य क्या है? यह प्रश्न थोड़ा जटिल अवश्य प्रतीत होता है किंतु अगर हम इसे समझने के लिए व्यापक दृष्टिकोण अपनाएं तो इसे समझना इतना कठिन भी नहीं है। हमारी संस्कृति के भिन्न-भिन्न पहलू, केलिडोस्कोप के बदलते दृश्यों और चित्रों की भांति समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। इस महत्व को अस्वीकार करने के कारण संस्कृति के प्रति जो संकीर्ण और कट्टरवादी-दृष्टिकोण उत्पन्न होता है उससे सिर्फ असंगति तथा विवाद ही पैदा होते हैं। हमारी संस्कृति बारंबार विदेशी प्रभावों के फलस्वरूप अधिक समृद्ध हुई है। हमने इन प्रभावों से पैदा हुए अनेक तत्वों को क्रमश: ग्रहण भी किया है। इस ग्राह्यता का असर हमारी लोक परंपराओं, शास्त्रीय नृत्य और संगीत तथा साहित्य की विविधता और निस्संदेह हमारे सिनेमा पर देखा जा सकता है। बॉलीवुड फिल्मों और विशेष रूप से उनके सुगम तथा मनमोहक संगीत ने विश्व में दूरदराज तक भारत की पताका फहराई है। यदि फिल्मों का यह मधुर संगीत न होता तो संभवत: विश्व के इन दूरदराज के देशों में भारत की पहचान न बनी होती। जब मैंने मई 1992 में इजराइल में भारतीय दूतावास खोलने का कार्य किया, उस समय का एक दिलचस्प वाकया मुझे याद आता है। तेल-एविव के सब्जी बाजार में एक दुकानदार ने जब मेरी पत्नी को साड़ी पहने देखा तो वह अत्यधिक उत्सुकता से बॉलीवुड का एक गीत गुनगुनाने लगा- 'ईचक दाना, बीचक दाना।

हम अपनी सांस्कृतिक विविधता को संजोए रखने और उसे उत्सवधर्मी बनाने में विश्वास रखते हैं तो इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हमारी संस्कृति की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम हिंदी भाषा है। इसका सीधा सा कारण यह है कि अधिकतर भारतीय हिंदी भाषा बोलते और समझते हैं। हमारे देश के विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी भाषा को समझने और इसकी सहज स्वीकृति में इजाफा करने में बॉलीवुड का महत्वपूर्ण योगदान है। एक तरह से देखा जाए तो हिंदी भाषा भारतीय संस्कृति का दर्पण है। इसीलिए विदेशों में भारतीय संस्कृति को प्रसारित करने में हिंदी की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है

विश्व में बृहद भारतीय डायस्पोरा है जो भारतीय संस्कृति के साथ गहरे जुड़ा है। यह डायस्पोरा अपनी राष्ट्रीयता अथवा नागरिकता के स्टेटस के ऊपर अपने 'भारतीय कनेक्शन' को दर्शाने और उसके साथ अपनी पहचान बनाने में गर्व महसूस करता है। अनेक प्रकार की बाधाओं और परेशानियों के बावजूद डायस्पोरा के कई संगठन हिंदी भाषा को बचाने, उसका प्रचार-प्रसार करने की दिशा में सराहनीय कार्य कर रहे हैं। उदाहरण के लिए दक्षिण अफ्रीका में 'हिंदी शिक्षा संघ' हिंदी की कक्षाओं का आयोजन करता है, विद्यालयों में हिंदी अध्यापकों की नियुक्ति और तैनाती करता है, हिंदी पाठ्यक्रमों का नियमन करता है और हिंदी की पुस्तकें प्रकाशित करता है। यहां तक कि 'हिंद वाणी' नाम से हिंदी का रेडियो स्टेशन भी चलाता है। इसी प्रकार त्रिनीदाद में भी 'हिंदी निधि' नामक संस्था उस देश में हिंदी के प्रचार-प्रसार के कार्य में पूर्ण प्रतिबद्धता के साथ जोर-शोर से कार्य कर रही है, जबकि इस संस्था के अधिकतर पदाधिकारी पूर्ण रूप से हिंदी में बात करने में भी सक्षम नहीं हैं और अपनी संस्था की कार्यवाहियां भी अंग्रेज़ी भाषा में संचालित करते हैं।

भारत सरकार को विदेशी धरती पर किए जा रहे इन प्रयासों का पूर्ण समर्थन करना चाहिए। अपने कार्य-क्षेत्र और कार्यकलापों का अधिक विस्तार करने के लिए सहायता प्रदान करनी चाहिए ताकि इन कार्यकलापों की पहुंच भारतीय डायस्पोरा से आगे बड़ी संख्या में स्थानीय समुदायों तक हो सके। भारतीय अर्थव्यवस्था की समृद्धि और विकास ने अब विदेशी लोगों के लिए अनेक अवसर पैदा कर दिए हैं। इससे विदेशी लोग व्यक्तिगत रूप से तथा अपने व्यापार के लिए हिंदी भाषा सीखकर उसका अधिक से अधिक वाणिज्यिक लाभ उठा सकते हैं।

हमारे राजनयिक मिशनों को भी चाहिए कि वे हर कार्यक्रम के लिए सारा श्रेय स्वयं लेने के बजाय, स्थानीय संगठनों के साथ मिलकर विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों का आयोजन करें जैसे- हिंदी कक्षा, निबंध व कविता प्रतियोगिता, शिक्षकों के लिए कार्यशाला, सम्मेलन, हिंदी दिवस और कविता पाठ आदि का आयोजन करें। त्रिनिदाद में उत्तर प्रदेश और बिहार के लोग अर्थात डायस्पोरा बड़ी संख्या में हैं और वहां की आबादी में इनकी संख्या लगभग आधी है। हमने वहां विख्यात हिंदी कवियों पर व्याख्यान माला की शुरूआत की ओर साथ ही उनकी प्रमुख रचनाओं का पाठ करना भी प्रारंभ किया। इस कदम की काफी सराहना की गई इस कार्य से हिंदी साहित्य के प्रति और अधिक रूचि उत्पन्न करने में सहायता मिली। लोगों को इससे पहले गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस और कबीर के बारे ही पता था। हमारे प्रयासों से उन्हें पता चला कि हिंदी साहित्य में इनके अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है। हमने ऐसे स्थानीय स्कूलों और संगठनों की पहचान की जो इस पहल का हिस्सा बन सकें और व्याख्यान आयोजित कराने के इच्छुक हों। इसका उद्देश्य यह था कि हमारी बात का सही प्रचार हो और वह अधिक से अधिक लोगों तक पहुंच सके तथा हम इन आयोजनों को मिशन के परिसर में ही कराने तक सीमित न रहें।

त्रिनिदाद में, हमने 'कवि सम्मेलन' आयोजित करने का प्रयोग किया जिसमें भारत के चुनिंदा समकालिक व सुप्रतिष्ठित हिन्दी कवियों ने भाग लिया। ऐसा स्थानीय प्रतिभाओं को मंच उपलब्ध कराने के लिए किया गया। यह कदम काफी लोकप्रिय हुआ और यदि हम 'मनोरंजन' की दृष्टि से कहें तो हमारा यह प्रयास भारत से आने वाले अन्य प्रदर्शन कला समूहों अर्थात परफॉर्मिंग आर्ट ग्रुप्स की प्रस्तुतियों से किसी भी दृष्टि से कमतर साबित नहीं हुआ। वर्षों बाद जब मुझे भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (आईसीसीआर) का महानिदेशक बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तब, मैंने इस अवसर का सदुपयोग विदेशों में कविसम्मेलनों के आयोजन को अधिक सुव्यवस्थित करने के लिए किया।

यह भी ध्यान में रखा जाए कि विदेशों में हमारी सांस्कृतिक गतिविधियों और क्रियाकलापों का मुख्य उद्देश्य वहां के अधिक से अधिक लोगों से जुड़ना होना चाहिए। भारतीय डायस्पोरा से जुड़े रहना हमारी बड़ी प्राथमिकता है तथापि हमारे प्रयास केवल उन्हीं तक सीमित नहीं रहने चाहिए। होना यह चाहिए कि भारतीय डायस्पोरा को सक्रिय व सकारात्मक रूप से सहभागी बनाते हुए मेजबान देशों की बड़ी आबादी तक पहुंच बनाने का व्यापक उद्देश्य प्राप्त किया जाए।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में बॉलीवुड सिनेमा और खास तौर से फिल्मी गीत-संगीत की सकारात्मक भूमिका रही है (लोकप्रिय पुराने गानों को सुनते हुए कौन नहीं झूम उठेगा)। चाहे उत्तर-पूर्व हो या कश्मीर या सुदूर दक्षिण केवल हिंदी फिल्मी गीतों के कारण ही आज अधिक से अधिक लोग हिंदी समझना और बोलना सीख पाए हैं। हमारी आजादी के समय की तुलना में आज ऐसे लोगों की संख्या कहीं अधिक है। इसके विपरीत, साठ के दशक में हिंदी को पूर्ण रूप से लागू करने के सरकार के प्रयास भारत के दक्षिणी राज्यों में बुरी तरह विफल रहे और यहां तक कि इसका हिंसक विरोध भी हुआ। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी, बॉलीवुड के फिल्मी गीतों ने भारत और उसकी संस्कृति की जानकारी के प्रसार में

बड़ा योगदान दिया है। चाहे मध्य-पूर्व हो (अस्सी के दशक में जब अमिताभ बच्चन काहिरा गए तो उनको देखने के लिए वहां भीड़ उमड़ पड़ी और भगदड़ मच गई) या रूस, (जहां राज कपूर की पुरानी फिल्मों के गाने अभी तक लोकप्रिय हैं) या अफ्रीका या कैरिबियन क्षेत्र हो वहां बॉलीवुड की लोकप्रियता देखकर हमें गर्व होता है। वर्ष 2010 में, जब हम चीन में भारतीय महोत्सव के आयोजन पर विचार कर रहे थे तो चीनी सरकार के कई वरिष्ठ अधिकारियों से मिले सुझाव देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि वे हमारी सांस्कृतिक प्रस्तुतियों में 'बॉलीवुड, बॉलीवुड और बॉलीवुड' को शामिल ही करवाना चाहते थे।

अपनी सांस्कृतिक गतिविधियों और प्रचार-प्रसार के बड़े कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करते समय बॉलीवुड की लोकप्रियता और उसके आकर्षण को ध्यान में रखना आवश्यक है। ऐसा करने से विदेशों में निश्चित तौर पर वांछित प्रभाव कायम किया जा सकता है। मुझे पता है कि भारत में संस्कृति के कार्य से जुड़े पुरातनवादी और कुछ हद तक संकीर्ण सोच वाले व्यक्ति बॉलीवुड के योगदान को स्वीकार करने का विरोध करेंगे, परंतु यदि हमें अनुकूल परिणाम हासिल करने हैं तो इस सोच को बदलना ही होगा।

भारत व शेष दुनिया के लोगों के बीच जो व्यापक संबंध बने हैं, वे वर्षों में विकसित हुए हैं। प्राय: ये संबंध व्यक्तियों के स्वयं के प्रयासों से ही बने हैं। हमारी सरकार को इन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। इन संबंधों को मजबूत बनाने के लिए अपेक्षित वित्तीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए। इसके अलावा यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि वर्तमान में आयोजित किए जा रहे कार्यक्रमों का योगदान स्वीकार किया जाए और इन कार्यक्रमों का आयोजन करने वाले अग्रणी स्थानीय संगठनों को समुचित श्रेय दिया जाए।

सरकारी स्तर की बात करें तो कई एजेंसियां बाहरी देशों में भारतीय संस्कृति और हिंदी के प्रसार-प्रचार के काम में लगी हैं। जैसे : भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, दूरदर्शन और आकाशवाणी, अपनी विदेशी सेवाओं के माध्यम से और विदेश मंत्रालय, पर्यटन और संस्कृति मंत्रालय अपने अपने स्तर पर कार्य कर रहे हैं। जिन राज्य सरकारों ने विदेशों में संपर्क बढ़ाया है, वे ज्यादा से ज्यादा विदेशी निवेश आकर्षित करने की प्रतिस्पर्धा में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन करते हैं। इससे कभी-कभी भ्रामकता उत्पन्न हो जाती है और यहां तक कि सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन में तालमेल की कमी दिखाई देती है।

इन सब के बावजूद हमें मुख्य उद्देश्य हासिल करने के लिए परिपक्व और व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। उद्देश्य है, भारतीय संस्कृति और भाषा को सही रूप से प्रदर्शित करना ताकि हम विदेश में अपने देश के प्रति अधिक जागरूकता उत्पन्न कर सकें और उसकी बेहतर छवि कायम कर सकें।

virendragupta@gmail.com

लेखक नेहरू पीजी कॉलेज, ललितपुर में वरिष्ठ प्राध्यापक हैं। सिनेमा और समकालीन विमर्शों पर निरंतर लेखन में संलग्न।

भारत के भाषाई राजदूत

डॉ. पुनीत बिसारिया

आपको याद होगा कि जब राज कपूर की फिल्म आवारा आई थी, तो उस समय उसके एक गीत 'आवारा हूं' से भारत की पहचान जुड़ गई थी। इस गीत की लोकप्रियता का यह आलम था कि उस दौरान राज कपूर जिस देश में भी जाते थे, उस देश में वहां की जनता उनका स्वागत 'आवारा हूं' कहकर ही किया करती थी। वैश्विक धरातल पर विदेशियों के बीच उन्माद के स्तर पर हिन्दी की लोकप्रियता का यह सबसे पहला बड़ा प्रमाण है। इसके बाद हिन्दी का दिग्विजयी रथ रुका नहीं और वह आगे सरपट दौड़ता गया जिसका परिणाम सम्पूर्ण विश्व में हिन्दी के प्रति प्रेमभाव के रूप में आज हमारे समक्ष है। हिन्दी की लोकप्रियता और सहज स्वीकारोक्ति की एक बड़ी वजह यह भी रही कि इसने लिपि, शुद्धता या क्लिष्टता के बंधन को कभी स्वीकार नहीं किया और अन्य भाषाओं के शब्दों को भी स्नेह से गले लगाकर अपना बना लिया, जिस भाषा ने अपना नामकरण ही विदेशी शब्द से किया हो उसके लिए शुद्धता का आग्रह बहुत अधिक श्रेयस्कर था भी नहीं। यही बात 'विदेश में हिन्दी' के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है, बल्कि विदेशों में तो हिन्दी ने लिपि के बंधन को भी अस्वीकारते हुए अपनी यशोगाथा के नए शिखरों का संस्पर्श किया है। भारत के कॉरपोरेट जगत में भी रोमन लिपि की हिन्दी ने हिन्दी के विस्तार में सहायता की है।

भारत की विदेश नीति में हिन्दी का इतिहास उस समय शुरू हुआ, जब 4 अक्टूबर सन 1977 को जनता पार्टी सरकार के तत्कालीन विदेश मंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी में भाषण देकर उपस्थित जनसमुदाय को चमत्कृत कर दिया था। संयुक्त राष्ट्र संघ के पहले हिन्दी उद्बोधन में अटल जी ने अपने भाषण के अंत में जो बात कही थी, वह भारतीय विदेश नीति का सदियों से मूल मन्त्र रहा है। उन्होंने कहा था 'हमारी कार्यसूची का एक सर्वस्पर्शी विषय जो आगामी अनेक वर्षों और दशकों में बना रहेगा, वह है मानव का भविष्य। मैं भारत की ओर से इस महासभा को आश्वासन देना चाहता हूं कि हम एक विश्व के आदर्शों की प्राप्ति और मानव के कल्याण तथा उसके गौरव के लिए त्याग और बलिदान की बेला में कभी पीछे नहीं रहेंगे।'

कहने की आवश्यकता नहीं कि यही नीति भारत की विदेश नीति की आधारशिला है और वस्तुतः इसी समय से भारत की विदेश नीति में हिन्दी को एक खास अहमियत दी जाने लगी। हालांकि इससे पूर्व 10-14 जनवरी, सन 1975 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की

प्रेरणा से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के सहयोग से हुए विश्व हिन्दी सम्मेलन में भारत की विदेश नीति में हिन्दी के प्रभाव की प्रारंभिक स्वीकार्यता देखने को मिली थी। इस सम्मेलन की आयोजन समिति के अध्यक्ष तत्कालीन उपराष्ट्रपति बी.डी. जत्ती थे और मुख्य अतिथि मॉरीशस के राष्ट्रपति शिवसागर रामगुलाम थे। इस सम्मेलन में पहली बार हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने की मांग की गई थी। इसके बाद क्रमशः ये सम्मेलन सन 1976 में पोर्ट लुई (मॉरीशस), 1983 में दिल्ली (भारत), 1993 में पोर्ट लुई (मॉरीशस), 1996 में पोर्ट ऑफ़ स्पेन (त्रिनिदाद एवं टोबैगो), 1999 में लन्दन (ब्रिटेन), 2003 में पारामारिबो (सूरीनाम), 2007 में न्यूयॉर्क (अमेरिका) और सन 2012 में जोहान्सबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में संपन्न हुए। दसवां विश्व हिन्दी सम्मेलन 2015 भोपाल में हो रहा है। अब तक हुए सभी आयोजनों में भारत सरकार की सक्रिय सहभागिता रही है और विदेशों में आयोजित हिन्दी सम्मेलनों की अभूतपूर्व सफलता को देखते हुए भारत सरकार ने अपनी विदेश नीति में हिन्दी को प्रमुख स्थान दिया है।

तीसरे विश्व हिन्दी सम्मेलन के समापन समारोह की मुख्य अतिथि के रूप में मंचस्थ महीषी महादेवी वर्मा ने भारत के कार्यालयों में हिन्दी की दुर्दशा का खाका खींचते हुए कहा था, 'भारत के सरकारी कार्यालयों में हिन्दी के कामकाज की स्थिति उस रथ जैसी है जिसमें घोड़े आगे के बजाय पीछे जोत दिए गए हों।' महादेवी वर्मा जी की इस दो टूक टिप्पणी का सकारात्मक प्रभाव पड़ा और चतुर्थ विश्व हिन्दी सम्मेलन में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि हिन्दी को विश्व मंच पर उचित स्थान दिलाने में शासन और जनसमुदाय विशेष प्रयत्न करे। सम्मेलन के सभी प्रतिनिधियों से यह अपील की गई कि वे अपने-अपने देशों की सरकारों से संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को आधिकारिक भाषा बनाने हेतु समर्थन जुटाएं।

अटल जी के संयुक्त राष्ट्र संघ में दिए गए ऐतिहासिक हिन्दी उद्बोधन के बाद भारत के शासकों को विदेश नीति में हिन्दी की अहमियत का अहसास हुआ और इसके बाद प्रायः सभी प्रधानमंत्रियों ने किसी न किसी स्तर पर विदेश नीति के अहम अंग के रूप में हिन्दी के महत्व को स्वीकार किया।

अटल जी के संयुक्त राष्ट्र संघ में दिए गए ऐतिहासिक हिन्दी उद्बोधन के बाद भारत के शासकों को विदेश नीति में हिन्दी की अहमियत का अहसास हुआ और इसके बाद प्रायः सभी प्रधानमंत्रियों ने किसी न किसी स्तर पर विदेश नीति के अहम अंग के रूप में हिन्दी के महत्व को स्वीकार किया। अहिन्दी भाषी प्रधानमंत्रियों पी.वी.नरसिंह राव और एच.डी.देवेगौड़ा ने भी हिन्दी के महत्व को विदेश नीति में मान्यता दी। राव ने अनेक अवसरों पर हिन्दी में न सिर्फ उद्बोधन दिया, अपितु हिन्दी के महत्व को भी माना। देवेगौड़ा ने तो हिन्दी सीखने के लिए एक शिक्षक रखा था। वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने तो अपनी प्रत्येक विदेश यात्रा में भारतीयों से मुलाकात में तथा अन्य अनेक अवसरों पर हिन्दी में भाषण देकर अपनी विदेश नीति में हिन्दी के महत्व को बार-बार रेखांकित किया है।

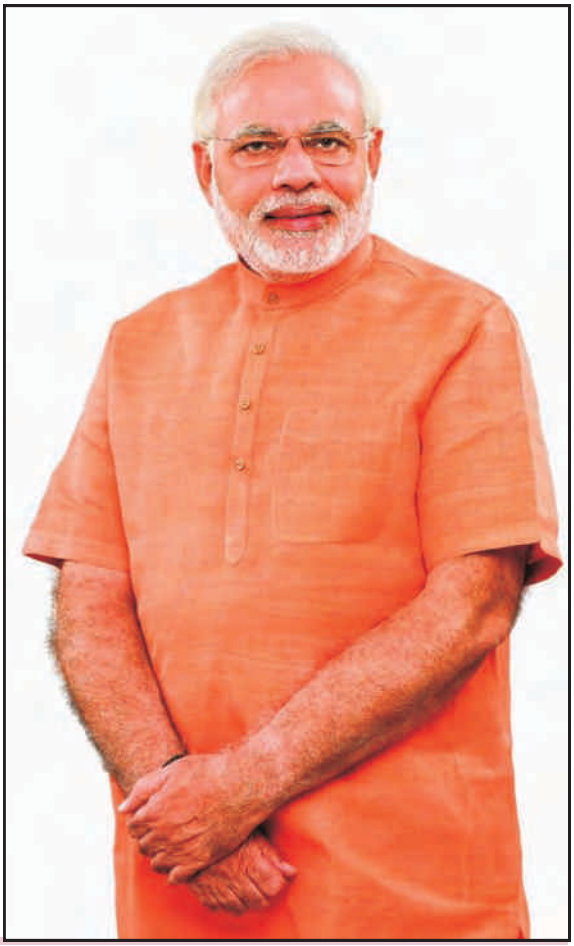

विदेश नीति के मोर्चे पर हिन्दी के महत्व को समझते हुए भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् ने विश्व के अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में देशी तथा विदेशी हिन्दी छात्रों को पढ़ाने हेतु भारतीय अध्ययन पीठ स्थापित किए हैं, जिनमें हिन्दी अध्यापन को विशेष स्थान दिया गया है। वर्तमान समय में ये पीठें भारत की सांस्कृतिक पहचान को दुनिया के सामने प्रस्तुत कर रही हैं और भारत की विदेश नीति में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही हैं।

मई 2014 में केंद्र में नई सरकार का गठन होने के बाद से भारत की विदेश नीति में हिन्दी के प्रति विशेष आग्रह परिलक्षित होता है। प्रधानमंत्री मोदी जी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अपना पहला भाषण हिन्दी में देकर ही यह स्पष्ट कर दिया था कि हिन्दी के

प्रचार-प्रसार के मामले में वे अटल जी की राह का ही अनुसरण करेंगे।

हिन्दी के दो प्रबल समर्थकों पंडित मदनमोहन मालवीय तथा अटलबिहारी वाजपेयी को भारत रत्न देने में भी यही सदाशयता कहीं न कहीं अवश्य प्रकट होती है। वर्तमान सरकार जिन नई नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से देश को प्रगति पथ पर अग्रसर करना चाहती है, उनमें हिन्दी तथा हिन्दीभाषियों की बेहद महत्वपूर्ण भूमिका रहने वाली है। विशेषकर मेक इन इण्डिया, स्किल डेवलपमेंट मिशन, सांस्कृतिक सबंधों की मजबूती तथा आधारभूत ढांचे के विकास में सहयोग जैसे मूलभूत मुद्दों हेतु हिन्दीभाषियों का प्रवासी कॉकस सफलता के नए सोपान स्थापित कर सकता है। भारत सरकार को भी इसका अहसास है, इसीलिये 10 जनवरी, सन 2015 को विश्व हिन्दी दिवस के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम को संबोधित करते हुए विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने विदेश नीति के मामले में अपनी भाषा नीति को स्पष्ट करते हुए कहा था 'जहां तक मेरी अपनी भाषा नीति का संबंध है, मैंने सभी अधिकारियों को कह रखा है कि जब भी द्विपक्षीय वार्ता के लिए कोई विदेशी अतिथि आएगा, अगर वो अंग्रेज़ी जानता है तो मैं अंग्रेज़ी में बात करूंगी क्योंकि मैं बोलूं, वो समझे, वो बोले, मैं समझूं। भाषांतरकार की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। लेकिन अगर कोई जापानी में बोलता है, चीनी में बोलता है, रूसी में बोलता है, स्पेनिश में बोलता है, जर्मन में बोलता है, अरेबिक में बोलता है, फ्रेंच में बोलता है, तो मुझ पर यह बाध्यता मत करिए कि मैं अंग्रेज़ी में बात करूं। फिर मैं भी हिंदी में बात करूंगी ताकि वह यह प्रभाव लेकर जाए कि भारत की भाषा हिंदी है, अंग्रेज़ी नहीं। और मैंने उसी दिन कहा कि इन हर भाषाओं में से हिंदी के भाषांतरकार अगर नहीं उपलब्ध हैं तो तैयार करो।'

उपर्युक्त तथ्यों के अलोक में कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति में हिन्दी को महत्वपूर्ण माना जा रहा है लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। सर्वप्रथम सरकार को संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को उसका चिर प्रतीक्षित स्थान दिलाना चाहिए और विदेशों में हिन्दी के व्याख्यानों, कार्यक्रमों की बृहद् श्रृंखला आयोजित करनी चाहिए, जिससे हिन्दी के माध्यम से प्रवासी और विदेशी नागरिक भी भारत के साथ जुड़ सकें। इसी प्रकार विदेशी हिन्दी विशेषज्ञों के व्याख्यानों को भारत में आयोजित करने की व्यवस्था हो, जिससे अधिकाधिक विदेशियों में हिन्दी के प्रति अभिरुचि जागृत हो और वे भारत के भाषाई राजदूत बनकर उन देशों के साथ भारत के सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने में सहायक हो सकें।

puneetbisaria8@gmail.com

35 वर्ष का अध्यापन अनुभव रखने वाले लेखक, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की साहित्य विद्यापीठ के पूर्व अध्यक्ष, अधिष्ठाता तथा कुलानुशासक हैं। उनके दो कहानी संग्रह तथा दस आलोचना ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हें देश के अनेक सम्मानों से नवाज़ा गया है।

अपेक्षाओं का परिप्रेक्ष्य

प्रो. सूरज पालीवाल

चालीस वर्ष पूर्व विश्व हिंदी सम्मेलन का पहला दीप नागपुर में आलोकित हुआ था। देश-विदेश को हिंदी की अलौकिक आभा से आलोकित करने के पश्चात यह दीप 10-12 सितंबर को भोपाल में प्रज्ज्वलित किया जायेगा। यह दसवां दीप है। दस में एक भी है और शून्य भी। एक आरंभ का प्रतीक है और शून्य ब्रह्मांड का। यानी हिंदी एक से लेकर संपूर्ण ब्रह्मांड तक व्याप्त है और इस व्याप्ति में हिंदी की वह अपूर्व आभा समाहित है जो तमाम कठिनाइयों के बावजूद उसने बचाये रखी है।

प्रश्न यह है कि जब हिंदी में इतनी शक्ति समाहित है, तब विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित करने की क्या आवश्यकता है? इस प्रश्न का उत्तर इसी प्रश्न में निहित है। किसी आयोजन से चाहे वह कितना भी विराट क्यों न हो हिंदी की ताकत नहीं बढ़ जाती बल्कि ताकत का प्रदर्शन होता है, वह साक्षात होती है और दूसरों को अपनी क्षमता से परिचित कराती है। विश्व हिंदी सम्मेलन से भी यही अपेक्षा है कि वह अपने विकास की उत्तरोत्तर क्षमता का प्रदर्शन करे और प्रमाण के साथ यह बताए कि पिछले विश्व हिंदी सम्मेलन से हमने हिंदी में इतनी प्रगति की है। मुझे लगता है कि विश्व हिंदी सम्मेलनों का आयोजन इसी उद्देश्य से किया गया है और किया जाना चाहिए। विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन की शुरूआत से लेकर चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन तक का विषय 'वसुधैव कुटुम्बकम' इसलिए रखा गया था कि हिंदी का एक परिवार है, जो पूरी दुनिया को जोड़ता है। पूरी दुनिया एक कुटुम्ब की तरह है, कुटुम्ब के लोग भेदभाव नहीं करते, एक दूसरे के सुख-दुख में सहभागी होते हैं। हिंदी हमें यही प्रेरणा देती है, वह तोड़ती नहीं, जोड़ती है। दुनिया को देखने का एक दृष्टिकोण प्रदान करती है और अंदर से एक बड़े परिवार का सदस्य होने का विश्वास और गौरव उत्पन्न करती है।

भूमंडलीकरण के बाद पूरी दुनिया में भाषा का संकट अधिक गहराने लगा है। वे भाषाएं जिनके बोलने वाले या तो कम हैं या जिनके पास क्रय शक्ति नहीं है वे धीरे-धीरे समाप्त हो रही हैं। पिछले पचास वर्षों में ढाई सौ से अधिक भाषाएं समाप्त हो गई हैं। अब वही भाषा जीवित रहेगी, जिसके बोलने वालों में मध्यवर्ग की अधिक संख्या होगी। मध्यवर्ग बाजार की ताकत है, उसके

संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव श्री बान की मून

पास क्रय-शक्ति है इसलिए उसकी भाषा को जानने के लिए विश्व के बड़े घराने उत्सुक रहते हैं। हिंदी की जो प्रगति है या हिंदी बोलने वाले जिस प्रकार दुनिया में बढ़ रहे हैं, विश्व के सैकड़ों देशों में हिंदी विभाग हैं तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वे भावुकता में पड़कर हिंदी पढ़ रहे हैं या हिंदी में ऐसा कुछ है जिसे सीखने की उनकी इच्छा अचानक जागृत हुई है। यह मानना भी एक प्रकार का दिवास्वप्न ही है। लगभग तीन वर्ष पहले मैं चीन गया था। वहां बीजिंग के सबसे बड़े विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग हमारे यहां के हिंदी विभागों से भी बढ़ा था। मालूम हुआ कि चीन के छ: बड़े विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। मैंने उत्सुकतावश कारण जानना चाहा तो उन्होंने बताया कि चीन इस समय सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक है। भारत में चालीस करोड़ से अधिक मध्यवर्ग रहता है, उसे अपना माल बेचने के लिये, माल का विज्ञापन करने के लिये हिंदी सीखना जरूरी है। चीन में इसलिए हिंदी सीखी, पढ़ी-पढ़ाई जा रही है कि उसका लाभ बाजार को हो रहा है। कहना न होगा कि चीन कम्युनिस्ट देश है, जहां बिना सरकारी नीति के कोई काम हो ही नहीं सकता। हिंदी पढ़ना सरकारी नीति का हिस्सा है। हमारे विश्वविद्यालय में भी हिंदी सीखने के लिये सबसे अधिक विद्यार्थी चीन से ही आते हैं। आज वे बाजार की ज़रूरत को देखकर अंग्रेज़ी तथा हिंदी को भी अधिक से अधिक सीखने का प्रयास कर रहे हैं।

विश्व हिंदी सम्मेलन से यह अपेक्षा है कि उसमें हिंदी के समक्ष आ रही समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाए और यह देखा जाए कि भूमंडलीकरण के दौर में जब क्षेत्रीय बोलियां संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल होने के लिये जोर लगा रही हैं तब हिंदी का भविष्य क्या रहेगा? बीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली हिंदी को लेकर यह समस्या गंभीर थी, उस समय के साहित्यिकों ने इस समस्या का समाधान खड़ी बोली हिंदी को एकमेव करने और उसे हिंदी की मानक भाषा के रूप में स्थापित करने का बीड़ा उठाया। उस समय की सारी पत्र-पत्रिकाओं और उसके संपादकों की एक ही चिंता थी कि हिंदी बोलने और लिखने के बीच जो समस्याएं आ रही थीं उनका समाधान इस तरह किया जाए कि वह सर्वजनग्राह्य हो। 'सरस्वती' ने यह काम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादकत्व में किया। बाद 1929 ई. में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' प्रकाशित हुआ तो उन्होंने ठेठ राजस्थान की डिंगल से लेकर मैथिली के विद्यापति तक को उसमें शामिल किया। उन्होंने ब्रज के सूरदास तथा अवधी के तुलसीदास तथा जायसी को भी उसी सम्मान के साथ हिंदी का बड़ा कवि माना। हिंदी के विकास और उसकी समृद्ध परंपरा को जानने की यह एक महान समझ थी इसलिए भूमंडलीकरण से पहले तक उस पर कोई उंगली नहीं उठा सका। भूमंडलीकरण के दौर में स्थानीयता को प्रश्रय दिया जाता है ताकि बड़ी समस्याओं पर जनता का ध्यान केंद्रित न हो। इसलिए उन्हें बहुत छोटी-छोटी समस्याओं में उलझा दिया जाता है। यही कारण है कि

हिंदी प्रदेशों में जाति, धर्म के साथ अपनी बोलियों को स्थापित करने की मांग तेजी से उठ रही है। क्षेत्रीय बोलियों का महत्व अक्षुण्ण है, जिसे स्वीकार किया जाना चाहिए। हर विकसित देश में लोक भाषा और उसके लोक साहित्य के लिये अलग विभाग हैं उन विभागों का काम यह है कि वे लोक साहित्य की समृद्ध परंपरा को डिजिटल रूप में संरक्षित करें तथा उसके लोक गीतों को कलाकारों के माध्यम से प्रदर्शित करें और उसके दस्तावेजीकरण का काम करें।

विश्व हिंदी सम्मेलन से यह भी अपेक्षा है कि विदेशी विश्वविद्यालयों में जिस प्रकार की हिंदी पढ़ी-पढ़ाई जा रही है, उसका एक मानक पाठ्यक्रम तैयार किया जाए। वह पाठ्यक्रम किसी एक व्यक्ति या एक विश्वविद्यालय द्वारा तैयार न कराया जाये अपितु उसके लिये राष्ट्रीय स्तर के हिंदी के विद्वान तो हों ही साथ ही उन देशों के वरिष्ठ प्राध्यापकों को भी शामिल किया जाए जिन देशों में हिंदी के प्रति ललक है, जहां अधिक विद्यार्थी हिंदी पढ़ना चाहते हैं। इस पाठ्यक्रम को एक बार में नहीं बल्कि कई स्तरों पर उसके मूल्यांकन और सुझावों के लिए समिति, उपसमितियां बनाई जाएं जो बगैर किसी लोभ-लालच तथा अहम् के एक मानक पाठ्यक्रम बना सकें।

विदेशों में जो हिंदी का शिक्षण हो रहा है, उसके बारे में अधिकांश हिंदी प्राध्यापकों को पता ही नहीं है और पता है भी तो वे अपनी राय देने से वंचित हैं। इसके लिए कुछ समय एक वेबसाइट भी खोली जा सकती है, जिसमें सुझाव आमंत्रित किए जा सकते हैं। कहना न होगा कि हिंदी प्रदेशों में जो पाठ्यक्रम पढ़ाया जा रहा है, वह विदेशों में नहीं पढ़ाया जाना चाहिए। विदेशों के पाठ्यक्रम में अधिक से अधिक परिचयात्मक चीजें होनी चाहिए जो स्तरीय हों। कृति, कृतिकार, विधाएं तथा नवीन विमर्शों को इसमें शामिल किया जाना चाहिए। यह भी बताया जाना चाहिए कि हिंदी की शक्ति के मूल स्रोत क्या हैं? विश्व हिंदी सम्मेलन में इस मुद्दे को गंभीरता से उठाया जाना चाहिए और इसको कार्यान्वित करने की दिशा में ठोस कदम भी उठाने चाहिए। इससे विदेशों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन को ठोस दिशा भी मिलेगी और एक मानक शिक्षण की दिशा भी तय होगी। इस दिशा में पहले ही कार्य किया जाना चाहिए लेकिन अच्छा काम जब किया जाए तभी शुभ है।

आगामी विश्व हिंदी सम्मेलन से अपेक्षाएं अधिक हैं, वह केवल मेला भर नहीं है अपितु हिंदी की प्रगति के मूल्यांकन का प्रस्थान-बिंदु है, इसलिए अपेक्षाओं का परिप्रेक्ष्य सामने आए, यह आवश्यकता भी निर्विवाद है।

surajpaliwal@yahoo.com

प्रदर्शनी का उद्घाटन, 8वां विश्व हिंदी सम्मेलन

है प्यार की भाषा हिन्दी

डॉ. कुंअर बेचैन

घर-बार की भाषा हिन्दी
व्यवहार की भाषा हिन्दी
सारी दुनिया कहती है
है प्यार की भाषा हिन्दी।

हिन्दी का अक्षर-अक्षर
है वीणापाणी का स्वर
गूंजी है जिससे धरती
गूंजा है जिससे अम्बर

हर वर्ण वर्णमाला का
है द्वार पाठशाला का
हर शब्द तपस्या-गृह है
है आसन मृगछाला का

उपहार की भाषा हिन्दी
त्योहार की भाषा हिन्दी
सारी दुनिया कहती है
है प्यार की भाषा हिन्दी।

मधु प्यार की भाषा हिन्दी
मनुहार की भाषा हिन्दी
सारी दुनिया कहती है
है प्यार की भाषा हिन्दी।

हिन्दी की बोली-बानी
जाने है प्रीति निभानी
सब को ही गले लगाया
बनकर खुद हिन्दुस्तानी

उपकार की भाषा हिन्दी
सत्कार की भाषा हिन्दी
सारी दुनिया कहती है
है प्यार की भाषा हिन्दी।

kbechain2012@gmail.com

लेखक प्रसिद्ध भाषाशास्त्री एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के अवकाशप्राप्त आचार्य हैं। आपने विदेशों में अनेक वर्ष शिक्षण कार्य किया। वे अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मान प्राप्त कर चुके हैं।

हिंदी है एक भाषा-समष्टि

प्रो. विमलेश कान्ति वर्मा

हिंदी की है असली रीढ़, गंवारू बोली।
यह उत्तम भावना तुम्हीं ने हममें घोली।
हे जनकवि सिरमौर सहल भाषा लिखवइया।
तुमको क्या समझेंगे ये बाबू भइया।।

—नागार्जुन ('भारतेंदु' कविता से)

भाषा की असली शक्ति उसकी बोलियां होती हैं जिन्हें सामान्यत: प्रयोक्ता गंवारू बोली कह दिया करते हैं, किंतु गंवारू शब्द असभ्य, असंस्कृत का अर्थ देने वाला शब्द नहीं है, जैसा कि प्राय: समझ लिया जाता है। यह गंवारू 'गांव का' अथवा ग्रामीण 'ग्राम का' अर्थ देने वाला शब्द है। व्यक्ति बोली, परिवार की बोली, समुदाय की बोली, ग्राम बोली और फिर व्यापक समाज द्वारा गृहीत होकर बोली भाषा बन जाती है। एक छोर पर व्यक्ति बोली है तो दूसरे छोर पर भाषा। भाषा और बोली समानान्तर चलने वाली दो धाराएं हैं। खड़ी बोली अपने व्यवहार क्षेत्र में जहां बोली है वहीं राष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान-विज्ञान और साहित्य के स्तर पर प्रयुक्त होने वाली परिनिष्ठित खड़ी बोली भाषा भी है।

बोली राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा साहित्यिक प्रभुता प्राप्त कर, बोली से भाषा बन जाती है तो कभी प्रभुता समाप्त होने पर वह भाषा से बोली बन जाती है। ब्रजभाषा एक समय साहित्य रचना की प्रधान भाषा थी किंतु आज वह साहित्य की प्रधान भाषा नहीं रही। बोलियां अपनी समृद्ध शब्द-सम्पदा से भाषा को अभिव्यक्ति वैशिष्ट्य में सक्षम बनाती हैं तो लोकोक्तियां और मुहावरे भाषा को नए अंदाज़ देते हैं। महान कवि इस रहस्य को समझते हैं और अपनी रचनाएं बोलियों में प्रस्तुत कर महान कवि बनते हैं। उनकी प्रतिभा से वे बोलियां भी साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त करती हैं। तुलसी ने रामचरितमानस और जायसी ने पद्मावत अवधी में ही लिखे, जो आज हिंदी साहित्य की निधि हैं।

हिंदी के संदर्भ में बोलियों के योगदान की चर्चा तभी सार्थक होगी जब हिंदी का अर्थ क्या है यह स्पष्ट हो जाए और हिंदी की बोलियां कौन और कितनी हैं इस पर विचार हो। वस्तुत: हिंदी भाषा के संदर्भ में बोलियों के योगदान के दो पहलू हैं, पहला हिंदी का तात्पर्य निर्णय और दूसरा हिंदी के विकास में बोलियों का योगदान।

पहला पहलू बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि हिंदी को लेकर नित नई व्याख्याएं हो रही हैं जो हिंदी के स्वरूप और उसके भविष्य से जुड़ी हुई हैं। राष्ट्रनीति और वस्तुस्थिति में सही तालमेल न होना, आक्रोश और दबाव में नीतियों का प्रभावित होना तरह-तरह की शंकाएं उत्पन्न करते हैं। भारतीय जनसंख्या सर्वेक्षण के घटते-बढ़ते आंकड़े भी संकेत देते हैं। इसे एक व्यावहारिक दृष्टांत से समझा जा सकता है।

दिल्ली में हिंदी से जुड़ी हुई दो प्रमुख संस्थाएं हैं। पहली है, हिंदी अकादमी। अकादमी का उद्देश्य राज्य के स्तर पर हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है। इसका संचालन दिल्ली की राज्य सरकार द्वारा होता है। हिंदी अकादमी के साथ ही अभी दिल्ली सरकार ने भोजपुरी-मैथिली अकादमी की स्थापना की है, जिसका दायित्व दिल्ली में भोजपुरी और मैथिली का प्रचार-प्रसार करना है। कालान्तर में दबाव पड़ने पर हो सकता है भोजपुरी-मैथिली की स्वतंत्र अकादमियां बन जाएं। प्रश्न यह है कि हिंदी अकादमी का दायित्व किस हिंदी के प्रचार -प्रसार का है। राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए या जनभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए। यह जनभाषा हिंदी खड़ीबोली है या इसके अंतर्गत मैथिली-भोजपुरी के अतिरिक्त अन्य सभी हिंदी रूप हैं। वस्तुत: ये दोनों अकादमियां, हिंदी अकादमी परिनिष्ठित खड़ीबोली तथा भोजपुरी-मैथिली अकादमी केवल भोजपुरी और मैथिली के प्रचारार्थ हैं।

देश की दूसरी प्रमुख संस्था 'साहित्य अकादमी' है जिसकी स्थापना राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय भाषाओं के विकास और प्रसार के लिए की गई है। साहित्य अकादमी ने भारतीय भाषाओं में हिंदी को स्थान दिया है, राजस्थानी और मैथिली को भी अपनी स्वीकृत भाषाओं में रखा है। तीनों भाषाओं के साहित्यकारों के लिए अलग-अलग पुरस्कारों की भी वह व्यवस्था करती है। क्या साहित्य अकादमी का हिंदी से तात्पर्य केवल खड़ीबोली हिंदी है या उसकी दृष्टि में राजस्थानी और मैथिली को छोड़कर हिंदी में अन्य सभी हिंदी की बोलियां समाहित हैं। हो सकता है कि भोजपुरी अकादमी बनने के बाद साहित्य अकादमी में भोजपुरी की सत्ता अलग से बन जाए। यदि अवधी और बुंदेली ने जोर पकड़ा तो ये दोनों भाषाएं अकादमी की मान्य भाषाएं बन जाएंगी। मुझे नहीं पता कि साहित्य अकादमी और हिंदी अकादमी 'हिंदी' की व्याख्या किस रूप में करतीं हैं और उस हिंदी का संबंध बोलियों से है भी कि नहीं।

हमारे विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों के पाठ्यक्रमों को भी यदि आप देखें तो कुछ तथ्य उभर कर सामने आएंगे और यह आभास होगा कि असमंजस की यह स्थिति हिंदी को लेकर केवल प्रशासन् के स्तर पर ही नहीं शिक्षा के स्तर पर भी है। हम जानते हैं कि राजस्थान के विश्वविद्यालयों में स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के हिंदी पाठ्यक्रमों में राजस्थानी साहित्य विशेष रूप से पढ़ाया जा रहा है। बिहार के विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों में समकालीन मैथिली और भोजपुरी साहित्य पढ़ाया जा रहा है। लखनऊ विश्वविद्यालय में अवधी साहित्य पर विशेष बल है। दिल्ली विश्वविद्यालय जो देश का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय है वहां समकालीन हिंदी साहित्य में हम केवल खड़ीबोली के साहित्य को पढ़ाते हैं। इस स्थिति से यह स्पष्ट है कि हम हिंदी के व्यापक और समग्र रूप का चित्र अपने छात्रों को आज नहीं दे रहे हैं। परिणामत: हिंदी का जो रूप उभर कर सामने आ रहा है उसमें केवल परिनिष्ठित खड़ी बोली में लिखा साहित्य ही हिंदी

साहित्य कहा जाएगा।

हिंदी की बोलियों की समृद्ध साहित्यिक परंपरा है। उनकी शब्द-संपदा विशाल है। पहले से अधिक आज उनमें सृजनात्मक साहित्य प्रकाशित हो रहा है, किंतु हम आज हिंदी को केवल खड़ी बोली हिंदी ही मान बैठे हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि हिंदी को फिर से पारिभाषित किया जाए। उसके क्षेत्र को समझा जाए। उस क्षेत्र की कौन-कौन सी बोलियां हैं और उनकी शक्ति और संभावनाएं क्या हैं? यह स्पष्ट हो जिससे हिंदी का सही रूप सामने आए।

हिंदी का अर्थ मात्र खड़ी बोली नहीं है। हिंदी एक भाषा-समष्टि का नाम है जिसके अंतर्गत वह समस्त भाषा रूप आते हैं जो इस क्षेत्र में बोले जाते हैं। हिंदी एक आधुनिक भारतीय आर्यभाषा है जो उत्तर में नेपाल की तराई से लेकर दक्षिण में रायपुर और खंडवा तक, पूर्व में मिथिला और भागलपुर के जिलों से लेकर पश्चिम में बाड़मेर और जैसलमेर तक बोली जाती है। हिंदी क्षेत्र की सीमावर्तिनी भाषाएं पश्चिम में सिंधी और गुजराती, उत्तर में पंजाबी और नेपाली, पूर्व में बंगला और उड़िया तथा दक्षिण में मराठी और तेलुगु हैं। इन भाषाओं से आवर्तित क्षेत्र हिंदी भाषी क्षेत्र है और इस क्षेत्र के अंतर्गत भारतीय जनसंख्या सर्वेक्षण 1991 के अनुसार 48 मातृभाषाओं की गणना की गई है और जिन्हें हिंदी के अंतर्गत रखा गया है। यह हिंदी भाषा क्षेत्र देश का एक बड़ा भूभाग है और इसमें देश के कई बड़े प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, राजस्थान, हिमाचल, हरियाणा, दिल्ली तो हैं ही अंडमान निकोबार तथा अरुणाचल जैसे दूरस्थित क्षेत्र भी हैं जहां की प्रधान भाषा हिंदी है।

इस बड़े हिंदी क्षेत्र में बोली जाने वाली 48 मातृभाषाओं में हिंदी की 17 प्रधान बोलियां ये हैं—मारवाड़ी, मेवाती, मालवी और जयपुरी, अवधी, बघेली, और छत्तीसगढ़ी, ब्रज, खड़ी बोली, हरियाणवी, बुंदेली और कन्नौजी, मैथिली, मगही और भोजपुरी, गढ़वाली और कुमाऊंनी, जिन्हें हम सुविधा की दृष्टि से राजस्थानी हिंदी, पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी, बिहारी हिंदी और पहाड़ी हिंदी नाम दे देते हैं। ये सभी बोलियां हिंदी की प्रधान बोलियां हैं। यही कारण है कि मारवाड़ी में लिखे पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो, बेलि किसन् रुक्मणी, मैथिली में लिखी गई, विद्यापति की पदावली, अवधी में लिखी गई, चित्रावली, मधुमालती, ब्रज में सूरदास का सूरसागर, पद्माकर का जगद्विनोद, मतिराम का ललित ललाम, जगन्नाथ दास रत्नाकर का उद्धव शतक, खड़ी बोली में लिखी गई कामायनी, साकेत और गोदान आदि हिंदी की कृतियां मानी जाती हैं।

संभवत: आज हमें भ्रम हो गया है कि हिंदी में खड़ी बोली के अतिरिक्त हिंदी की अन्य बोलियों में कोई सृजनात्मक लेखन नहीं हो रहा है। आज से 200 वर्ष पहले तो केवल साहित्यिक रचनाओं से इन बोलियों की महत्ता की पहचान होती थी किंतु आज इनका क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। आज हिंदी की इन बोलियों में पत्र-पत्रिकाएं निकल रही हैं और निरंतर साहित्य सृजन हो रहा है। इन बोलियों में फ़िल्म बन रही हैं। भोजपुरी की फ़िल्म 'गंगा-जमुना', भोपाली की 'शोले', राजस्थानी की 'पहेली' बुंदेली की 'बैंडिट क्वीन', अवधी में 'शतरंज के खिलाड़ी' दखिनी में 'अंकुर', टपोरी में 'मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस.' आदि कितनी ही फ़िल्मों के उदाहरण दिए जा सकते हैं। इतना ही नहीं परिनिष्ठित खड़ी बोली में लिखी गई साहित्यिक कृतियों में आंचलिकता का प्रभाव इतना अधिक है कि इन बोलियों में जो कोड मिश्रण है, उसको समझे बिना आप साहित्य का पूर्ण रसास्वादन भी नहीं कर सकते। मैत्रेयी पुष्पा की 'इदन्नमम', चित्रा मुद्गल की 'आँवा', श्रीलाल शुक्ल की 'राग दरबारी' की आंचलिकता क्या यह संकेत नहीं देती कि हिंदी की धरती कितनी व्यापक है।

हिंदी एक अक्षयवट है। इसकी अनेक बोलियां हैं। देश-विदेश तक यह फैली हुई है। कलकतिया हिंदी पर तो प्रसिद्ध भाषाशास्त्री प्रो. सुनीति कुमार चटर्जी ने आज से पचास वर्ष पूर्व अपना शोध आलेख लिखकर यह बताना चाहा था कि हिंदी की व्यापकता और महत्ता उसकी अन्तर्प्रांतीयता में है। इसी प्रकार मदरासी हिंदी, हैदराबादी हिंदी (दखिनी), पंजाबी हिंदी आदि हिंदी के कितने ही रूप विकसित हो चुके हैं।

यह तो रही देश की बात, विदेशों में हमारे प्रवासी भारतीयों ने, जो आज से लगभग 150 वर्ष पूर्व शर्तबंदी प्रथा के अधीन बहला फुसला कर गन्ने के खेतों में काम करने के लिए ब्रिटिश एजेंटों द्वारा फीजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, ब्रिटिश गयाना तथा दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में ले जाए गए थे, उन्होंने अपने-अपने देशों में प्रवास के दौरान देश की शब्दावली लेकर अपनी हिंदी का विकास किया, जिसमें वे आज साहित्यिक रचनाएं कर रहे हैं और अपने-अपने देशों में बड़े साहित्यकारों के रूप में उनकी गणना होती है। फीजी में गिरमिटियों द्वारा बोली जाने वाली फीजी हिंदी को नैताली नाम दिया गया। अधिक समय नहीं हुआ जब सूरीनाम में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन में फीजी बात में अपना उपन्यास 'डउका पुरान' लिखने वाले प्रो. सुब्रमणी को भारत सरकार ने हिंदी पुरस्कार से सम्मानित किया था। फीजी बात में लिखने वाले सुब्रमणी अकेले साहित्यकार नहीं हैं, प्रो. रेमण्ड पिल्लई, प्रो. ब्रज वी. लाल, महेन्द्र चन्द्र शर्मा विनोद के नाम उल्लेखनीय हैं। सूरीनाम के डॉ. जीत नाराइन, हरिदेव सहतू, सूर्य प्रसाद वीरे, चित्रा गजादीन कितने ही लेखक हैं जो अपनी कृतियों से हिंदी को निरंतर समृद्ध कर रहे हैं। शायद हिंदी के विश्वव्यापी विस्तार को हमने कभी देखा नहीं। उस पर विचार नहीं किया कि हिंदी की इन विदेशी भाषिक शैलियों ने हिंदी भाषा को कितना समृद्ध किया है।

vimleshkanti@gmail.com

लेखक भाषा विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय, हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा में अधिष्ठाता हैं।

छत्ते का अमृत कोश

प्रो. हनुमानप्रसाद शुक्ल

'भेदों में अभेद-दृष्टि ही सच्ची तत्व-दृष्टि है।' - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

हिंदी रूप-रचना की दृष्टि से भले ही विश्लेषणात्मक भाषा हो, किंतु व्यक्तित्व निर्माण की दृष्टि से संश्लिष्ट और समावेशी है। यह सर्वविदित है कि 'हिंदी' शब्द पहले 'देशवासियों' के अर्थ में प्रचलित रहा है, 'भाषा' के अर्थ में वह बहुत बाद में रूढ़ हुआ जिसका एक लंबा इतिहास है। भाषा के अर्थ में जब 'हिंदी' शब्द स्थिर हुआ तो किसी आंचलिक या प्रांतीय भाषा के अर्थ में नहीं, बल्कि देशभाषा (राष्ट्रभाषा) के रूप में ही स्थिर हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक में केशवचंद्र सेन ने भारत वर्ष की एकता और मुक्ति के उपाय स्वरूप राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को देखा था। साथ ही, महर्षि दयानंद सरस्वती को भी हिंदी में लिखने और प्रचार की प्रेरणा दी थी। लगभग आधी शताब्दी के बाद यही बात महात्मा गांधी ने भी कही और राष्ट्रभाषा की संभावना हिंदी में ही तलाशी-देखी। केशवचंद्र सेन बंगला भाषी थे तथा दयानंद और गांधी जी की मातृभाषा गुजराती थी।

केशवचंद्र सेन और गांधी जी के बीच इस विचार के प्रतिपादकों और अनुयायियों की एक लंबी सूची है जिसमें पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिण भारतीय की तुलना में उत्तर भारतीयों की संख्या काफी कम है - बंकिमचंद्र चटर्जी, आचार्य क्षितिजमोहन सेन, श्री अरविंद, रवींद्रनाथ ठाकुर, रमेशचंद्र दत्त, सरोजिनी नायडू, सुभाषचंद्र बोस, लोकमान्य तिलक, रंगनाथ रामचंद्र दिवाकर, एन.सी.केलकर, आर.जी.भंडारकर, विनोबा भावे, टी. विजयराघवाचार्य, मोटुरि सत्यनारायण, गोपाल स्वामी आयंगर, सी.पी. रामास्वामी अय्यर, एस. निजलिंगप्पा, अनंत शयनम् आयंगर, एम.वेंकटेश्वरन, एन.नागप्पा, टी.माधवराव, आई.पांडुरंग, सरदार वल्लभभाई पटेल, काका कालेलकर, कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, मदनमोहन मालवीय, पुरुषोत्तम दास टंडन, राहुल सांकृत्यायन, वासुदेवशरण अग्रवाल, राम मनोहर लोहिया आदि। यह पूरी सूची नहीं

है, पर यह अनुमान लगाने के लिए काफी है कि राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रस्तावक, समर्थक और प्रचारक कौन और कैसे लोग थे। हिंदी के अखिल भारतीय चरित्र का इससे बड़ा साक्ष्य क्या हो सकता है?

भाषा का बहुत गहरा संबंध धर्म, संस्कृति, दर्शन, साहित्य, विज्ञान और जीवन के नाना व्यापारों से होता है। कोई भाषा इन क्षेत्रों में जितनी उन्नत होती है, उसके व्यापक प्रसार की संभावना भी उतनी ही बढ़ जाती है और वह उस भूगोल का अतिक्रमण कर जाती है जिसमें उसका आविर्भाव होता है। लगभग तीन-साढ़े तीन हजार वर्ष पहले भारत के पश्चिमोत्तर के पंचनद (पंजाब) प्रांत के लोगों ने उपर्युक्त दृष्टि से अपनी भाषा को इतना उन्नत और विकसित किया कि उनकी भाषा 'संस्कृत' हो गयी और ऐसी 'संस्कृत' हुई कि धर्म, दर्शन, विज्ञान, साहित्य, संस्कृति और जीवन की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में थोड़े-बहुत अंतर के साथ लगभग तीन हजार वर्षों तक शीर्ष पर बनी रही। इतना ही नहीं, उसन् इतने विराट हिमखंड का रूप धारण किया जो नाना प्रकार के भाषा-प्रवाहों को सरस बनाता रहा। समस्त भारत की विभिन्न भाषाओं का शब्द भंडार इसका एक बड़ा साक्ष्य है।

एक उदाहरण से इस बात को अच्छी तरह से समझा जा सकता है। मलयालम कुल-गोत्र की दृष्टि से द्रविड़ भाषा मानी जाती है। दूसरी सहस्राब्दी के पूर्वार्द्ध में मलयालम तमिल प्रभावापन्न भाषा थी जिसे 'चेंतमिष' कहा जाता था। तमिल के अतिचार से मुक्ति के लिए तत्कालीन केरल की स्थानीय भाषा ने अपने स्वतंत्र विकास का मार्ग चुना तो उसका पाथेय सुदूर पश्चिमोत्तर में विकसित हुई संस्कृत ही बनी। उसका सहारा पाकर उसन् स्वयं को 'मणिप्रवालम्' के रूप में विकसित किया जिसमें 'मणि' संस्कृत हुई और 'प्रवाल' मलयालम। यह मणिप्रवालम ही आधुनिक मलयालम की पूर्वजा भाषा है।

यदि संस्कृत केवल पंजाब की भाषा होती तो क्या आधुनिक मलयालम जैसी समृद्ध भाषा का उत्तराधिकार आज हमें प्राप्त हो पाता? भाषा भूगोल में जन्म जरूर लेती है, किंतु अपनी विराटता में उसका अतिक्रमण कर जाती है। भाषा को अकेले भूगोल से बांधकर देखना सोच की संकीर्णता का ही परिचायक हो सकता है। बंगला, ओड़िया, तेलुगु, कन्नड़, मराठी ऐतिहासिक कारणों से थोड़े-बहुत अंतर के साथ मलयालम से भिन्न नहीं है। उत्तर भारतीय भाषाओं के बारे में तो अलग से कुछ कहने की जरूरत ही नहीं होनी चाहिए।

एक और बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कोई भी भाषा शासन् और सत्ता की भाषा अर्थात राजभाषा होकर ही देशभाषा नहीं हो सकती। लंबे समय और सत्ता बल से उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव भले ही बढ़े। मध्यकाल में फारसी लंबे समय तक राजभाषा रही, लेकिन इस देश की चेतना की संवाहक नहीं बन पाई। इसी प्रकार उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में सत्ता बल के बावजूद अंग्रेज़ी जन-भाषा नहीं बन पाई। अंग्रेज़ी के जानकार एक-दो प्रतिशत लोग भले ही आत्ममुग्धता

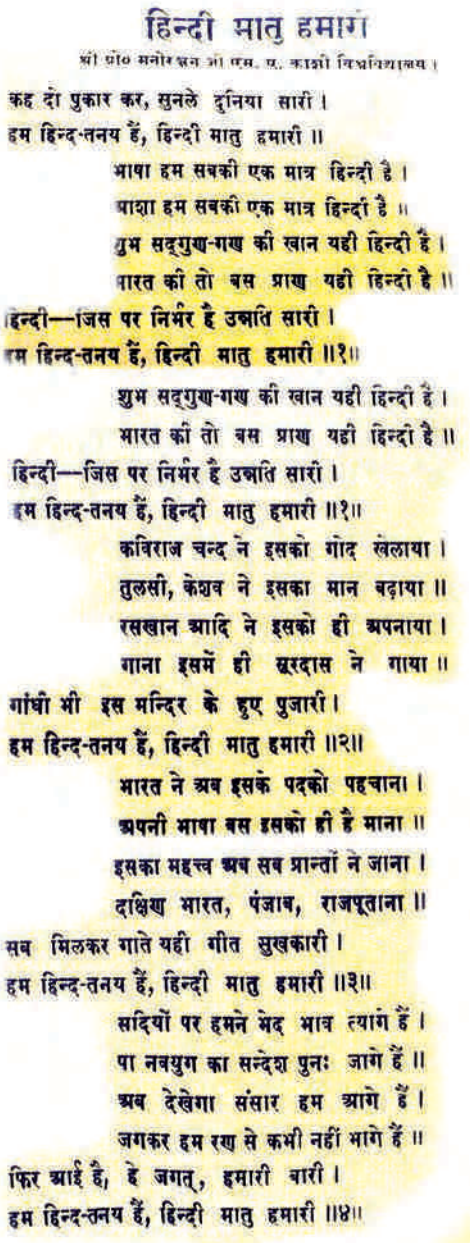

हिन्दी मातु हमारी

श्री प्रो० मनोरञ्जन जी एम. ए. काशी विश्वविद्यालय।

कह दो पुकार कर, सुनले दुनिया सारी।
हम हिन्द-तनय हैं, हिन्दी मातु हमारी॥
भाषा हम सबकी एक मात्र हिन्दी है।
आशा हम सबकी एक मात्र हिन्दी है॥
शुभ सद्गुण-गण की खान यही हिन्दी है।
भारत की तो बस प्राण यही हिन्दी है॥
हिन्दी—जिस पर निर्भर है उन्नति सारी।
हम हिन्द-तनय हैं, हिन्दी मातु हमारी॥१॥
शुभ सद्गुण-गण की खान यही हिन्दी है।
भारत की तो बस प्राण यही हिन्दी है॥
हिन्दी—जिस पर निर्भर है उन्नति सारी।
हम हिन्द-तनय हैं, हिन्दी मातु हमारी॥१॥
कविराज चन्द ने इसको गोद खेलाया।
तुलसी, केशव ने इसका मान बढ़ाया॥
रसखान आदि ने इसको ही अपनाया।
गाना इसमें ही सूरदास ने गाया॥
गांधी भी इस मन्दिर के हुए पुजारी।
हम हिन्द-तनय हैं, हिन्दी मातु हमारी॥२॥
भारत ने अब इसके पदको पहचाना।
अपनी भाषा बस इसको ही है माना॥
इसका महत्त्व अब सब प्रान्तों ने जाना।
दक्षिण भारत, पंजाब, राजपूताना॥
सब मिलकर गाते यही गीत सुखकारी।
हम हिन्द-तनय हैं, हिन्दी मातु हमारी॥३॥
सदियों पर हमने भेद भाव त्यागे हैं।
पा नवयुग का सन्देश पुनः जागे हैं॥
अब देखेगा संसार हम आगे हैं।
जगकर हम रण से कभी नहीं भागे हैं॥
फिर आई है, हे जगत्, हमारी बारी।
हम हिन्द-तनय हैं, हिन्दी मातु हमारी॥४॥

आज़ादी मिलने से दो दशक पहले लिखी गई यह कविता बताती है कि पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने की क्षमता हिन्दी में है, इस बात को देशवासी जानते थे।

का शिकार बने रहें, लेकिन खांटी अंग्रेज़ी लोग उनमें मौलिक प्रतिभा और चिंतन का उन्मेष नहीं देखते।

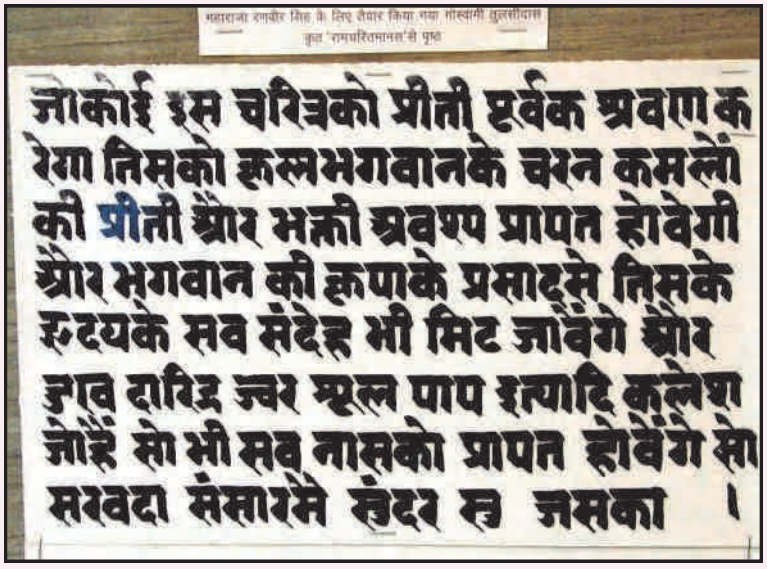

स्वाधीन भारत में हिंदी को भारत संघ की राजभाषा बनाया गया और इस रूप में उसे विकसित करने के लिए उस पर अकूत धन भी खर्च किया गया, किंतु राजभाषा होने भर से उसकी जितनी प्रगति हुई है, वह हम सबके सामने है। हिंदी का जितना भी अखिल भारतीय प्रसार और स्वीकार है वह अपने स्वाधीनता आंदोलन की विरासत के कारण, और राष्ट्रभाषा हिंदी के कारण, राजभाषा हिंदी की भूमिका इस संबंध में कम ही है। कहने का अर्थ यह कि राजभाषा होना अथवा धनबल या सत्ताबल से संपन्न होना किसी भाषा के राष्ट्रीय स्वीकार के लिए अकेले पर्याप्त नहीं है।

हिमालय और विंध्य पर्वतों के बीच स्थित मध्यदेश, जहां हिंदी भाषा का मुख्य रूप से विकास हुआ है, वहां अनेक भाषाएं बोली या व्यवहार में लायी जाती हैं। इन भाषाओं के साथ भी हिंदी के संबंध को समझने की जरूरत है। इस भूगोल में मैथिली और मारवाड़ी के बीच मगही, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, खड़ी बोली, बुंदेली, मालवी आदि भाषाएं बोली जाती हैं। इन भाषाओं को ग्रियसन् जैसे साम्राज्यवादी भाषाविदों के अनुकरण पर प्राय: लोग 'बोली' या 'डायलेक्ट' कहते हैं। इन भाषाओं के लिए 'बोली' या 'डायलेक्ट' का संबोधन उचित प्रतीत नहीं होता। बोली किसी भाषा में पाये जाने वाले वैविध्य का सूचक होती है, जैसे 'बैसवारी' 'अवधी' की बोली मानी जा सकती है। भाषा-बोली का अंतर वैविध्य के अलावा विकास पर भी निर्भर करता है। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की टिप्पणी ध्यान देने योग्य है- 'कोई भाषा जितने अधिक व्यापारों में मनुष्य का साथ देगी, उसके विकास और प्रचार की उतनी ही अधिक संभावना होगी।'

भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी का जो संबंध मध्यदेश की जनपदीय भाषाओं के साथ है, शेष भारत की भाषाओं के साथ उसके संबंध की प्रकृति उससे भिन्न जरूर है, किंतु धर्म, संस्कृति, दर्शन और ज्ञान परंपरा की साझी विरासत के कारण यह संबंध बहुत गहरा है। भारत के स्वाधीन होते समय जिस हिंदी साम्राज्यवाद की आशंका व्यक्त कर छठे-सातवें दशक में भारत के भाषायी और सांस्कृतिक परिवेश को विषाक्त करने की कोशिशें की गईं, वे निर्मूल और निराधार थीं, क्योंकि जितना हिंदी का आत्मीय संबंध निज जनपदीय भाषाओं से है, अन्य भाषाओं से उससे कम नहीं है।

हिंदी साम्राज्यवाद की बात उन लोगों द्वारा प्रचारित की गई थी जिनके कुछ निहित स्वार्थ थे। सत्ता और महत्ता उनकी प्रेरक थी। इस हिंदी साम्राज्यवाद की आड़ में अंग्रेज़ी आभिजात्यवाद और निहित स्वार्थों का गठजोड़ था।

हिंदी की कल्पना सामुदायिक सहयोग पर आधारित एक लिमिटेड कंपनी की तरह की जा सकती है। किसी भी कंपनी के आरंभकर्ता जो भी हों, पर कंपनी का विकास इस बात पर निर्भर करेगा कि उसमें सामुदायिक भागीदारी निरंतर बढ़ती जाए। बाद में जुड़ने वाले समुदायों के लिए यह हितकर होगा कि कंपनी में उनका शेयर निरंतर बढ़ता रहे, यदि यह आनुपातिक रूप से बढ़ता है तो कंपनी की दीर्घजीविता के लिए अधिक लाभकारी होता है। कंपनी की शुरूआत करनेवालों और कंपनी के बुनियादी चरित्र पर इसका प्रभाव भले ही पड़े, किंतु उसका विस्तार निश्चय ही होगा। मराठी, तमिल, तेलुगु, बंगला, कन्नड़, गुजराती आदि सभी को हिंदी की लिमिटेड कंपनी में अपना शेयर निरंतर बढ़ाना चाहिए।

नए-नए शब्दों और अवधारणाओं को हिंदी से जोड़ने की चेष्टा करनी चाहिए इससे एक प्रकार का आत्मीय रिश्ता भी विकसित होगा और अधिकार भी बढ़ेगा, जैसे कि ऊपर दिए गए उदाहरण में मलयालम ने संस्कृत के साथ मिलकर मणिप्रवालम को विकसित किया था। पुरातन संस्कृत की तरह ही हम सबको आधुनिक संस्कृत 'हिंदी' का ऐसा अक्षय कोष तैयार करना होगा जिससे हम कभी भी अपनी किसी आवश्यकता की पूर्ति में समर्थ रह सकें, जैसे मधुमक्खियां मिलकर एक बड़े छत्ते का निर्माण करती हैं, नाना स्रोतों से रस का आहरण कर उसे भरपूर देती हैं और सर्वथा अपने इस अमृत कोश की प्राण देकर रक्षा करती हैं।

shuklahp7@gmail.com

लेखिका 'भाषा साहित्य भवन' की निदेशक एवं हिन्दी विभाग गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद की अध्यक्ष हैं।

'इतर' और 'भिन्न'

डॉ. रंजना अरगडे

अलगाव तथा विभेद की भावना दूर हो, इस हेतु एक लंबे समय से ग़ैर हिंदी शब्द-प्रयोग के स्थान पर हिंदीतर शब्द-प्रयोग का प्रचलन स्वीकृत हुआ है। इतर शब्द एक अलग पहचान का बोध तो देता ही है। हिंदी प्रदेशों से इतर अन्य प्रदेशों में हिंदी की एक भिन्न पहचान का बोध इस प्रयोग में देखा जा सकता है। इतर कहने से भिन्न का बोध होता है और ग़ैर कहने से अन्य का, दूसरे का, पराएपन का बोध होता है, भिन्न और अन्य। अर्थात हिंदीतर भिन्न है और ग़ैर हिंदी अन्य है। फिर इसी शब्द-बोध का विस्तार विश्व स्तर पर हिंदी के रूप में भी देखा जा सकता है। अर्थात हिंदी के तीन स्वरूप हुए।

1) भारत में हिंदी के मुख्य प्रदेशों की हिंदी
2) भारत के हिंदीतर प्रदेशों की हिंदी
3) विश्व में प्रयुक्त हिंदी

किन्तु आज अगर हिंदीतर राज्यों में हिंदी की बात करनी हो तो कुछ प्रश्न हैं जिनका उत्तर ढूंढना बहुत आवश्यक है, जैसे-

1) जो हिंदी भाषा किसी समय साधु-संतों की भाषा के रूप में सम्मान प्राप्त कर चुकी थी, उसे आज इतना विरोध और कई बार घृणा तक, अथवा अ-प्रियता और उपेक्षा क्यों सहनी पड़ रही है?
2) लोगों के मन में हिंदी का स्थान आज दोयम क्यों हो गया है?
   आज हिंदीतर क्षेत्रों में हिंदी क्या सांस ले पा रही है और क्या हिंदी भाषी क्षेत्रों में वह बक़ौल रघुवीर सहाय, दुहाजू की बीवी ही है ?
3) हिंदी का स्वरूप आज कैसा है?
4) प्रचार माध्यमों के आधिक्य और बहु-विविधता के बावजूद हिंदी की

स्वीकृति में बाधा क्यों?

अंग्रेज़ों के उपनिवेश में हिंदी और उर्दू दो अलग धर्मों की भाषा के रूप में जिस तरह घोषित हुई, भाषा-धर्म का वैसा विभाजन आज तक लगभग, उसी तरह चल रहा है। यह एक सर्व विदित तथ्य

है कि कोई भी भाषा धर्म की भाषा तभी मानी जाती है जब उसमें कोई धर्म ग्रंथ लिखा गया हो। न ही हिंदी में और न ही उर्दू में कोई मूल धर्मग्रंथ लिखा गया है। लेकिन इस तरह के राजनीतिक अप-प्रचार का प्रभाव भारतीय मानस पर गहरा पड़ा है। सब कुछ जानते-समझते हुए भी हम इस राजनीतिक षड्यंत्र में से आज तक बाहर नहीं निकल सके हैं। आज हिंदी के प्रति उपेक्षा, विरोध और कई बार घृणा का भाव देखा जा रहा है, उसके पीछे स्वतंत्रता के बाद की स्थितियां ही हैं, जिनकी जड़ें भारतीय उपनिवेश काल में खोजी जा सकती हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष के दौरान हिंदी ने लोकमत बनाने का अथवा लोक-जागृति का काम किया। परन्तु इसका एक अर्थ यह भी निकाला जा सकता है कि यह एक तरह से विदेशी शासक से राजकीय सत्ता की प्राप्ति, स्व-सत्ता प्राप्त करने का एक उपकरण भी तो बनी। स्वतंत्रता के बाद भी जब भाषायी सत्ता (राजभाषा) का प्रश्न आया तब हिंदी को लेकर अन्य हिंदीतर राज्यों में इसलिए भी संदेह पनपा क्योंकि हिंदी देश के उत्तरी भाग की भाषा थी और राजभाषा अगर उत्तर की होगी तो राज सत्ता भी वहीं से आएगी, यह अन-लिखा कानून था। बाद में इसका विरोध भी हुआ। भारत की आरंभिक भाषा नीति में यह निहित था कि जहां हिंदीतर भाषी राज्यों में हिंदी का अध्ययन होगा, वहीं हिंदी भाषी राज्यों में भारत के किसी भी एक प्रदेश की भाषा का अध्ययन, अध्यापन अपेक्षित था। पर वास्तव में ऐसा कुछ नहीं हुआ। परिणामतः हिंदीतर प्रांतों में हिंदी का अध्यापन हुआ, हिंदी में साहित्य भी रचा गया। हिंदी को सम्मान भी मिला। परन्तु हिंदी भाषी राज्यों में जो अपेक्षित था वह न हुआ। हिंदी प्रदेश में उन राज्यों की भाषाओं की कोई पूछ, पहचान नहीं थी। हिंदीतर प्रदेशों में रहने वाले हिंदी रचनाकार, अध्यापक, शोधार्थी और अनुवादक अपनी भाषा के साहित्य को हिंदी भाषा में अनूदित कर रहे थे और हिंदी की ताकत बढ़ा रहे थे। अनुवाद और क्षेत्रीय शोध के माध्यम से हिंदी की सत्ता और हिंदी के ज्ञान-क्षेत्र को विस्तार दे रहे थे। परन्तु तुलना में इन भाषाओं का साहित्य हिंदी में उतनी मात्रा में नहीं आ सका। जो आया वह प्रादेशिक अनुवादकों और शोधार्थियों के द्वारा ही आया। हिंदी प्रदेशों में रहने वाले हिंदी अध्येताओं ने इस प्रकार का कोई विशेष प्रयास नहीं किया। यह प्रयास भारतेन्दु में देखा जा सकता है। ब्रज, खड़ी बोली के अलावा भारतेन्दु गुजराती, मराठी और बांग्ला भी जानते थे और अंग्रेज़ी तो घलुए में मिली हुई थी। स्वतंत्रता के पूर्व तक इस तरह के द्वि-भाषी और बहुभाषी रचनाकार थे। मध्यकाल में हिंदी की स्वीकृति के अभौतिक कारण थे जबकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी के संदर्भ में सत्ता-प्राप्ति केन्द्र में आई। हिंदीतर प्रदेशों की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएं

भूलनी नहीं चाहिए।

हिंदी का धुर विरोधी माना जाने वाले राज्य तमिलनाडु, इसके एक शहर चेन्नई में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार समिति जैसी शैक्षणिक संस्था हिंदी के पक्ष में आज भी खड़ी है, और दूसरी घटना है, हिंदी के केन्द्रीय स्थान, आगरा शहर में एक तमिल भाषी, श्री मोटुरि सत्यनारायण जी ने केन्द्रीय हिंदी संस्थान की परिकल्पना को साकार किया जो आज देश के विभिन्न हिंदीतर राज्यों में और विदेशों में भी हिंदी भाषा और साहित्य के प्रसार और विकास में लगी हुई है। उसी तरह गुजरात जैसे राज्यों में गुजराती के साथ-साथ हिंदी को दूसरी राजभाषा का दर्जा देना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। हां, दिल्ली विश्वविद्यालय में ज़रूर एक भाषा विभाग है, जहां भारत की अन्य भाषाएं पढ़ाई जाती हैं, पर उतना काफी नहीं है। अगर हिंदी भाषी राज्यों ने दक्षिण अथवा अन्य राज्यों का भाषा सीखने में कुछ अतिरिक्त श्रम और इच्छा-शक्ति बताई होती तो आज भारत का भाषा -चित्र कुछ अलग होता।

आज हिंदीतर भाषी राज्यों में हिंदी के पठन-पाठन का प्रचलन कम हो गया है। कहीं अंग्रेज़ी का रुझान, कहीं हिंदी का विरोध और कहीं राज्य सरकार की नीतियां इसके लिए ज़िम्मेदार मानी जा सकती हैं। गुजरात युनिवर्सिटी के जिन केन्द्रों में 2005 तक स्नातकोत्तर कक्षाओं में 100-100 विद्यार्थियों के दो डिवीज़न हुआ करते थे, वहां आज पिछले पांच वर्षों से दाखिला बंद है। गुजरात विश्वविद्यालय में अनुस्नातक भवन के साथ साथ विश्वविद्यालय के कई महाविद्यालयों में अनुस्नातक कक्षाएं चला करती थीं और कुल परीक्षार्थियों की संख्या 2000-4000 तक पहुंच जाती थी। वहां आज 300-350 तक सिमट गई है। गुजरात के अन्य विश्वविद्यालयों की भी यही स्थिति है। यह एक गंभीर मुद्दा है।

औपचारिक संवाद में हिंदी की अनिवार्यता नहीं थी। अतः हिंदीतर भाषी राज्यों में हिंदी को गंभीरता से नहीं लिया गया। मीडिया की भाषा एक अलग ही हिंदी है, खड़ी बोली में लिखे साहित्य की हिंदी भी जुदा है। और अवधी –मैथिली और ब्रज में लिखे साहित्य को अगर उन बोलियों तक ही सीमित करें, उसे हिंदी के व्यापक रूप के साथ न जोड़ें तो हिंदीतर भाषी राज्यों में कौन-सी हिंदी पढ़ाई जाए? राजस्थानी, ब्रज, अवधी, मैथिली अथवा छत्तीसगढ़ी इन राज्यों के पास विकल्प रहेगा कि वे किसी भी साहित्य और भाषा को एक विषय के रूप में पढ़ें। राज्यों के विभाजन के बाद छत्तीसगढ़ी का विकास हुआ उसी तरह बोलियों की भाषा के रूप में स्वीकृति नए प्रश्नों को खड़ा करेगी। हिंदी राज्यों में भी फिर बोलियों के इलाकों के अनुसार अध्ययन होगा। मथुरा के महाविद्यालयों में ब्रजमंडल का साहित्य पढ़ाया जाएगा और लखनऊ में अवधी का। क्या हिंदी का ऐसा भविष्य हमें स्वीकृत है? क्या बोलियों की अस्मिता और पहचान की क़ीमत पर हिंदीतर राज्यों में हिंदी के प्रवेश पर क्या रोक लगाना चाहते हैं। राजस्थान में राजस्थानी और उत्तराखंड में कुमाऊंनी एक अलग विषय के रूप में पढ़ाई जाती है, क्या हम हिंदी से इसे स्थानांतरित करना चाहते हैं? हां, इसमें एक ऐसी स्थिति निर्मित हो सकती है कि जैसे इंडियन इंग्लिश का, और कैनेडियन इंग्लिश का, एक अलग पाठ्यक्रम है, वैसे हम भविष्य में मराठी-हिंदी या गुजराती-हिंदी अथवा बंगाली-हिंदी का पाठ्यक्रम पढ़ने लगेंगे। इसमें बुरा कुछ भी नहीं है, पर इससे क्या उद्देश्य हासिल हो सकता है, यह एक प्रश्न तो रहेगा ही।

राज्यों के साथ जुड़कर ही केन्द्र स्थिर हो सकता है, भारतीय भाषाओं की उन्नति के साथ-साथ ही हिंदी की उन्नति जुड़ी है, यह तथ्य जब तक हमारे बोध का विषय नहीं बनता, तब तक न ही विकास होगा और न ही 'हिय का शूल' मिटेगा।

argade_51@yahoo.co.in

लेखक केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, भारत सरकार के सेवानिवृत्त निदेशक तथा एक वरिष्ठ भाषाशास्त्री हैं।

हिंदी की समावेशी और संश्लिष्ट परंपरा

प्रो. महावीर सरन जैन

हम हिन्दी भाषा के इतिहास के बहुत महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़े हुए हैं। आज बहुत सावधानी बरतने की जरूरत है। आज हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने के जो प्रयत्न हो रहे हैं सबसे पहले उन्हें जानना और पहचानना जरूरी है और इसके बाद उनका प्रतिकार करने की जरूरत है। यदि आज हम इससे चूक गए तो इसके भयंकर परिणाम होंगे।

एक ओर हिन्दीतर राज्यों के विश्वविद्यालयों और विदेशों के लगभग 176 विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं में हजारों की संख्या में शिक्षार्थी हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन और शोध कार्य में समर्पण की भावना तथा पूरी निष्ठा से प्रवृत्त तथा संलग्न हैं वहीं दूसरी ओर हिन्दी भाषा-क्षेत्र में ही अनेक लोग अल्पज्ञान के कारण हिन्दी का अहित कर रहे हैं।

सामान्य व्यक्ति ही नहीं, हिन्दी के तथाकथित विद्वान भी हिन्दी का अर्थ खड़ी बोली मानने की भूल कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य को जिंदगी भर पढ़ाने वाले, हिन्दी की रोजी-रोटी खाने वाले, हिन्दी की कक्षाओं में हिन्दी पढ़ने वाले विद्यार्थियों को विद्यापति, जायसी, तुलसीदास, सूरदास जैसे हिन्दी के महान साहित्यकारों की रचनाओं को पढ़ाने वाले अध्यापक तथा इन पर शोध एवं अनुसंधान करने एवं कराने वाले आलोचक भी न जाने किस लालच में या आँखों पर पट्टी बाँधकर यह घोषणा कर रहे हैं कि हिन्दी का अर्थ तो केवल खड़ी बोली है। भाषा विज्ञान के भाषाभूगोल एवं बोली विज्ञान (Linguistic Geography and Dialectology) के सिद्धांतों से अनभिज्ञ ये लोग ऐसे वक्तव्य जारी कर रहे हैं जैसे वे इन विषयों के विशेषज्ञ हों। क्षेत्रीय भावनाओं को उभारकर एवं भड़काकर ये लोग हिन्दी की समावेशी एवं संश्लिष्ट परम्परा को नष्ट करने पर आमादा हैं।

सन् 2009 में, मैंने हिंदी के एक स्वनामधन्य आलोचक का यह वक्तव्य पढ़ा: 'हिंदी समूचे देश की भाषा नहीं है वरन वह तो अब एक प्रदेश की भाषा भी नहीं है। उत्तरप्रदेश, बिहार जैसे राज्यों की भाषा भी हिंदी नहीं है। वहाँ की क्षेत्रीय भाषाएँ यथा अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि हैं'। इसको पढ़कर मैंने इस वक्तव्य पर असहमति के तीव्र स्वर दर्ज कराने तथा हिन्दी के विद्वानों को वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए लेख लिखा। हिन्दी के प्रेमियों से लेखक का यह अनुरोध है कि इस लेख का अध्ययन करने की अनुकम्पा करें जिससे हिन्दी के बड़े विद्वान एवं आलोचक एवं

उन जैसी धारणाएं रखने वाले, हिन्दी को जाने-अनजाने उसके अपने ही घर में कमज़ोर न करें।

एक भाषा का जन-समुदाय अपनी भाषा के विविध भेदों एवं रूपों के माध्यम से एक भाषिक इकाई का निर्माण करता है। विविध भाषिक भेदों के मध्य सम्भाषण की सम्भाव्यता से भाषिक एकता का निर्माण होता है। एक भाषा के समस्त भाषिक रूप जिस क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं उसे उस भाषा का 'भाषा-क्षेत्र' कहते हैं। प्रत्येक भाषा क्षेत्र में भाषिक भिन्नताएँ प्राप्त होती हैं।

जिस प्रकार अपने 29 राज्यों एवं 07 केन्द्र शासित प्रदेशों को मिलाकर भारत देश है, उसी प्रकार भारत के जिन राज्यों एवं शासित प्रदेशों को मिलाकर हिन्दी भाषा क्षेत्र है, उस हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं उनकी समाष्टि का नाम हिन्दी भाषा है। हिन्दी भाषा क्षेत्र में हिन्दी की मुख्यतः 20 बोलियाँ अथवा उपभाषाएँ बोली जाती हैं। इन 20 बोलियों अथवा उपभाषाओं को ऐतिहासिक परम्परा से पाँच वर्गों में विभक्त किया जाता है - पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, बिहारी हिन्दी और पहाड़ी हिन्दी। पश्चिमी हिन्दी—खड़ी बोली, ब्रजभाषा, हरियाणवी, बुन्देली, कन्नौजी। पूर्वी हिन्दी—अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी। राजस्थानी— मारवाड़ी, मेवाती, जयपुरी, मालवी। बिहारी—भोजपुरी, मैथिली, मगही, अंगिका, बज्जिका। पहाड़ी—कुमाऊँनी, गढ़वाली, हिमाचल प्रदेश में बोली जाने वाली हिन्दी की अनेक बोलियाँ जिन्हें आम बोलचाल में ' पहाड़ी ' नाम से पुकारा जाता है।

हिन्दी भाषा क्षेत्र के प्रत्येक भाग में व्यक्ति स्थानीय स्तर पर क्षेत्रीय भाषा रूप में बात करता है। औपचारिक अवसरों पर तथा अन्तर-क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं सार्वदेशिक स्तरों पर भाषा के मानक रूप अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रयोग होता है। हिन्दी भाषा क्षेत्र में अनेक क्षेत्रगत भेद एवं उपभेद तो हैं ही; प्रत्येक क्षेत्र के प्रायः प्रत्येक गाँव में सामाजिक भाषिक रूपों के विविध स्तरीकृत तथा जटिल स्तर विद्यमान हैं और यह हिन्दी भाषा-क्षेत्र के सामाजिक संप्रेषण का यथार्थ है जिसको जाने बिना कोई व्यक्ति हिन्दी भाषा के क्षेत्र की विवेचना के साथ न्याय नहीं कर सकता। ये हिन्दी पट्टी के अन्दर सामाजिक संप्रेषण के विभिन्न नेटवर्कों के बीच संवाद के कारक हैं।

इस हिन्दी भाषा-क्षेत्र अथवा पट्टी के गावों के रहनेवालों के वाग्व्यवहारों का गहराई से अध्ययन करने पर पता चलता है कि ये भाषिक स्थितियाँ इतनी विविध, विभिन्न एवं मिश्र हैं कि भाषा

व्यवहार के स्केल के एक छोर पर हमें ऐसा व्यक्ति मिलता है जो केवल स्थानीय बोली बोलना जानता है तथा जिसकी बातचीत में स्थानीयेतर कोई प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता वहीं दूसरे छोर पर हमें ऐसा व्यक्ति मिलता है जो ठेठ मानक हिन्दी का प्रयोग करता है। स्केल के इन दो दूरतम छोरों के बीच बोलचाल के इतने विविध रूप मिल जाते हैं कि उन सबका लेखा जोखा प्रस्तुत करना असाध्य हो जाता है। हमें ऐसे भी व्यक्ति मिल जाते हैं जो एकाधिक भाषिक रूपों में दक्ष होते हैं जिसका व्यवहार तथा चयन वे संदर्भ, व्यक्ति, परिस्थितियों को ध्यान में रखकर करते हैं। सामान्य रूप से हम पाते हैं कि अपने घर के लोगों से तथा स्थानीय रोजाना मिलने-जुलने वाले घनिष्ठ मित्रों से व्यक्ति जिस भाषा रूप में बातचीत करता है उससे भिन्न भाषा रूप का प्रयोग वह उनसे भिन्न व्यक्तियों एवं परिस्थितियों में करता है। सामाजिक संप्रेषण के अपने प्रतिमान हैं। व्यक्ति प्रायः वाग्व्यवहारों के अवसरानुकूल प्रतिमानों को ध्यान में रखकर बातचीत करता है।

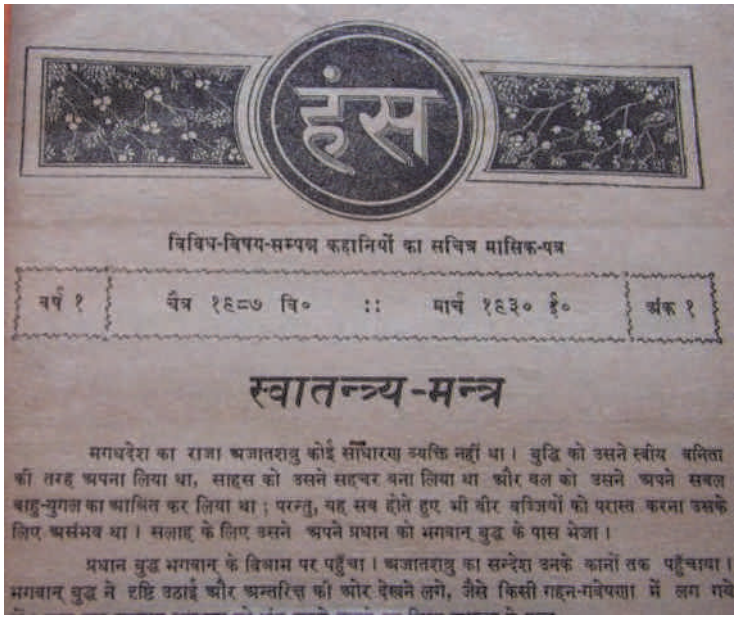

हंस

विविध-विषय-सम्पन्न कहानियों का सचित्र मासिक-पत्र

वर्ष १ | चैत्र १९८७ वि० :: मार्च १९३० ई० | अंक १

स्वातन्त्र्य-मन्त्र

मगधदेश का राजा अजातशत्रु कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। बुद्धि को उसने स्त्रीय वनिता की तरह अपना लिया था, साहस को उसने सहचर बना लिया था और बल को उसने अपने सबल बाहु-युगल का आश्रित कर लिया था; परन्तु, यह सब होते हुए भी वीर वज्जियों को परास्त करना उसके लिए असंभव था। सलाह के लिए उसने अपने प्रधान को भगवान् बुद्ध के पास भेजा।

प्रधान बुद्ध भगवान् के विश्राम पर पहुँचा। अजातशत्रु का सन्देश उनके कानों तक पहुँचाया। भगवान् बुद्ध ने दृष्टि उठाई और अन्तरिक्ष की ओर देखने लगे, जैसे किसी गहन-गवेषणा में लग गये

आप विचार करें कि उत्तर प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, अवधी, बुन्देली आदि भाषाओं का राज्य है। इसी प्रकार मध्य प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा बुन्देली, बघेली, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का राज्य है।

विदेश सेवा में कार्यरत अधिकारी जानते हैं कि कभी देश के नाम से तथा कभी उस देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा होती है। वे ये भी जानते हैं कि देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा भले ही होती है, मगर राजधानी ही देश नहीं होता। इसी प्रकार किसी भाषा के मानक रूप के आधार पर उस भाषा की पहचान की जाती है मगर मानक भाषा, भाषा का एक रूप होता है। मानक भाषा ही भाषा नहीं होती। इसी प्रकार खड़ी बोली के आधार पर मानक हिन्दी का विकास अवश्य हुआ है किन्तु खड़ी बोली ही हिन्दी नहीं है। तत्वतः हिन्दी भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं उन सबकी समष्टि का नाम हिन्दी है।

जिस प्रकार चीन में मंदारिन भाषा की स्थिति है उसी प्रकार भारत में हिन्दी भाषा की स्थिति है। जिस प्रकार हिन्दी भाषा-क्षेत्र में विविध क्षेत्रीय भाषिक रूप बोले जाते हैं, वैसे ही मंदारिन भाषा-क्षेत्र में विविध क्षेत्रीय भाषिक-रूप बोले जाते हैं। हिन्दी भाषा-क्षेत्र के दो चरम छोर पर बोले जाने वाले क्षेत्रीय भाषिक रूपों के बोलने वालों के बीच पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है। मगर मंदारिन भाषा के दो चरम छोर पर बोले जाने वाले क्षेत्रीय भाषिक रूपों के बोलने वालों के बीच पारस्परिक बोधगम्यता बिल्कुल नहीं है। उदाहरण के लिए मंदारिन के एक छोर पर बोली जाने वाली हार्बिन और मंदारिन के दूसरे छोर पर बोली जाने वाली शिआनीज़ के वक्ता एक दूसरे से संवाद करने में सक्षम नहीं हो पाते। उनमें पारस्परिक बोधगम्यता का अभाव है। वे आपस में मंदारिन के मानक भाषा रूप के माध्यम से बातचीत कर पाते हैं। मंदारिन के इन क्षेत्रीय भाषिक रूपों को लेकर वहाँ कोई विवाद नहीं है।

पाश्चात्य भाषावैज्ञानिक मंदारिन को लेकर कभी विवाद पैदा करने का साहस नहीं कर पाते। मंदारिन की अपेक्षा हिन्दी के भाषा-क्षेत्र में बोले जाने वाले भाषिक रूपों में पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत अधिक है। सम्पूर्ण हिन्दी भाषा-क्षेत्र में पारस्परिक बोधगम्यता का सातत्य मिलता है। इसका अभिप्राय यह है कि यदि हम हिन्दी भाषा-क्षेत्र में एक छोर से दूसरे छोर तक यात्रा करे तो निकटवर्ती क्षेत्रीय भाषिक रूपों में बोधगम्यता का सातत्य मिलता है।

हिन्दी भाषा-क्षेत्र के दो चरम छोर के क्षेत्रीय भाषिक-रूपों के वक्ताओं को अपने अपने क्षेत्रीय भाषिक रूपों के माध्यम से संवाद करने में कठिनाई होती है। कठिनाई तो होती है मगर इसके बावजूद वे परस्पर संवाद कर पाते हैं। यह स्थिति मंदारिन से अलग है जिसके चरम छोर के क्षेत्रीय भाषिक रूपों के वक्ता अपने-अपने क्षेत्रीय भाषिक रूपों के माध्यम से कोई संवाद नहीं कर पाते। मंदारिन के एक छोर पर बोली जाने वाली हार्बिन और मंदारिन के दूसरे छोर पर बोली जाने वाली शिआनीज़ के वक्ता एक दूसरे से संवाद करने में सक्षम नहीं हैं मगर हिन्दी के एक छोर पर बोली जाने वाली भोजपुरी और मैथिली तथा दूसरे छोर पर बोली जाने वाली मारवाड़ी के वक्ता एक दूसरे के अभिप्राय को किसी न किसी मात्रा में समझ लेते हैं।

mahavirsaranjain@gmail.com

मणिपुरी का अन्य भाषाओं से संवाद

डॉ. देवराज

लेखक मणिपुर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग से अवकाशप्राप्त आचार्य हैं।

भाषिक अध्ययन की मजबूत परम्परा उच्च शिक्षा के लिए मणिपुर के बाहर जाकर शिक्षा ग्रहण करने वाले अध्येताओं द्वारा स्थापित की गई। शीघ्र ही इस परम्परा में दो उप-धाराएं दिखाई देने लगीं। एक में वे अध्येता हैं, जो मणिपुरी भाषा को तिब्बत-बर्मी भाषा परिवार की कुकी-चिन शाखा का सदस्य मानते हैं, उसके विकास को मणिपुर की किसी बोली से जोड़ते हैं और उसकी समग्र भाषिक संस्कृति के निर्माण के लिए स्थानीय बोलियों सहित केवल मंगोलाइड भाषाओं व दक्षिण-पूर्वी एशियाई समाजों को उत्तरदायी मानते हैं। इस धारा के अध्येताओं के मत में मणिपुरी भाषा में प्रारम्भ से अब तक संस्कृत आदि भारोपीय भाषाओं के जो शब्द समाविष्ट हुए हैं, उन सबके मूल में पुराने समय में मणिपुरी समाज का 'आर्यीकरण' (आर्यनाइजेशन), हिन्दुईकरण (हिन्दुआइजेशन), आधुनिक कालीन उपनिवेशवाद तथा इनके चलते किया जाने वाला मणिपुरी भाषा का 'संस्कृत निष्ठीकरण' (संस्कृताइजेशन) है। यह एक प्रकार से मणिपुरी भाषा की भाषिक संस्कृति को भारत के साथ मणिपुरी समाज के पारंपरिक सांस्कृतिक संपर्क और भारोपीय भाषाओं के साथ उसके स्वाभाविक परिचय के परिप्रेक्ष्य से काट कर देखने वाली दृष्टि है, जिसके मूल में विद्यमान कारणों की तलाश की जानी चाहिए।

भाषाई अध्ययन की दूसरी धारा में वे अध्येता हैं, जो मणिपुरी भाषा की भाषिक-वर्गीयता के सम्बन्ध में पहली धारा के अध्येताओं से सहमत होते हुए भी यह मानते हैं कि मणिपुरी भाषा की भाषिक संस्कृति के निर्माण में आर्यों सहित समय-समय पर भारत के विभिन्न अंचलों से आने वाले प्रव्रजक-समूहों की सामाजिक परम्पराओं तथा उनकी भाषाओं (प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, बंगला, असमिया आदि) की भी निश्चित भूमिका है। मणिपुर के इतिहास के सहारे इसका एक ठोस प्रमाण राजकुमार झलजीत सिंह देते हैं। वे 'न्यू लाइट्स इन टू द ग्लोरियम हेरिटेज ऑफ मणिपुर, भाग-एक' में प्रकाशित अपने एक लेख में ब्राह्मण प्रव्रजक-समूहों के आगमन की ही बात नहीं करते, बल्कि महाराज गरीब नवाज़ द्वारा उनके स्वागत तथा मणिपुर के समाज की बहुवचनीयता व बौद्धिक वातावरण के निर्माण में उनकी भूमिका को भी स्वीकार करते हैं। इस दूसरी धारा से जुड़े

अध्येता उपनिवेशवाद की भूमिका पर भी सोचते हैं, किन्तु उनके निष्कर्ष पहली धारा से कोई मेल नहीं खाते। इसका कारण यह है कि वे लोग उपनिवेशवाद के राजनैतिक और सांस्कृतिक चरित्र तथा उसके सम्पूर्ण एशिया पर पड़ने वाले ऐतिहासिक प्रभाव के परिप्रेक्ष्य में मणिपुरी समाज, संस्कृति और भाषा के विकास को देखना चाहते हैं। इस बिंदु पर पहुंच कर उन्हें लगता है कि—

1. उपनिवेशवाद ने मणिपुर (या पूर्वोत्तर के किसी भी भाग) को जीवित अजायबघर बना डाला है,
2. मणिपुर के अतीत का मूलतः रूढ़ाग्रह से मुक्त और अतिवाद रहित संगत पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए, जिसमें नृ-वैज्ञानिक (पुरातात्विक), जातीय-ऐतिहासिक और राजनैतिक-आर्थिक ज्ञानानुभवों का पुनर्निर्धारण हो, ताकि मणिपुर की वर्तमान और उभरती हुई ई-पीढ़ी को सही दिशा मिल सके।
3. पुनर्मूल्यांकन से उपनिवेशवादी अवधारणा से मुक्ति मिलेगी और वर्तमान व अतीत के मध्य सही सम्बन्ध का निर्माण होगा। भाषा संबंधी विमर्श की विश्वसन्यता और किसी सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए इस धारा की भी परीक्षा की जानी चाहिए।

मणिपुरी भाषा के प्राचीन काल को समझने के क्रम में जो प्रसंग हमारे समक्ष उपस्थित है उसका कालखंड प्रथम शताब्दी ई. के आसपास से सन् 1730 के लगभग माना जाता है। इस अवधि में 'नुमित काप्पा', 'खोङ्जोमनुपी नोङ्कारोल', 'नाओथिङखोङ फम्बाल काबा', 'पोइरैतोन खुन्थोकपा', 'खोङ्जोङ्नुबी नोङारोन', 'पोम्बी लुवाओबा', 'चैनारोल', 'थवानमिचाङ खेनजाङ्लोन', 'लोइयाम्बा शिलयेन', 'फौ-ओइबी वारोन', 'लैथक लैखारोन', 'निङ्थौरोन लम्बुबा', 'पानथोइबी खोङून', 'खागेम्बा युमलेप', 'लाइरिक-येङ्बम लोन', 'लैरोन', 'दाता कर्ण' आदि पुस्तकों की रचना की गई। इस अवधि (आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध) से सम्बन्ध रखने वाला एक ताम्र-लेख (कॉपर प्लेट) डब्ल्यू. युमजाओ सिंह द्वारा खोज निकाला गया और इसी अवधि में राजलेख (राजाओं और राज्य संबंधी कुछ अति महत्वपूर्व घटनाओं का प्रारम्भ आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ से माने जाने पर बल दिया जाता है) भी मिलता है। इस सम्पूर्ण सामग्री का साहित्यिक मूल्यांकन अलग विचार का विषय है, किन्तु जहां तक इसके भाषाई पक्ष का सन्र्भ है, इसमें स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि संदर्भित ग्रन्थों की भाषा के समय ढांचे में तत्कालीन स्थानीय भाषाओं (जिनमें उस काल की जनजातीय भाषाएं भी सम्मिलित हैं) और दक्षिण-पूर्वी भूगोल से सम्बन्ध रखने वाली भाषाओं के साथ ही प्राकृत, अपभ्रंश के विविध रूपों, संस्कृत, बंगला आदि की शब्द-संपदा की निश्चित भूमिका है। इस तथ्य को स्वीकार करके ही मणिपुरी भाषा के प्राचीन कालखण्ड के विकास-क्रम तथा उसकी भाषिक संस्कृति को समझा जा सकता है।

मध्यकाल में वैष्णव धर्म-धारा (चैतन्य महाप्रभु, विष्णु स्वामी, निम्बार्क और असमिया वैष्णव चेतना प्रेरित) के प्रभाव से मणिपुरी भाषा का संपर्क ब्रजबुलि से हुआ। यह एक मिश्रित भाषा है, जिसकी मूल भित्ति मैथिली है और उसमें बंगला, असमिया, ओड़िया, पश्चिमी हिंदी आदि की शब्द-सम्पदा की भूमिका है। इस भाषा की उत्पत्ति का मूल कारण भी राधा-कृष्ण की लीलाओं को प्रकट करने वाले पदों की रचना है, जिन्हें ऐतिहासिक दृष्टि से मैथिली कवि विद्यापति की गीतियों से प्रेरित होकर बंगाल के वैष्णव-भक्त कवियों ने रचना प्रारम्भ किया था। राधा-कृष्ण की लीला-भूमि ब्रज होने के कारण इन पदों को मिश्रित या संकर भाषा को ब्रजबुलि कहा गया। इस भाषा के अन्य नाम ब्रजाली, ब्रजावली, ब्रजबोली भी हैं, किन्तु अब सभी विद्वान इसके 'ब्रजबुलि' नाम पर सहमत हैं। 'ब्रजबुलि की भाव-संपदा' पुस्तक में अरुण होता बंगला (यशोराज खान, वासुदेव घोष, रामानंद बासु, वृन्दावन दास, लोचन दास, बलराम दास, राधामोहन ठाकुर आदि), ओड़िया (राय रामानंद, चम्पति राय, माधवी दास, देवदुर्लभ दास, रसानंद, श्यामसुन्दर भंज आदि), असमिया (शंकरदेव, माधवदेव, अनंत कन्दली, गोपालदेव, रामचरण ठाकुर आदि) के ब्रजबुलि भक्त-कवियों की रचनाओं की भाषा का अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इन सभी अंचलों के ब्रजबुलि कवियों की प्रवृत्ति इस भाषा में अपनी-अपनी भाषाओं के शब्दों को अधिक से अधिक मिलाने की रही है। इस तथ्य से हमें जो दिशा मिलती है, वह यह कि मणिपुरी में मिथिला अंचल, बंगाल, ओड़िशा, असम आदि सभी जगहों से ब्रजबुलि का आगमन हुआ। अतः उसे एक साथ अनेक भाषाओं के शब्दों के संपर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ। इसका मध्यकालीन मणिपुरी भाषा के विकास पर यथेष्ठ भाषा वैज्ञानिक प्रभाव पड़ा।

मणिपुर के वैष्णव भक्त कवियों में वहां के अनेक शासकों के नाम लिए जाते हैं, जैसे-महाराज कियाम्बा, कुलचन्द्र, गंभीर सिंह, गरीब निवाज़, चंद्रकीर्ति, भाग्यचंद्र, चैरजीत, जदु सिंह, नर सिंह आदि। स्त्री भक्तों में महाराज भाग्यचंद्र की पुत्री, सिज लैरोबी बिम्बावती मंजुरी 'देवप्रिया' (जिन्हें मणिपुर की मीरा भी कहा जाता है) का नाम आता है। साधारण लोगों में याइमोम थानिल सिंह 'संगीतरत्न', शोराम अङाहल सिंह आदि की गणना की जाती है। इसके अतिरिक्त मणिपुर में विभिन्न धार्मिक अवसरों पर संकीर्तन हेतु गायन दलों की परम्परा भी विकसित हुई। इन गायन दलों को 'पाला' कहा जाता है और इनका वर्गीकरण 'सन् पाला' (राजा का संकीर्तन दल), 'योगी पाला' (वानप्रस्थियों/संन्यासियों का संकीर्तन दल), 'नुपी पाला' (स्त्रियों का संकीर्तन दल) आदि के रूप में किया जाता है।

इन राधा-कृष्ण भक्त कवियों के नाम से जो पद प्राप्त होते हैं, उन्हें देख कर मणिपुर में प्रचलित ब्रजबुलि के स्वरूप का अनुमान किया

जा सकता है। उदाहरण के लिए एक पद बिम्बावती मंजुरी के नाम से मिलता है--'के बोले करुनामय अवतार/हा हा श्री गौरांग विधु रसराज/मोय केहनु ना होयलो दया/नन्द सुत प्रधान्या शिला मुखब जयमृदु बंशीधारी/जीव निस्तार हेतु नोदिया विहारे/मोय केनु होयलो दया'।

शोराम अङाहल सिंह के नाम से एक पद इस प्रकार मिलता है--'प्रिय सजनी कमने साहिबो प्राण/प्रान्सखी बिशाखे किहेतु जीबन राखिबो/गुणि गुणि आमार प्राण धरिते नारे/बन्धुर लागिमा प्राण सहिते नारे'।

इसी प्रकार एक पद भाग्यचंद्र महाराज के शासन्काल में किसी अज्ञात भक्त कवि का मिलता है—'जय जय राधे कृष्ण गोविन्द श्याम/संगे रस रंगे निकुंजे मंदिरे/मदन मोहन धानी राधे/जय जय राधे गोविन्द देव/श्रीला भाग्यचन्द्र नृपवर सेवा'। इन पदों का गायन वैष्णव मंदिरों में नियमित रूप से किया जाता था। याओशङ (उत्तर भारत के होलिकोत्सव के समान रंगोत्सव, जिससे चैतन्य महाप्रभु के जन्म संबंधी घटना जुड़ी है) के अवसर पर गांव-गांव से भिन्न-भिन्न होलीपाला संकीर्तन करते हुए श्रीगोविन्दजी के मन्दिर आते थे और हलंकार (होलिकोत्सव का पांचवां दिन) के दिन श्री विजयगोविंदजी के मन्दिर के विशाल प्रांगण में होलीपाला असंख्य वैष्णव-जनों के बीच संकीर्तन करते थे। रथ-यात्रा के दिन भक्तजन और अनेक संकीर्तन पाला समूहों में मार्गों पर संकीर्तन करते हुए चलते थे।

प्राचीन काल से लेकर आज तक मणिपुरी भाषा के विविध भाषाओं, ज्ञानानुशासन् और सामाजिक संस्कृतियों से संवाद तथा उसके भाषाई परिणामों का नवीन मूल्यांकन वस्तुतः हमारी अपनी समझ को सही दिशा देने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

dr4devraj@gmail.com

लेखक हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं

हिंदी नदी के कुछ पक्के घाट

डॉ. बीर पाल सिंह यादव

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन भारतीय जनमानस की एक विशाल क्रान्ति थी। तत्कालीन समय में अनेक राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आन्दोलनों ने अपनी गहरी छाप छोड़ी। इन विविध आन्दोलनों ने अपने लक्ष्य विशेष को प्राप्त करने के साथ-साथ हिंदी के प्रति जन-जागृति पैदा करने और उसको प्रोत्साहन देने में विशेष भूमिका अदा की। स्वतन्त्रता से पूर्व ही कई समाज-सुधारकों नेताओं एवं कांग्रेस द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रस्तुत करने के लिए तर्क दिए गए थे। वह एक ऐसा दौर था जब राष्ट्रभाषा का प्रश्न आज़ादी की लड़ाई का हिस्सा बन गया था और देशवासी गुलामी से मुक्ति के साथ-साथ राष्ट्रभाषा के प्रति भी सचेत थे। उसी समय हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने के लिए कुछ संस्थाएं स्थापित की गईं। ये संस्थाएं हिंदी के विकास के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुईं। इन्हें हम हिंदी नदी के पक्के घाटों की तरह भी पहचान सकते हैं। नई सड़कें बनती हैं तो नींव के पत्थर दब जाते हैं, कई बार बहती हुई धारा अपने पक्के घाटों से दूर चली जाती है। कई बार जल कम होने से भी घाट महत्वहीन होने लगते हैं। आज आवश्यकता है उनका महत्व जानकर उन्हें बल प्रदान करने की। उन्हीं में से कुछ का उल्लेख किया जा रहा है—

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए गठित यह सर्वप्रथम संस्था है जिसकी स्थापना सन् 1893 में वाराणसी में हुई। सभा को श्री गोपाल प्रसाद खत्री, श्रीरामनारायण मिश्र और बाबू श्यामसुन्दर जैसे विद्वानों का संरक्षण प्राप्त हुआ। सभा का प्रमुख लक्ष्य हिंदी साहित्य का संरक्षण एवं पोषण तथा हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करना था। हिंदी के विकास में संलग्न नागरी प्रचारिणी सभा ने कई महत्वपूर्ण कार्यों को संपादित किया। हिंदी के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास लेखन, हिंदी के विशाल कोशों का निर्माण, साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन आदि। हिंदी में साहित्य-सृजन को प्रेरित करने के उद्देश्य से सभा हिंदी साहित्य की मौलिक एवं उत्कृष्ट कृतियों को पुरस्कृत भी करती है। सभा के पास अपना एक विशाल पुस्तकालय एवं

प्रकाशन विभाग है। सभा के प्रकाशन विभाग ने 'पृथ्वीराज रासो', 'परमाल रासो', 'बीसलदेव रासो' जैसे हिंदी के आदि काव्यों एवं 'हिंदी शब्दसागर', 'हिंदी वैज्ञानिक शब्दावली' तथा 'संक्षिप्त शब्दसागर' आदि कोशों का प्रकाशन किया है। सभा एक शोध-पत्रिका 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन भी करती है। हिंदी को राजभाषा का गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में नागरी प्रचारिणी सभा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज भी सभा हिंदी साहित्य के भण्डार को समृद्ध करने में संलग्न है।

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

सन् 1910 में महामना मदन मोहन मालवीय जी की अध्यक्षता में हिंदी विद्वानों एवं हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न संस्थाओं के प्रतिनिधियों का एक अधिवेशन बुलाया गया। इसी अधिवेशन में हिंदी भाषा और नागरी के प्रचार-प्रसार के लिए 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' नामक संस्था की नींव रखी गई। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन को सम्मेलन का प्रमुख बनाया गया। सम्मेलन ने कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्यों यथा - हिंदी एवं देवनागरी लिपि का प्रचार, नागरी लिपि को मुद्रण एवं लेखन की दृष्टि से विकसित करना, हिंदी भाषी राज्यों के सरकारी विभागों, विद्यालयों तथा अदालतों में हिंदी भाषा के प्रयोग को बढ़ावा देना, हिंदी के विद्वानों एवं लेखकों को पुरस्कार एवं उपाधि से विभूषित करना, हिंदी भाषा द्वारा उच्च परीक्षाएं लेना आदि के साथ अपना कार्य प्रारम्भ किया। सम्मेलन द्वारा ली जाने वाली परीक्षाओं को विश्वविद्यालयों, राज्य सरकारों एवं केन्द्र सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की गई। फलस्वरूप इन परीक्षाओं की लोकप्रियता बढ़ती ही गई। परीक्षाओं के आयोजन के साथ-साथ सम्मेलन, संस्कृति एवं भाषा से संबंधित महत्वपूर्ण ग्रंथों को प्रकाशित करता है। सम्मेलन द्वारा एक पाक्षिक मुखपत्र 'राष्ट्रभाषा सन्श' का प्रकाशन किया जाता है जो सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन तथा सम्मेलन द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए की जाने वाली गतिविधियों से परिचित कराता है। इन महत्वपूर्ण क्रिया-कलापों के सम्पादन के कारण ही भारत सरकार ने सन् 1963 में सम्मेलन को राष्ट्रीय महत्व की संस्था के रूप में मान्यता प्रदान की।

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

सन् 1918 में इन्दौर में हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता महात्मा गांधी ने की। इस अधिवेशन में दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए एक योजना प्रस्तुत की गई। गांधी जी की अपील पर सेठ हुकुमचन्द और नरेश यशवन्तराव होलकर द्वारा दस-दस हजार रुपए की धनराशि प्रदान की गई। इससे दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना में सहयोग मिला। गांधी जी ने अपने सबसे छोटे पुत्र देवदास गांधी को दक्षिण भारत में प्रथम प्रचारक के रूप में भेजा। बाद में अन्य उत्साही प्रचारकों एवं विद्वानों

गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

ने सहयोग दिया। हिंदी साहित्य सम्मेलन के तत्वावधान में चलने वाली यह योजना हिंदी साहित्य सम्मेलन, मद्रास के नाम से जानी जाती थी, लेकिन सन् 1927 में इसका नाम बदल कर दक्षिण भारत प्रचार सभा रखा गया। तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, केरल और कर्नाटक इन चार राज्यों में सभा की चार शाखाएं स्थापित की गईं। सभा का प्रमुख उद्देश्य हिंदी के प्रचार द्वारा भारतीय एकता को मजबूत करना और हिंदी के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित करना था। सभा को अपने उद्देश्यों में वांछित सफलता प्राप्त हुई। सभा द्वारा आयोजित हिंदी परीक्षाओं में बड़ी संख्या में लोग सम्मिलित होते हैं। सभा द्वारा मासिक पत्रिका का प्रकाशन तथा विविध सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है। हिंदी के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए सभा ने दक्षिण भारत के प्रमुख केन्द्रों में हिंदी महाविद्यालय और हिंदी प्रचारक विद्यालय खोले हैं।

'अगर हिंदुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है, तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही हो सकती है, क्योंकि जो स्थान हिंदी को प्राप्त है वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता।'
—महात्मा गांधी।

हिंदी विद्यापीठ, देवधर

महात्मा गांधी की प्रेरणा से सन् 1929 में देवधर में हिंदी विद्यापीठ की स्थापना की गई। विद्यापीठ ने अपने दो लक्ष्य निर्धारित किए - हिंदी शिक्षा का प्रसार तथा देवनागरी लिपि में हिंदी भाषा का विकास। हिंदी विद्यापीठ में कई विभाग खोले गए। अहिंदी भाषी क्षेत्रों के बहुत से विद्यार्थी विद्यापीठ के महाविद्यालय में हिंदी शिक्षण का लाभ उठाते रहे हैं। हिंदी के प्रसार हेतु विद्यापीठ ने राष्ट्रीय स्तर पर कई सम्मेलनों का आयोजन भी किया है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार में लगी संस्थाओं में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का स्थान अग्रिम पंक्तियों में लिया जाता है। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की स्थापना के पीछे मुख्य रूप से महात्मा गांधी और राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी की प्रेरणा रही। सन् 1936 में स्थापित इस समिति ने कई लक्ष्य निर्धारित किए यथा - राष्ट्रभाषा हिंदी की परीक्षाओं का आयोजन, देवनागरी में लिखी जाने वाली हिंदी का प्रचार-प्रसार तथा देश एवं विदेश में भी हिंदी के प्रति अनुराग उत्पन्न करना आदि। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समिति प्रारम्भ से ही क्रियाशील रही है। समिति की परीक्षाओं में हज़ारों विद्यार्थी सम्मिलित होते रहे हैं। समिति अपने प्रकाशन विभाग से एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी करती है। समय-समय पर समिति द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन का आयोजन भी किया जाता है। देश के कई हिस्सों में हिंदी के प्रचार कार्य के लिए समिति ने केन्द्र खोले हैं। समिति विदेशों में भी सक्रिय रही है। इंग्लैण्ड, श्रीलंका, बर्मा, दक्षिण अफ्रीका, फीज़ी, मॉरीशस आदि देशों में समिति के केन्द्र चल रहे हैं। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन, नागपुर के आयोजन में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की भूमिका सराहनीय रही।

गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

गुजरात में हिंदी को लोकप्रिय बनाने का श्रेय गुजरात विद्यापीठ को ही जाता है। राष्ट्रीय शिक्षण संस्था के रूप में सन् 1920 में स्थापित गुजरात विद्यापीठ का मुख्य लक्ष्य राष्ट्रभाषा हिंदी को देवनागरी एवं उर्दू लिपियों के माध्यम से प्रचारित करना था। इसके लिए गुजरात विद्यापीठ परीक्षाओं का आयोजन करता है। प्रारम्भ में विद्यापीठ हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु राष्ट्रभाषा हिंदी प्रचार समिति, वर्धा के साथ सक्रिय रहा। सन् 1941 में हिंदी की व्याख्या संकुचित कर उसमें से उर्दू लिपि को हटा दिया गया। महात्मा गांधी हिन्दुस्तानी के हिमायती थे, जो हिंदी की ही एक शैली है। गांधी जी ने सन् 1942 में हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा की स्थापना की। गांधी जी की सत्प्रेरणा से सन् 1944 से हिन्दुस्तानी प्रचार-प्रसार का कार्य गुजरात विद्यापीठ

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे

ने शुरू किया।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे

सन् 1937 में पूना में आचार्य काका कालेलकर की अध्यक्षता में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें महाराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति नामक संगठन का गठन किया गया। महाराष्ट्र हिंदी प्रचार-समिति के गठन के पीछे भी महात्मा गांधी की ही प्रेरणा थी। प्रारम्भ में महाराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा से संबद्ध रही किन्तु बाद में संगठन विषयक मतभेदों के कारण वर्धा समिति से पृथक हो गई। सन् 1945 से समिति ने महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे के नाम से स्वतंत्र रूप से कार्य करने का निश्चय किया। सभा का मुख्य उद्देश्य प्रदेशों में प्रादेशिक भाषाओं की प्रतिष्ठा के साथ ही राष्ट्रभाषा हिंदी का विकास करना था। इसके लिए सभा परीक्षाओं का आयोजन करती है। इन परीक्षाओं को सरकारी मान्यता प्राप्त है। महाराष्ट्र में हिंदी को जनप्रिय बनाने में महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे का योगदान सराहनीय है।

बम्बई हिंदी विद्यापीठ, मुम्बई

बम्बई और उसके आस-पास के क्षेत्रों में बम्बई विद्यापीठ ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सन् 1938 में स्थापित बम्बई विद्यापीठ के लक्ष्य एवं उद्देश्य भी अन्य प्रचार संस्थाओं की भांति थे यथा - हिंदी के अध्ययन केन्द्र चलना, परीक्षाओं का आयोजन करना, पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित करना आदि। हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए विद्यापीठ ने एक मुखपत्र भी प्रकाशित किया।

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गोहाटी

सन् 1938 में असम हिंदी प्रचार समिति नामक एक संस्था का गठन किया गया। आगे चलकर यही समिति असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति कहलाई। समिति को महात्मा गांधी, बाबा राघवदास, काका साहब कालेलकर, श्री श्रीमन्नारायण आदि विद्वानों का संरक्षण प्राप्त हुआ। असम में हिंदी के प्रसार हेतु समिति विविध स्तरों की हिंदी परीक्षाएं आयोजित करती रही है। असम में हिंदी के प्रचार-प्रसार में समिति ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

उपर्युक्त संस्थाओं के अतिरिक्त राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न कुछ और संस्थाएं भी सक्रिय रही हैं यथा-हिंदी प्रचार सभा हैदराबाद, मणिपुर हिंदी परिषद्, इम्फाल, सौराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति, राजकोट, मैसूर हिंदी प्रचार सभा, बंगलौर, मैसूर रियासत हिंदी प्रचार समिति बंगलौर, केरल हिंदी प्रचार सभा, त्रिवेन्द्रम, उड़ीसा राष्ट्रभाषा परिषद, पुरी आदि।

आज हिंदी की स्थिति विश्वव्यापी है। वह संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनने के लिए प्रयासरत है। आज़ादी से पहले ही हिंदी को भारत के प्रत्येक कोने तक पहुंचाने के उद्देश्य से कई संस्थाओं की स्थापना हुई। इन्होंने देश भर में हिंदी के लिए अनुकूल वातावरण का सृजन किया। इन प्रचारक संस्थाओं की भूमिका इस मायने में महत्वपूर्ण है कि ये संस्थाएं भारतीय जनमानस के मन में यह विश्वास कायम करने में सफल रहीं कि राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी ही सम्पर्क भाषा का कार्य उत्तम ढंग से कर सकती है। भारतीय संविधान में हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकृत किए जाने के बाद इन संस्थाओं की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो गई। अखिल भारतीय स्तर पर एवं विदेशों में भी हिंदी को लोकप्रिय बनाने तथा विश्वभाषा के रूप में हिंदी की पहचान दर्ज कराने में निश्चय ही इन प्रचारक संस्थाओं का योगदान श्लाघनीय है और इनमें से अधिकांश संस्थाएं आज भी हिंदी भाषा एवं साहित्य के भण्डार को समृद्ध करने में लीन हैं। कामना यही है कि देशवासियों की रग-रग में हिंदी हो और पग-पग पर हिंदी सीखने-सिखाने की सुविधाएं हों।

bpsjnu@gmail.com

लेखक केंद्रीय हिंदी संस्थान में प्रोफेसर एवं वरिष्ठ शिक्षाशास्त्री हैं। भारत में हिंदी अध्यापकों के प्रशिक्षण एवं विदेशों से आए छात्रों के बहुस्तरीय हिंदी शिक्षण का आपको सुदीर्घ अनुभव है।

रग रग हिन्दी पग पग हिन्दी

प्रो. महेंद्र सिंह राणा

मुख्यालय, आगरा : संविधान के अनुच्छेद 351 मे निहित दिशा निर्देश के अनुसार हिंदी को अपनी विविध भूमिकाएं निभाने मे समर्थ और सक्रिय बनाने के उद्देश्य से और विविध शैक्षिक, सांस्कृतिक और व्यावहारिक स्तरों पर सुनियोजित अनुसंधान द्वारा शिक्षण-प्रशिक्षण, भाषा-विश्लेषण, भाषा का तुलनात्मक अध्ययन तथा शिक्षण सामग्री निर्माण आदि को विकसित करने के लिए शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा सन् 1961 में केंद्रीय हिंदी संस्थान की स्थापना आगरा में की गई। प्रारंभ में संस्थान का प्रमुख कार्य अहिंदी भाषी क्षेत्रों के लिए योग्य, सक्षम एवं प्रभावकारी हिंदी अध्यापकों को ट्रेनिंग कॉलेज और स्कूली स्तरों पर पढ़ाने के लिए प्रशिक्षित करना था। बाद में हिंदी के शैक्षिक प्रचार-प्रसार और विकास को ध्यान में रखते हुए संस्थान ने अपने कार्य क्षेत्रों और प्रकार्यों को विस्तृत किया, जिसके अंतर्गत हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण, हिंदी भाषापरक शोध, भाषाविज्ञान तथा तुलनात्मक साहित्य आदि विषयों से संबंधित मूलभूत वैज्ञानिक अनुसंधान कार्यक्रमों को संचालित करना प्रारंभ किया तथा विविध स्तरीय पाठ्यक्रमों, शैक्षिक सामग्री, अध्यापक निर्देशिकाएँ इत्यादि तैयार करने का कार्य भी प्रारंभ किया। इन सब कार्यों से संस्थान का कार्यक्षेत्र अत्यंत विस्तृत हो गया तथा उसे देश में ही नहीं अपितु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति और मान्यता भी प्राप्त हुई।

दिल्ली केंद्र : दिल्ली केंद्र की स्थापना वर्ष 1970 में हुई। सर्वप्रथम राजभाषा क्रियान्वयन योजना के लिए केंद्रीय अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए गहन हिंदी शिक्षण कार्यक्रम और विदेशों में हिंदी प्रचार-प्रसार के अंतर्गत विदेशियों के लिए हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रम सन् 1972 में शुरू किए गए। कार्याधिक्य के कारण वर्ष 1993 में विदेशियों के लिए शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रम की छात्रवृत्ति आधारित योजना आगरा मुख्यालय में स्थानांतरित कर दी गई। वर्तमान में दिल्ली केंद्र में स्ववित्तपोषित योजना के अंतर्गत विदेशियों के लिए हिंदी पाठ्यक्रम, स्वदेशी छात्रों के लिए सांध्यकालीन पोस्ट एम.ए. अनुप्रयुक्त हिंदी भाषाविज्ञान डिप्लोमा, पोस्ट एम.ए. अनुवाद सिद्धांत एवं व्यवहार डिप्लोमा तथा पोस्ट एम.ए. जनसंचार एवं पत्रकारिता पाठ्यक्रम संचालित किए जाते हैं। पंजाब एवं जम्मू-कश्मीर राज्यों के स्कूल एवं कॉलेज स्तर के हिंदी अध्यापकों के लिए 3 से 4 सप्ताह के नवीकरण पाठ्यक्रमों का आयोजन भी दिल्ली केंद्र द्वारा किया जाता है।

हैदराबाद केंद्र : हैदराबाद केंद्र की स्थापना वर्ष 1976 में हुई। शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अंतर्गत यह केंद्र स्कूलों/कॉलेजों एवं स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं के हिंदी अध्यापकों के लिए 1 से 4 सप्ताह के लघु अवधीय नवीकरण कार्यक्रमों का आयोजन करता है, जिसमें हिंदी अध्यापकों को हिंदी के वर्तमान परिवेश के अंतर्गत भाषा-शिक्षण की आधुनिक तकनीकों का व्यावहारिक ज्ञान कराया जाता है। वर्तमान में हैदराबाद केंद्र का कार्यक्षेत्र आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, गोवा, महाराष्ट्र एवं केंद्र शासित प्रदेश पांडिचेरी एवं अण्डमान निकोबार द्वीप समूह हैं।

गुवाहाटी केंद्र : इस केंद्र की स्थापना वर्ष 1978 में हुई। इस केंद्र का उद्देश्य पूर्वांचल में हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के क्षेत्र में कार्यरत हिंदी के अध्यापकों एवं प्रचारकों के लिए हिंदी भाषा शिक्षण की आधुनिक तकनीकों का व्यावहारिक ज्ञान कराने के लिए 1 से 4 सप्ताह के लघु अवधीय नवीकरण पाठ्यक्रमों का संचालन करना है। इस केंद्र का कार्य क्षेत्र असम, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम एवं नागालैंड राज्य है।

शिलांग केंद्र : इस केंद्र की स्थापना 1976 में हुई थी। 1978 में केंद्र गुवाहाटी स्थानांतरित कर दिया गया। पुन: इसकी स्थापना वर्ष 1987 में की गई। हिंदी के प्रचार-प्रसार के अंतर्गत शिलांग केंद्र हिंदी शिक्षकों के लिए नवीकरण (तीन सप्ताह का) पाठ्यक्रम और असम रायफ़ल्स के विद्यालयों के हिंदी शिक्षकों, केंद्र सरकार के कर्मचारियों एवं अधिकारियों को हिंदी का कार्य साधक ज्ञान कराने के लिए 2-3 सप्ताह का हिंदी शिक्षणपरक कार्यक्रम संचालित करता है। इस केंद्र के कार्य क्षेत्र मेघालय, त्रिपुरा एवं मिजोरम राज्य हैं।

दिल्ली केन्द्र

मैसूर केंद्र : इस केंद्र की स्थापना वर्ष 1988 में हुई। केंद्र का प्रमुख कार्य हिंदी का शिक्षण-प्रशिक्षण एवं हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है। मैसूर केंद्र हिंदी के शिक्षण-प्रशिक्षण के अंतर्गत, प्राइमरी, हाईस्कूल, इण्टरमीडिएट के हिंदी शिक्षकों के लिए हिंदी शिक्षण की आधुनिक तकनीकों का व्यावहारिक ज्ञान कराने के लिए 3-4 सप्ताह के लघु अवधीय नवीकरण पाठ्यक्रमों का आयोजन तथा विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के हिंदी अध्यापकों के लिए 2 सप्ताह के प्रयोजनमूलक पाठ्यक्रमों का संचालन करता है। केंद्र द्वारा प्रचार-प्रसार के अंतर्गत सरकारी अधिकारियों, अनुवादकों और वैज्ञानिकों के लिए 1 सप्ताह के राजभाषा, अनुवाद एवं तकनीकी पाठ्यक्रम भी चलाए जाते हैं। केंद्र का कार्यक्षेत्र पहले केवल कर्नाटक राज्य था। 1992 से इसके कार्यक्षेत्र में कर्नाटक के साथ केरल और केंद्र शासित प्रदेश लक्षद्वीप भी शामिल कर दिए गए हैं।

दीमापुर केंद्र : इस केंद्र की स्थापना वर्ष

2003 में हुई। दीमापुर केंद्र को पूर्णसत्रीय पाठ्यक्रम के अंतर्गत हिंदी शिक्षण प्रवीण व हिंदी शिक्षण विशेष गहन पाठ्यक्रमों के संचालन एवं मणिपुर व नागालैंड राज्य के हिंदी अध्यापकों के लिए नवीकरण कार्यक्रमों के संचालन का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। इस केंद्र का कार्यक्षेत्र नागालैंड एवं मणिपुर राज्य है।

भुवनेश्वर केंद्र : इस केंद्र की स्थापना नवम्बर, 2003 में हुई। यहाँ नवीकरण पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। गत वर्ष राजभाषा सम्मेलन का भी आयोजन किया गया।

अहमदाबाद केंद्र : इस केंद्र की स्थापना वर्ष 2006 में हुई थी। राज्य में सेवारत हिंदी शिक्षकों के लिए लघु अवधीय नवीकरण कार्यक्रम आयोजित किए जाते है।

संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय : हिंदी शिक्षक-प्रशिक्षण के स्तर को समुन्नत करने और राष्ट्रीय स्तर पर उसमें एकरूपता लाने के प्रयास में भारत सरकार के निर्देश पर देश के कई राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में अपने -अपने क्षेत्रों में हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालयों, संस्थाओं को स्थापित किया गया है और उन्हें संस्थान से संबद्ध किया है। इन संबद्ध महाविद्यालयों/संस्थाओं में प्रांतीय आवश्यकताओं के अनुरूप संस्थान के पाठ्यक्रम संचालित एवं आयोजित किए जाते हैं और संस्थान ही इन पाठ्यक्रमों की परीक्षाएँ नियंत्रित करता है। कुछ प्रमुख महाविद्यालयों/संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं—राजकीय हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालय, उत्तर गुवाहाटी (असम); मिज़ोरम हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थान, आईजोल (मिज़ोरम); राजकीय हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालय, मैसूर (कर्नाटक); राजकीय हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थान, दीमापुर (नागालैंड)|

मैसूर केन्द्र

संस्थान हिंदी अध्ययन-अध्यापन और अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण केंद्र है। संस्थान को उच्चस्तरीय शैक्षिक संस्थान के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं, अपितु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी मान्यता प्राप्त है। हिंदी भारत की सामासिक संस्कृति की संवाहिका के रूप में अपनी सार्थक भूमिका निभा सके, इस उद्देश्य एवं संकल्प के साथ संस्थान निरंतर कार्यरत है। अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए भी संस्थान अथक प्रयास कर रहा है। संस्थान का मूलभूत उद्देश्य है कि भारतीय भाषाएं एक दूसरे के निकट आएं और सामान्य बोधगम्यता की दृष्टि से हिंदी इनके बीच सेतु का कार्य करे तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय चेतना, संस्कृति एवं उससे संबद्ध मूल तत्व हिंदी के माध्यम से प्रसारित ही न हों, बल्कि सुग्राह्य भी बनें।

गुवाहाटी केन्द्र

msranakhs@gmail.com

लेखक वरिष्ठ कोशकार हैं। उन्होंने पत्रकारिता और रचनात्मक लेखन के क्षेत्र में भी ख्याति अर्जित की। सूचना प्रौद्योगिकी की सहायता से उन्होंने अनेक कोशों का निर्माण किया। उन्हें विभिन्न प्रतिष्ठित सम्मानों से नवाज़ा गया है।

लेखक वर्तनी में चंद्र-बिंदु के समर्थक हैं।

मैं छापेखाने में काम कर चुका था

अरविंद कुमार

संसार के पहले कोश *निघंटु* की रचना वैदिक काल में ही हुई। इस थिसारस में अठारह सौ वैदिक शब्दों को विषय क्रम से संकलित किया गया था। इस की रचना का श्रेय प्रजापति कश्यप को दिया जाता है। महर्षि यास्क ने *निरुक्त* में *निघंटु* के तथा अन्य वैदिक शब्दों की विशद व्याख्या की। यह संसार का पहला शब्दार्थ कोश और तत्कालीन समाज का विश्वकोश यानी ऐनसाइक्लोपीडिया है।

लिपि का अन्वेषण सूचना प्रौद्योगिकी का और भाषाओं के विकास का अगला युगांतरकारी चरण था। मिस्र की जन- और धर्म- लिपियां तथा चीन और जापान की चित्रलिपियां प्रतीकों पर आधारित थीं। उनसे आगे बढ़ कर यूरोप और मध्य एशिया की ग्रीक, सिरिलिक, रोमन और हिब्रू लिपियां अक्षरों पर आधारित थीं। उन्हीं की तरह की लेकिन दाहिने से बाएं लिखी जाने वाली अक्षर लिपि खरोष्ठी का प्रादुर्भाव गांधार में हुआ। अरबी, फ़ारसी और उर्दू जैसी लिपियां इसी से निकली मानी जाती हैं। इन सभी अक्षर लिपियों में प्रत्येक वर्ण किसी ध्वनि का प्रतीक तो होता है, लेकिन कई स्वरों और व्यंजनों का उच्चारण परिवर्तनशील होता है, जैसे रोमन के 'सी' या 'जी' अक्षर। यही नहीं इनकी वर्णमालाओं में वर्णों का कोई पारस्परिक सुनिश्चित वैज्ञानिक क्रम भी नहीं है।

ब्राह्मी लिपि का प्रादुर्भाव विश्व को भारत की एक अन्य महान देन था। इस में हर वर्ण का उच्चारण सुनिश्चित था। पाणिनी ने ब्राह्मी लिपि के सभी स्वरों 'अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ अं अः' और व्यंजनों को 'कवर्ग', 'चवर्ग' आदि 'कचटप' वर्गों में और उन के बाद के 'यरलव' और 'शषसह' क्रम से संकलित कर के वर्णमाला को वाचा तंत्र में उच्चारणानुसार सुनिश्चित आधार प्रदान किया। इससे निकली देवनागरी आदि भारतीय लिपि परिवार की तिब्बती से थाई तक सभी लिपियां सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपियों में गिनी जाती हैं।

लिपि काल में बने कोशों में शिरोमणि ग्रंथ के तौर पर आया अमरसिंह कृत *नामलिंगानुशासन्* या *त्रिकांड*। अपनी विलक्षणता के कारण आरंभ से ही यह थिसारस अपने रचयिता के नाम पर *अमरकोश* ही कहा जाता है, ठीक वैसे ही जैसे आजकल अंग्रेज़ी का थिसारस अपने तमाम संस्करणों और प्रकारांतरों के बावजूद *रोजेट्स थिसारस* ही कहा जाता है। उस काल में हस्तलिखित

मेरे आगे पीछे दाहिने बाएं कार्डों की कई ट्रे हैं ये मैंने अपने डिज़ाइन के अनुसार बनवाई थीं कार्ड का डिज़ाइन भी मैंने तय किया था। पुस्तकालयों के इंडैक्स में हर पुस्तक का एक छोटा सा कार्ड होता है। मुझे चाहिए था ऐसा कार्ड जिस पर लाइनें खिंची हों, जिनके आगे पीछे लिखा जा सकता हो। एक कार्ड किसी एक कोटि के अंतर्गत एक उपकोटि का होता था। जैसे शिव नाम की मुख्य कोटि के अंतर्गत सब से पहले स्वयं शिव के समांतर शब्दों का कार्ड। उसके बाद शिव के धनुष, त्रिशूल आदि का एक-एक स्वतंत्र कार्ड। शुरू में मैंने शिव के समांतर शब्दों के लिए कुल एक कार्ड बनाया था। बाद में बढ़ते-बढ़ते उनकी संख्या 32 हो गई थी। उनमें सब शब्द अकारादि क्रम से लिख पाने की एक अनोखी युक्ति बनानी पड़ी थी। मैं दो कोशों में शब्द चुन रहा हूं। सामने की किसी एक ट्रे में वह यथास्थान रखा जाएगा। भाव क्रम बदलना होगा तो ट्रेओं को आगे-पीछे करने की सुविधा है।

प्रतिलिपियां आसानी से नहीं मिलती थीं। इसलिए सभी छात्रों को ग्रंथ कंठस्थ करने होते थे। स्मरण में सुविधा के लिए ऐसे सभी कोश छंदबद्ध होते थे। किसी श्लोक का एक पद या शब्द याद आते ही तत्संबंधी पूरा प्रकरण ज़बान पर आ जाता था। इस तरह याददाश्त ही अनुक्रम खंड का काम करती थी।

अमरकोश की शैली से प्रभावित हो कर ही अमीर खुसरो ने फ़ारसी में द्विभाषी कोश (फ़ारसी-हिंदी) *ख़ालिक़बारी* की रचना की। शायद यह संसार का पहला द्विभाषी थिसारस है। इसमें हिंदी के साथ-साथ अरबी फ़ारसी के शब्द समूह विषय क्रम से आते थे। हाथ से बनी प्रतिलिपियों में अशुद्धियां रह जाती हैं। हस्तलिखित होने के कारण वे बड़ी संख्या में उपलब्ध नहीं हो सकती थीं और बहुत महंगी भी होती थीं।

लिपि के अन्वेषण के बाद प्रौद्योगिकी में सबसे बड़ी क्रांति हुई जर्मनी के जोहानिस गुटेनबर्ग द्वारा 1450 में मुद्रण तकनीक का अन्वेषण और परिष्कार।

अब किताबें आसानी से मिलने लगीं और जानकारी का संप्रेषण एक साथ कई क़दम आगे बढ़ गया। धीरे-धीरे कोश छपने लगे। इंग्लैंड में सन् 1755 में सैमुअल जानसन् का पहला इंग्लिश कोश ए *डिक्शनरी आफ़ द इंग्लिश लैंग्वेज* छपा। सन् 1828 में इससे कहीं आगे बढ़कर और बड़ा नोहा वैब्स्टर का ऐन *अमेरीकन डिक्शनरी आफ़ द इंग्लिश लैंग्वेज* छपा।

कुछ बहुत महत्वपूर्ण मुद्रित भारतीय (संस्कृत तथा हिंदी और इंग्लिश) कोश इस प्रकार हैं:

- *शब्द कल्पद्रुम* (संस्कृत कोश – आठ खंड)। राजा राधाकांत देव। पहला भाग 1822 – आठवां अंतिम 1856।
- *संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी*। सर मोनिअर मोनिअर-विलियम्स। 1872।
- *अ प्रैक्टिकल संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी*। वामन शिवराम आप्टे। 1889।
- *संस्कृत-हिंदी कोश*। वामन शिवराम आप्टे।
- *हिंदी शब्द सागर* (ग्यारह खंड)। श्याम सुंदर दास। काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

बृहत् हिंदी कोश। ज्ञानमंडल वाराणसी। पहला संस्करण 1954-55। तब से इस के कई संस्करण होते रहे हैं और अनेक प्रधान

संपादक। मेरी राय में हिंदी वर्तनी के लिए यह मानक कोश है। अरबी फ़ारसी शब्दों के नुक़्ते इस के मुख शब्द में बोल्ड टाइप के कारण नहीं छपे हैं, लेकिन लाइट टाइप में हैं। नुक़्ते वाले शब्दों के लिए प्रामाणिक कोश है – *उर्दू-हिंदी शब्द कोश*। मुहम्मद मुस्तफ़ा ख़ाँ 'मद्दाह'। हिंदी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

हिंदी विश्वकोश। कमलापति त्रिपाठी तथा सुधाकर पांडेय। काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

- *Comprehensive English-Hindi Dictionary*. डाक्टर रघुवीर।
- केंद्रीय हिंदी निदेशालय के बीसियों तकनीकी शब्दकोश।
- अँग्रेज़ी-हिंदी कोश। फ़ादर कामिल बुल्के।
- *इंग्लिश-हिंदी कोश*। डाक्टर हरदेव बाहरी।
- *मीनाक्षी हिंदी-अँगरेजी कोश*। डा. ब्रजमोहन – डा. बदरीनाथ कपूर।
- Oxford Hindi-English Dictionary। आर.ऐस. मैकग्रेगर।

मेरे अपने कोश सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा निर्मित हैं। ये आधुनिक भारत के पहले थिसारस हैं। कोश में हर शब्द अकारादि क्रम से छपा होता है, जैसे: *कक्ष, कक्षा, कगार*। थिसारस में शब्दों का संकलन अकारादि क्रम से न हो कर कोटि क्रम से होता है, जैसे *इंद्रिय* के बाद *ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय* या फिर *कड़वा स्वाद* के बाद *कसैला स्वाद, खट्टा स्वाद, चरपरा स्वाद, नमकीन स्वाद* और *मीठा स्वाद*। यह शब्दों के अर्थ तो नहीं देता, लेकिन किसी एक शब्द के अनेक पर्यायवाचियों से शब्द का अर्थ आसानी से समझ में आ जाता है।

शब्द संकलन और अंकन का काम सब से पहले मैंने कार्डों पर शुरू किया था। साठ हज़ार कार्डों पर हम लगभग दो लाख साठ हज़ार शब्द या अभिव्यक्तियाँ या रिकार्ड दर्ज़ कर चुके थे। इस तरह से काम करते करते कई समस्याएं खड़ी हो जाती थीं। पहली थी कि कई बार हम पहले किया काम फिर से दोहराने लगते थे, क्योंकि सारा काम याद रख पाना आसान नहीं था। पहले भी यह काम कर चुके हैं, यह जांचने का कोई तरीक़ा नहीं था। इस दोहराव से बचने के विकल्पों पर मैं विचार करता रहता था। छपाई की समस्या भी मेरे सामने सुरसा की तरह मुंह बाए खड़ी रहती। मैं छापेख़ाने में काम कर चुका था। छापेख़ाने में जो समस्याएं आ सकती हैं, उनका ध्यान आते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते।

पहले कार्ड टाइपिस्टों को दिए जाएंगे। उनसे कई कार्ड खो भी सकते हैं, उनका क्रम भी बिगड़ सकता है। टाइपिस्ट बीच-बीच में से कई शब्द ग़लत टाइप कर जाते हैं, कई शब्द और पंक्तियां टाइप करना भूल जाते हैं और कई पंक्तियां दोबारा टाइप कर जाते हैं। मैं टाइप किए दो लाख साठ हज़ार शब्दों को पढ़ूंगा, उनकी ग़लतियां ठीक कराऊंगा। कई सवाल उठ खड़े हुए।

1992 में मेरे बेटे डाक्टर सुमीत कुमार ने कहा– 'इन सभी समस्याओं का एकमात्र हल है कंप्यूटर – यानी सूचना प्रौद्योगिकी।' सूचना प्रौद्योगिकी ने ही मुझे हल दिया। ये रामकहानी नीकी और तकनीकी है। विस्तार से फिर कभी।

arvind@arvindlexicon.com

श्री अरविन्द कुमार एवं श्रीमती कुसुम कुमार

लेखक सरकारी सेवा से अवकाशप्राप्त हैं तथा हिंदी से जुड़ी हुई गतिविधियों में एक सकर्मक चेतना के साथ सक्रिय रहते हैं।

भारत की विदेश नीति में हिंदी

नारायण कुमार

15 अगस्त, 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात ही भारत आधिकारिक रूप से अपनी विदेश नीति के निर्माण और नियोजन की स्थिति में आया, क्योंकि इससे पहले अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भारत की भूमिका ब्रिटेन द्वारा उसके ही हितों के अनुरूप निश्चित और निर्धारित की जाती थी। चूंकि ब्रिटिश सरकार भारत में सभी कामकाज अंग्रेज़ी भाषा में करती थी, इसलिए उसकी विदेश नीति नियोजन और कार्यान्वयन अंग्रेज़ी में ही होते थे। स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भारत के संविधान निर्माताओं ने हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार तो किया, किंतु संविधान लागू होने के 15 वर्ष बाद तक राजभाषा के रूप में अंग्रेज़ी का प्रयोग और बाद में द्विभाषिकता की स्थिति के कारण अंग्रेज़ी भाषा का प्रचलन सभी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों के लिए जारी रहा। गांधीजी ने स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के अपने जोरदार अभियान में भी राज्यों में सम्बन्धित राज्यों की भाषाएं, केन्द्र सरकार के कामकाज के लिए हिंदी तथा अन्तर्राष्ट्रीय कार्य व्यवहार के लिए अंग्रेज़ी के इस्तेमाल की सलाह दी थी।

सवाल यह उठता है कि किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की विदेश नीति का मूलाधार क्या होना चाहिए? इस संबंध में भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के प्रथम महासचिव गिरिजाशंकर बाजपेई का विचार है कि 'किसी भी देश की विदेश नीति को आदर्शवाद एवं प्रबुद्ध आत्महित का संतुलित मिश्रण होना चाहिए।' लेकिन यह एक आदर्श स्थिति है क्योंकि अधिकतर देश अपने 'राष्ट्रहित' के अनुसार ही अपनी विदेश नीति निर्धारित करते हैं। प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय विचारक पामर्स्टन का यह कहना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है कि 'वैदेशिक सम्बन्धों में कोई भी देश शाश्वत मित्र या शाश्वत शत्रु नहीं होता है, उनके केवल राष्ट्रीय हित शाश्वत होते हैं। भारत की यह विशिष्टता रही है कि उसन् अपनी विदेश नीति के निर्धारण और नियोजन में अपने राष्ट्रीय हितों के साथ-साथ विश्व शांति, गुट निरपेक्षता, गुलाम देशों की स्वतंत्रता का समर्थन, नस्लवाद का उन्मूलन, हिंसक हथियारों पर प्रतिबंध के समर्थन को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। लेकिन इस उदार और व्यापक

विदेश नीति के नियोजन और कार्यान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि भारत की राष्ट्रभाषा और राजभाषा हिंदी का अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में इस्तेमाल किया जाए। सोवियत संघ, चीन, जापान, जर्मनी जैसे संसार के अनेक देशों ने इस भ्रम को तो तोड़ ही दिया था कि अंग्रेज़ी राजनयिक और अन्तर्राष्ट्रीय कामकाज के लिए अंग्रेज़ी का ही प्रयोग होना चाहिए। लेकिन भारत अपने देश के अन्दर ही हिंदी के प्रयोग को लेकर विवाद में फंस गया था और गांधीजी के निधन के बाद हिंदी राष्ट्रीय सामंजस्य से हटकर दक्षिण-उत्तर संघर्ष का रूप धारण कर चुकी थी, अत: विदेश नीति में हिंदी हाशिए से भी बाहर धकेल दी गई।

सन् 1950 में भारत गणराज्य के अभ्युदय पर जब डॉ. राजेन्द्र प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने, तो उन्होंने सरकार में अंग्रेज़ी के बेरोकटोक इस्तेमाल पर लगाम लगाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण आदेश जारी किए, जिसमें 3 दिसम्बर, 1955 की अधिसूचना सं./59/2154(प.) के अन्तर्गत अधिसूचित राष्ट्रपति का आदेश-1955, क्रम सं. पांच, छह और सात विदेश मंत्रालय में हिंदी के प्रयोग के संदर्भ में महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय हैं, इस आदेश में यह प्रावधान है कि सरकार (5) अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और करारों (6) अन्य देशों की सरकारों और उनके दूतों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ पत्र-व्यवहार (7) राजनयिक तथा कांसुली अधिकारियों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में भारत के प्रतिनिधियों के लिए जारी किए जाने वाले औपचारिक प्रलेखों के लिए अंग्रेज़ी के अतिरिक्त हिंदी के प्रयोग को भी प्राधिकृत करती है।

इस आदेश को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से विदेश मंत्रालय में एक हिंदी अनुभाग बनाया गया, जिसमें कुछ वर्षों के बाद सुप्रसिद्ध हिंदी कवि डॉ. हरिवंश राय बच्चन को विशेषाधिकारी (हिंदी) के रूप में नियुक्त किया गया। लेकिन हिंदी अनुभाग सभी अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और करारों के हिंदी अनुवाद करने में असमर्थ था, क्योंकि इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय विधि का ज्ञान रखने वाले पर्याप्त संख्या में अनुवादकों की आवश्यकता थी, जो उनके पास उपलब्ध नहीं था।

भारत सरकार ने लंदन(यू.के.), पोर्ट ऑफ स्पेन (त्रिनिदाद एंड टोबैगो), सूवा (फीजी), पोर्ट लुई (मॉरीशस), काठमांडू(नेपाल) और पारामारिबो (सूरीनाम) में हिंदी अधिकारी नियुक्त किया है ताकि इन मिशनों में हिंदी में काम-काज संभव हो सके। लेकिन सच पूछिए तो यह मात्र खानापूर्ति है क्योंकि इन मिशनों में तैनात किए जाने वाले अधिकारियों को भारत की विदेश नीति अथवा राजनयिक बारीकियों का प्रशिक्षण तक नहीं दिया जाता है। अलबत्ता हमारे हिंदी अधिकारी उन देशों में भारतवंशियों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं।

विदेश नीति निर्माण का कार्य सरकार करती है और नीति नियोजन विदेश मंत्रालय तथा उसका कार्यान्वयन विदेश स्थित दूतावास और उच्चायोग। किसी भी देश की विदेश नीति में भाषा एवं संस्कृति की भूमिका राष्ट्रहित एवं राजनयिक आदर्शों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। भारत की विदेश नीति में विश्व शांति और अन्य देशों पर आक्रमण नहीं करने का संकल्प, पंचशील की परिकल्पना भारतीय उदात्त आदर्शों का ही सकारात्मक प्रतिफल है जो अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर विदेश नीति के सम्बन्ध में भारत की उदार विश्व-दृष्टि को भी प्रतिपादित करती है। भारत अनादिकाल से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्शों को मानता रहा है जो आज भी हमारे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का मूलाधार बना हुआ है।

किसी भी देश की विदेश नीति में उस देश की राजभाषा का स्थान महत्वपूर्ण होता है। हिंदी स्वतंत्रता संग्राम में भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में उभरी तथा भारत के संविधान ने इसे 'संघ की राजभाषा' के रूप में स्वीकार किया। इसलिए भारत की विदेश नीति के निर्माण और नियोजन में हिंदी की भूमिका को नज़रअन्दाज़ करना एक भयंकर राजनयिक त्रासदी है।

भारत की विदेशमंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि भारतीय विदेश नीति के राजनयिक पक्ष के अनुसंधान और विश्लेषण के लिए गठित इंडियन काउंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स के पुस्तकालय में विदेशनीति पर एक भी पुस्तक हिंदी में नहीं है। वस्तुत: यह गंभीर चिन्ता का विषय है कि उस पुस्तकालय में कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' या तिरूवल्लुवर का 'तिरूक्कुरल' जैसे श्रेष्ठ ग्रंथ नहीं हैं जिनमें राजदूतों की नियुक्ति, उनके कार्य विजित राष्ट्र के साथ मैत्री तथा शांति की स्थापना के उपाय आदि के सूक्ष्म विश्लेषण किए गए हैं। कौटिल्य ने तो अर्थशास्त्र के प्रकरण 11 अध्याय 15 के 'दूत प्रणिधि' में संदेश देकर राजदूतों को शत्रुदेश में

भेजना, प्रकरण 162 के अध्याय-1 के 'दूत कर्माणि' में राजदूतों के कार्य के अतिरिक्त प्रकरण 176 के अध्याय 5 में 'लब्ध प्रशमन' के अन्तर्गत विजित देशों में शांति की स्थापना का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इसी प्रकार तमिल वेद के नाम से विख्यात 'तिरूक्कुरल' के अर्थकांड के शासन् प्रकरण, मैत्री प्रकरण, दुर्ग प्रकरण, सैन्य और मैत्री प्रकरण में शासन् एवं राजनय के गूढ़ मंत्र दिए गए हैं जो भारत की विदेश नीति के लिए अत्यन्त उपयोगी दिशा-निर्देश सिद्ध हो सकते हैं।

तिरुक्कुरल के मैत्री प्रकरण में राजदूत के लिए यह कहा गया है कि —

'अनबुडैमै आनड कुडिपिरत्रत्रल् वेन्दवाव् !
पणबुडैमै तूदैरैप्रपान पणबु!!'
'स्नेहशीलता, उच्चकुल-नृप इच्छित आचार!
राजदूत में चाहिए, यह उत्तम व्यवहार!!

इसी प्रकार कौटिल्य ने तो 'राजदूत को राजा का मुख माना है'। ध्यातव्य है कि आज भी हमारे राजदूत विदेश के राज्याध्यक्ष के समक्ष जो अपना प्रत्यय पत्र प्रस्तुत करते हैं उसमें हमारे राष्ट्रपति का यह महत्वपूर्ण कथन होता है कि वह (राजदूत) जो कुछ भी कहें, उसे हमारी ओर से कहा माना जाए।'

मुझे याद आता है कि जब 1977 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में तत्कालीन विदेशमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी में अपना भाषण देकर आए तो विश्व के अनेक देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने उन्हें बधाई देते हुए कहा था कि 'आज लगा कि भारत अपने स्वर में बोल रहा है। यही कारण है कि आपातकाल में श्री वाजपेयी ने तो हिंदी के बारे में लिखा था कि 'बनने चली विश्व भाषा जो अपने घर में दासी, सिंहासन् पर अंग्रेज़ी को लिखकर दुनिया हांसी।' किंतु बाद में उन्होंने हिंदी की महिमा को स्वीकार करते हुए लिखा

'गूंजी हिंदी विश्व में स्वप्न हुआ साकार,
राष्ट्रसंघ के मंच से हिंदी का जयकार।
हिंदी का जयकार हिन्द हिंदी में बोला,
देख स्वभाषा-प्रेम विश्व अचरज में डोला'।

भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री और विदेशमंत्री विदेश नीति में हिंदी के प्रयोग के महत्व को भली-भांति जानते हैं तथा इसे कार्यरूप देने के लिए कृतसंकल्प भी हैं। उनके इस प्रयत्न को मूर्त रूप देने के लिए यह आवश्यक है कि:-

1. विदेश सेवा संस्थान में विदेश सेवा के अधिकारियों के लिए हिंदी का गहन पाठ्यक्रम चलाया जाए और उनसे हिंदी में काम लिया जाए।
2. इंडियन काउंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स द्वारा विदेश नीति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पर हिंदी में पुस्तकें लिखने तथा अनुवाद के लिए फैलोशिप दिए जाएं तथा हिंदी में संगोष्ठी और सेमिनार आयोजित किए जाएं।
3. भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद विश्व के समक्ष भारतीय परम्परा, जीवन और आदर्शों से सम्बन्धित पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित करे तथा विदेशी विश्वविद्यालय में 'भारत विद्या के लिए अध्ययन केन्द्र और अध्ययन पीठ' स्थापित करे।
4. विदेश मंत्रालय महत्वपूर्ण दूतावासों में हिंदी में कामकाज के लिए अधिकारियों/कर्मचारियों की नियुक्ति करे।
5. संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने के लिए भारत सरकार विश्व के विभिन्न देशों से समर्थन प्राप्त करे तथा वित्तीय प्रावधान करे।
6. भारत सरकार के मंत्री/अधिकारी भारत में तथा विदेशों में यथासंभव हिंदी में वार्तालाप करें और व्याख्यान दें।
7. विश्व की प्रमुख भाषाओं से हिंदी में तथा हिंदी से विश्व की अन्य भाषाओं में उच्चस्तरीय अनुवाद और अनुवाचन (इंटरप्रेटेशन) के लिए अनुवादक और अनुवाचक नियुक्त किए जाएं।
8. विदेश मंत्रालय भारत में विदेश स्थित राजनयिक मिशनों के साथ तथा विदेश स्थित भारतीय मिशन सम्बन्धित सरकारों के साथ भी हिंदी में पत्रचार करे।
9. मॉरीशस में स्थापित विश्व हिंदी सचिवालय के विभिन्न महाद्वीपों में क्षेत्रीय केन्द्र खोले जाएं तथा विदेश स्थित भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र संगीत, नृत्य और योगाभ्यास को सम्मानजनक स्थान देते हुए सांस्कृतिक राजनय के महत्तर दायित्व को भी निभाए।

मन्दारिन के बाद हिंदी विश्व की सबसे ज़्यादा बोली-समझी जाने वाली भाषा है। चीन मन्दारिन भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए भारतीय सीमावर्ती क्षेत्रों में रेडियो स्टेशन कायम कर रहा है तथा लैटिन अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका में मन्दारिन शिक्षा की व्यवस्था कर रहा है। यू.के. और अमेरिका अत्यन्त आक्रामक रूप से अपने देशों में अंग्रेज़ी को बचाने तथा संसार में अंग्रेज़ी को बढ़ाने के लिये कार्य कर रहे हैं। विश्व की नई आर्थिक शक्ति के रूप में शीर्ष स्थान पर पहुंचने के लिए कृत संकल्प भारत की विदेश नीति के लिए और इसके सांस्कृतिक राजनय तथा सॉफ्ट एवं स्मार्ट डिप्लोमैसी के लिए हिंदी में विदेश नीति नियोजन न सिर्फ आवश्यक बल्कि अनिवार्य है। हमारी वर्तमान सरकार इस चुनौतीपूर्ण कार्य में सफलता प्राप्त करेगी, यह देश की आशा भी है और आकांक्षा भी।

npkumar1944@yahoo.co.in

पत्रकारिता के एक सौ पन्द्रह वर्ष

डॉ. जवाहर कर्नावट

लेखक बैंक ऑफ़ बड़ौदा के कार्पोरेट कार्यालय, मुंबई में सहायक महाप्रबंधक हैं। देश-विदेश में प्रकाशित लघु-पत्रिका आंदोलनों पर आपने सघन कार्य किया है।

मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता का इतिहास लगभग एक सौ पंद्रह वर्ष पुराना है। इन एक सौ पंद्रह वर्षों में मॉरीशस में पचास से अधिक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। मुझे सन् 2009 में मॉरीशस के पोर्ट लुई स्थित राष्ट्रीय अभिलेखागार में मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता के इतिहास के साक्षात दर्शन हुए। मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता के उद्भव व विकास में हिंदी परिषद, आर्यसभा, हिंदी प्रचारिणी सभा, आर्य रेविवेद प्रचारिणी सभा, हिंदी लेखक संघ, महात्मा गांधी संस्थान, हिंदी शिक्षक संघ, हिंदी संगठन आदि संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत का श्रेय डॉ. मणिलाल को जाता है जो महात्मा गांधी की प्रेरणा से मॉरीशस आए थे। उन्होंने 15 मार्च, 1909 को 'हिन्दुस्तानी' पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया। मणिलाल डॉक्टर के आगमन के समय मॉरीशस में अंग्रेज़ी एवं फ्रेंच की 25 से अधिक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती थीं। उन्होंने ऐसे प्रतिकूल परिवेश में हिंदी पत्रकारिता शुरू करके एक विलक्षण कीर्तिमान स्थापित किया। प्रारंभ में 'हिन्दुस्तानी' गुजराती और अंग्रेज़ी में निकलता था। यह चार पन्नों का समाचार पत्र था। सन् 1910 में उसे अंग्रेज़ी हिंदी में कर दिया गया था। इस पत्र के मुख्य पृष्ठ का आदर्श वाक्य था - 'व्यक्ति की स्वतंत्रता, मनुष्य की समानता! जातियों का भाईचारा!'। इस पत्र के माध्यम से डॉ. मणिलाल मॉरीशस के भारतीयों का नवजागरण करना चाहते थे।

शुरूआत में यह साप्ताहिक पत्र था और सन् 1910 में इसे दैनिक कर दिया गया, किंतु उस समय प्रवासी भारतीयों के बीच पाठकों और सहयोगियों का अभाव था। अत: मणिलाल को उसे चलाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनके भारत लौटने पर यह समाचार पत्र बंद हो गया, किंतु 'हिन्दुस्तानी' के साथ ही मॉरीशस में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का सिलसिला प्रारंभ हो गया। 1910 में ही डॉ. मणिलाल ने आर्य समाज की स्थापना की और सन् 1911 में मॉरीशस आर्य पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। प्रारंभिक दौर में इस साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आर्य सभा के पदाधिकारियों की देख-रेख में हुआ। सन् 1916 में इसके संपादन का दायित्व पं. काशीनाथ किष्टों ने सम्भाला। उन्होंने अत्यंत निष्ठा और लगन से इसे कई वर्षों तक संचालित किया। हिंदी-अंग्रेज़ी में छपने वाले इस पत्र में धार्मिक ग्रंथों की व्याख्या के साथ-साथ हिन्दुओं के

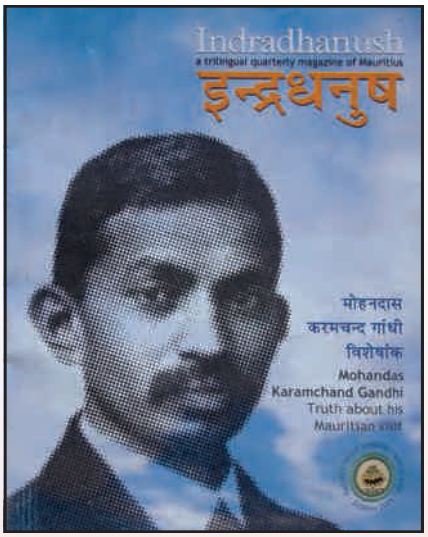

जीवन में आनेवाली कठिनाईयों की भी चर्चा रहती थी। इसी दौरान श्री रामलाल के संपादन में 'ओरिएंटल गजट' नाम का एक और पत्र प्रकाशित हुआ। इस पत्र में भी प्रवासी भारतीयों की समस्याओं के बारे में सामग्री प्रकाशित होती थी। सन् 1920 में इंडो मॉरीशस संघ के तत्वावधान में 'मॉरीशस इंडियन टाइम्स' का प्रकाशन अंग्रेज़ी, हिंदी और फ्रेंच में श्री के द्वारका के सम्पादन में हुआ। इसके पश्चात मॉरीशस मित्र (1924-1932) का प्रकाशन उच्च कोटि के विद्वान पं. राम अवध शर्मा के सम्पादन में हुआ। उन्होंने अत्याचारों से पीड़ित जनता के राजनीतिक एवं सामाजिक उत्थान हेतु निरंतर लेख लिखकर आवाज उठाई।

इसके पश्चात मॉरीशस आर्य पत्रिका (1924-1940), आर्यवीर (1929-45), सनातन धर्मांक (1933-1942) का भी प्रकाशन हुआ। जागृति पत्र सन् 1939 से 1950 तक प्रकाशित हुआ। मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता में हस्तलिखित पत्रिका 'दुर्गा' ने एक नया इतिहास निर्मित किया है। सन् 1935 से 1938 तक मॉरीशस में हिंदी के प्रबल समर्थक सूरज प्रसाद मंगर भगत ने 'ज्वालामुखी' के नए नाम से इस पत्रिका का सम्पादन किया। भारत के प्रसिद्ध साहित्यकार एवं प्रेमचंद साहित्य के विशेषज्ञ डॉ. कमल किशोर गोयनका द्वारा समाज सुधार, भाषा प्रचार तथा साहित्य सृजन एवं साहित्यकारों के निर्माण में दुर्गा पत्रिका की भूमिका पर लिखित एक पुस्तिका का प्रकाशन मॉरीशस की हिंदी प्रचारिणी सभा ने किया है। डॉ. गोयनका ने दुर्गा के पहले वर्ष सन् 1935 के उपलब्ध दस अंकों का संक्षिप्त अध्ययन एवं विवेचन प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि 'दुर्गा' हस्तलिखित एक ऐसी पत्रिका है जिसके उद्देश्यों तथा रचनाओं की प्रकृति से इतिहास के कुछ ज्ञात तथ्यों की पुष्टि हो सकती है तथा अनेक अज्ञात एवं अकल्पनीय तथ्यों की स्थापना हो सकती है। 'दुर्गा' में प्रस्तुत साहित्यिक रचनाएं मॉरीशस के इतिहास, हिन्दू धर्म एवं संस्कृति, हिंदी भाषा तथा साहित्य, भारत-वंशियों की मॉरीशसीयता, मॉरीशस भारत के संबंधों आदि अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका की अंकुरित भाषा, साहित्य के प्रति आस्था और प्रतिबद्धता आज मॉरीशस के हिंदी साहित्य को विश्वभर के हिंदी जगत में अपनी एक विशेष पहचान दे सकी है। हस्तलिखित पत्रिका होने के उपरांत भी यह अपने स्वनिर्मित नियमों के अंतर्गत प्रसारित होती थी।

मॉरीशस के भारतवंशियों में सांस्कृतिक चेतना जागृत करने के उद्देश्य से सन् 1936 में 'इंडियन कल्चरल एसोसिएशन' की स्थापना हुई। इस संस्था ने 'इंडियन कल्चरल रिव्यू' नामक पत्र प्रकाशित किया जिसके प्रथम संपादक डॉ. के. हजारी सिंह थे। सन 1936 में इसी पत्र के पूरक हिंदी पत्र 'वसंत' का प्रकाशन हुआ, जिसके संपादक पं. गिरजानन उमाशंकर थे। कुछ वर्ष प्रकाशित होने के बाद यह पत्र बंद हो गया, किंतु बाद में 1977 से 'वसंत' पत्रिका का प्रकाशन मॉरीशस के मूर्धन्य हिंदी लेखक श्री अभिमन्यु अनत के सम्पादन में महात्मा गांधी संस्थान में हुआ। श्री अनत जी ने लगभग 20 वर्षों तक 'वसंत' का सम्पादन किया।

साहित्यिक पत्रकारिता में 'वसंत' ने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। आज भी यह पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है और इसकी मुख्य संपादक डॉ. माधुरी रामधारी हैं। समय-समय पर इसके विशेषांक भी प्रकाशित होते रहते हैं। फरवरी 2015 में मॉरीशस के दो दिवंगत साहित्यकार भानुमती नागदान एवं पूणानंद नेमा पर विशेषांक प्रकाशित हुआ है। सन् 1942 में मॉरीशस के पब्लिक रिलेशंस ऑफिस से 'मासिक चिट्ठी' नाम से एक लघु पत्र निकला

जिसमें अधिकांश सूचनाएं प्रकाशित होती थीं। सन 1945 में आर्यवीर जागृति नाम से एक दैनिक पत्र प्रकाशित हुआ जिसके संपादक प्रो. विष्णुदयाल वासुदेव थे। इस पत्र ने पर्याप्त ख़्याति अर्जित की, किंतु कुछ वर्षों के बाद यह पत्र बंद हो गया। सन 1948 में जनता साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ हुआ। मॉरीशस के प्रथम प्रधान मंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम इस पत्र के संस्थापक थे। इस पत्र में राजनीति, देश-विदेश की ख़बरें, त्यौहार, ज्योतिष, कविता फ़िल्म आदि पर सामग्री प्रकाशित होती थी। यह पत्र मॉरीशस में अत्यधिक जनप्रिय रहा और श्रेष्ठ समाचार पत्रों में इसकी गिनती रही, किंतु यह समाचार-पत्र भी 1982 तक ही प्रकाशित हो पाया। इस पत्र के अंतिम सम्पादक श्री राजेन्द्र अरुण रहे।

सन् 1948 में 'जमाना' पाक्षिक पत्र का प्रकाशन भी आरंभ हुआ। श्री वासुदेव विष्णु दयाल के संरक्षण में निकलने वाले इस पत्र के सम्पादक श्री एस. कोराराम थे। इस पत्र का आदर्श वाक्य था 'निश्चय करके मनुष्य आप ही बंधु और आप ही अपना शत्रु है'। यह पत्र 1977 तक प्रकाशित हुआ। 9 नवम्बर 1950 में आर्योदय पाक्षिक और फिर मासिक पत्र का जन्म हुआ। यह पहले आर्यवीर जागृति के नाम से छपता था। जुलाई 1960 में सर्वप्रथम पूर्ण साहित्यिक पत्र के रूप में अनुराग का प्रकाशन हुआ। हिंदी परिषद के मुख पत्र के रूप में इसके प्रधान सम्पादक श्री सोमदत्त बखौरी रहे। 1965 में हिंदी लेखक संघ के तत्वावधान में सर्वप्रथम एक बाल पत्रिका बालसखा के नाम से सन् 1965 में प्रकाशित हुई, किंतु कुछ वर्षों बाद ही यह बन्द हो गई। 2006 में इस पत्रिका का प्रकाशन हिंदी लेखक संघ ने पुन: प्रारंभ किया। डॉ. इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ इस पत्रिका के प्रधान संपादक हैं।

मॉरीशस में सन् 1970 से 2000 तक के 30 वर्षों में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। इन पत्र-पत्रिकाओं में कुछ तो प्रारंभिक वर्षों में ही बंद हो गईं किंतु कुछ पत्रिकाएं आज भी प्रकाशित हो रही हैं। इनमें प्रमुख हैं – दर्पण (1971-79), आभा (1972-76), हमार देश (1971-74), निर्माण (1975), विश्वदर्पण (1978), वसंत (1976 से निरंतर प्रकाशित), भारतीय समाचार (1972), प्रभात (1976-79), प्रकाश (1974), परिवर्तन (1977-79), त्रिवेणी (1974), स्वदेश (1987-91), इंद्रधनुष (अक्तूबर 1988 से निरंतर प्रकाशित), आक्रोश (1990 से निरंतर प्रकाशित), मुक्ता (1990-92), भारत दर्शन (1989-91), पंकज (दिसम्बर 1993 से निरंतर प्रकाशित), रिमझिम (1994 से निरंतर प्रकाशित), भारत दर्शन (1979 से 1991), जनवाणी (2001)।

इस प्रकार मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता ने वैश्विक जगत में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया। विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना के साथ ही यहां हिंदी पत्रकारिता के विस्तार की संभावनाएं और भी प्रबल हो गई हैं। सचिवालय प्रत्येक तिमाही में 'विश्व हिंदी समाचार' भी प्रकाशित कर रहा है। विश्व हिंदी पत्रिका का वार्षिक अंक भी निकाला जा रहा है। आज मॉरीशस से कई स्तरीय पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं। इन पत्रिकाओं का बाह्य आवरण ही नहीं अपितु लेख, साहित्यिक रचनाएं, भाषा आदि की दृष्टि से भी इन पत्रिकाओं का स्तर श्लाघनीय है। महात्मा गांधी संस्थान से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'वसंत' और बाल पत्रिका 'रिमझिम' ने स्थापित पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। हिंदी प्रचारिणी सभा से श्री अजामिल माताबदल के संपादन में प्रकाशित पत्रिका पंकज, सांस्कृतिक परिषद के द्वारा श्री प्रह्लाद रामशरण के सम्पादन में प्रकाशित पत्रिका इन्द्रधनुष ने मॉरीशस की साहित्यिक पत्रिका को समृद्ध किया है। इंद्रधनुष में फ्रेंच और अंग्रेज़ी में भी सामग्री होती है।

हिंदी प्रचारिणी सभा का सूचना-पत्र हिंदी भवन संदेश भी प्रति माह प्रकाशित हो रहा है। मॉरीशस सरकार के हिंदी अध्यापकों के संघ द्वारा आक्रोश नामक मासिक पत्र सन् 1990 में श्री सत्यदेव टेंगर के सम्पादन में नियमित प्रकाशित हो रहा है। इसमें अंग्रेज़ी एवं फ्रेंच भाषा का भी समावेश होता है। इन पत्र-पत्रिकाओं ने आज मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता को जीवित रखा है तथा अपने अस्तित्व तथा विकास के लिए निरंतर संघर्षरत है। आज मॉरीशस में जिस प्रकार फ्रेंच पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है, वह स्थान हिंदी पत्र-पत्रिकाएं नहीं ले पाई हैं। हिंदी के उज्ज्वल भविष्य को लेकर मॉरीशस में एक कमी और खटकती है हिंदी के दैनिक समाचार-पत्र की। देश की हिंदी भाषी जनसंख्या में हिंदी की ज्योति जलाए रखने हेतु एक दैनिक पत्र का प्रकाशन इस देश में अति आवश्यक हो गया है। मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता के गहन अनुभवी व्यक्तित्वों की कमी नहीं है। हिंदी दैनिक पत्र के प्रकाशन से मॉरीशस की हिंदी पत्रकारिता को एक नया आयाम मिलेगा।

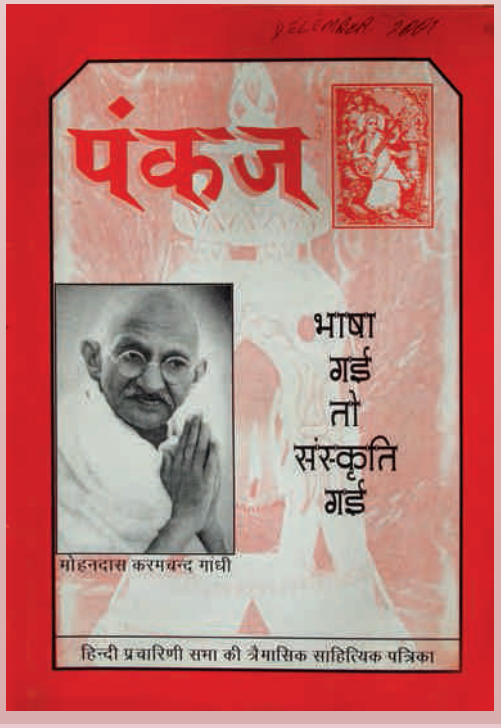

jkarnavat@gmail.com

अकेलापन मिटाती हिंदी

स्नेह ठाकुर

लेखिका ने हिंदी साहित्य की कई विधाओं में कार्य किया है। वे हिंदी, उर्दू और अंग्रेज़ी तीनों भाषाओं में लिख कर प्रवासी भारतीयों के बीच संप्रेषण का पुल बना रही हैं। अपनी पत्रिका 'वसुधा' के माध्यम से भी वे कनाडा में हिंदी को बढ़ावा देने के व्यापक अभियान में लगी हुई हैं।

भारतवंशियों, प्रवासियों का अकेलापन कुछ तो स्वाभाविक है, कुछ मानसिक है, कुछ स्वनिर्मित। हम अपना देश, गांव, घर छोड़कर हज़ारों मील दूर विदेश में बसने आ जाते हैं। अक्सर उच्च शिक्षा व भारत में उन्नति के सीमित साधन, बेकारी, रोजमर्रा की परेशानियों से खीझ कर ही हम यहां बसने आते हैं। इस प्रक्रिया में हम भारतवंशी, प्रवासी जो वहां जान-बूझ कर छोड़ना चाहते हैं, वे तो वहां छोड़ ही आते हैं, पर जो कुछ नहीं भी छोड़ना चाहते, वह भी हमसे छूट जाता है। 'यू कैन्ट हैव योर केक एंड ईट इट टू' वाली कहावत चरितार्थ होती है। दोनों हाथों में लड्डू नहीं मिल पाते। न चाहते हुए भी पीछे छूट गई चीज़ों में सबसे अहम है 'रिश्तों का दायरा'।

भारत में हम बड़ी फुर्ती से रिश्ते बना लेते हैं। पारम्परिक रिश्ते तो हैं ही, तथापि पास-पड़ोस, मित्र-मंडली, यहां तक कि जिस किसी से पहली बार मिलते हैं, उन्हें भी भाई, बहन, भाभी, चाची, ताई, चाचा, ताया, मामा बना बैठते हैं। फटाफट रिश्तेदारी कर बैठते हैं। यह रफ्तार, यह मुस्तैदी हम भारतीयों की ही विशेषता है। विदेशों में रिश्ते जोड़ने की रफ्तार धीमी है। यह नहीं कि यहां खून के रिश्तों के अलावा रिश्ते बनते ही नहीं। यहां भी खून का रिश्ता न होने पर भी सम्बन्धों की गहराई व आत्मीयता द्वारा वर्तमान पीढ़ी में बना रिश्ता दोनों घरों की अगली पीढ़ियों में भी जड़ जमा लेता है। बस फर्क इतना ही है कि ये रिश्ते सम्बन्धों को जांच-परख कर, ठोक-पीट कर बनाए जाते हैं या यूं कहिए कि व्यवहार व समय की कसौटी में कसते-कसते ये रिश्ते बन जाते हैं, क्षणिक आवेश में नहीं। सामान्यतः यहां सर, मैम, मिस या नाम से ही लोगों को सम्बोधित करते हैं, बहनजी या भाईसाहब से नहीं।

हम भारतवंशियों को यह प्रथा खटकती है, जिस संस्कृति से हम आए हैं वहां एक-दूसरे के साथ मिलने-जुलने के लिए, उठने-बैठने के लिए रिश्ते ढूंढे, बनाए जाते हैं। चाचा-चाची, भाई-भाभी, मौसी, बुआ आदि सब बड़ी सहजता से मिल जाते हैं। अतः हम यहां नाम में उस अंतरंगता,

आत्मीयता का अनुभव नहीं कर पाते जिसके हम आदी हैं। फलस्वरूप हम अपने में ही सिमट जाते हैं। मानसिक स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से हमारे लिए ये रिश्ते ढूंढने, बना लेने और बनाए रखने का सिलसिला बड़ा महत्वपूर्ण है, क्योंकि हम इसके पैदायशी आदी हैं। अतः यह प्रक्रिया हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गई है। अनजाने ही हम इससे बंध जाते हैं। इससे हमारा एक सामूहिक व्यक्तित्व विकसित होता है जो अकेलेपन को जड़ से काटता है। चूंकि यह प्रक्रिया यहां के लोगों में बचपन से ही नहीं है इन्हें यह व्यवहार समझने में निश्चित ही कठिनाई होती है। यह नहीं कि इनमें आत्मीयता की कमी है पर जो व्यवहार जाना-पहचाना न हो उसे समझने और ग्रहण करने में कठिनाई का होना स्वाभाविक ही है। पर दूसरी ओर हम भारतवंशियों को, जिन्हें यह व्यवहार बचपन की घुट्टी में घोट-घोटकर पिलाया गया है, विदेशियों की इस बारे में यह नासमझी बड़ी अस्वाभाविक लगती है।

हम यह भूल जाते हैं कि सम्बन्धों को बनाने में और बनाए रखने में हृदय के संवेगों की आवश्यकता है न कि बाह्य परिभाषाओं की। हम भारतवंशियों को यह समझने की आवश्यकता है कि स्वदेश में छूट गए रिश्तों का यहां अक्षरशः प्रतिरोपण सम्भव नहीं हो सकता है। हमें इन सम्बन्धों के स्वरूप को यहां के माहौल में समझने का प्रयत्न करना होगा। उनमें यहां की परिस्थितियों के अनुकूल यथासम्भव संशोधन कर उनका प्रतिरोपण करना होगा और देखा जाए तो स्वदेश में भी अपनी मिट्टी पर बने यह रिश्ते एक निरन्तर प्रक्रिया हैं। यह प्रक्रिया एक बहती नदी की तरह भावों को, संवेगों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अपने बहाव में बहाती लिए आती है। अचानक कोई न्याग्रा फ़ॉल आ जाए तो वह भी किसी बेहतरी के लिए ही होता है। यह तथ्य जहां एक ओर सत्य है वहीं यह उतना ही सत्य है कि किसी न किसी पूर्वज को यह व्यवस्था बनाने के लिए सर्वप्रथम ज़रूर प्रयास करना पड़ा होगा। अतः यह प्रयास यहां पर आए भारतवंशियों की पहली पीढ़ी को ही करना पड़ेगा जिससे वे भारतीय संस्कृति की यह अनमोल धरोहर भविष्य की पीढ़ियों को विरासत में दे सकें।

अधिकांशतः प्रवासी भारतीयों की विशेषता है कि वे मित्रता, हृदय के सुरों की आवाज़, हृदय की वीणा के तारों की मधुर झंकार से प्रभावित होकर नहीं वरन स्टेट्स, प्रतिष्ठा के मापदण्ड व शोऑफ, प्रदर्शन की चकाचौंध से प्रभावित होकर करते हैं। दोस्ती का आधार परस्पर प्रेम पर आधारित न होकर किसी हद तक स्वार्थसिद्धि या कम से कम इस भावना से प्रभावित होता है कि देखो हमारे इतने बड़े स्टेटस वाले या पैसे वाले दोस्त हैं।

इस प्रक्रिया में वैसे ही अलगाववाद आ जाता है, ऊपर से एक-दूसरे को मात देने के चक्कर में हम स्वयं ही क्षत-विक्षत हो जाते हैं। उन छोटे-छोटे द्वीपों की तरह बन जाते हैं जो पास-पास होते हुए भी एक-दूसरे से संबंधित नहीं होते। साथ ही इस मात देने की प्रक्रिया में कई बार हम अपनी हैसियत से बढ़-चढ़कर दिखाने के रोग को इस तरह अपने से चिपटा लेते हैं कि उसमें हम अपना आर्थिक, मानसिक व शारीरिक नुकसान भी कर बैठते हैं। बढ़ते हुए अकेलेपन को हम पुरानी यादों से भरने की कोशिश करते हैं या फिर भौतिक सुख-सुविधाओं की आड़ लेकर भाग-दौड़ के बीहड़ जंगल में भटकने लगते हैं। ये दोनों ही स्थितियां अकेलेपन से उभारती नहीं वरन अकेलेपन के गर्त में और भी अन्दर धंसाती जाती हैं।

ऐसे हाल में कोई अपनी भाषा हिंदी बोलता दिख जाए तो बस राहत मिल जाती है। परदेश में हिंदी बड़ा सहारा बनकर मिलती है।

sneh.thakore@rogers.com

यह प्रक्रिया एक बहती नदी की तरह भावों को, संवेगों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अपने बहाव में बहाती लिए आती है। अचानक कोई न्याग्रा फ़ॉल आ जाए तो वह भी किसी बेहतरी के लिए ही होता है।

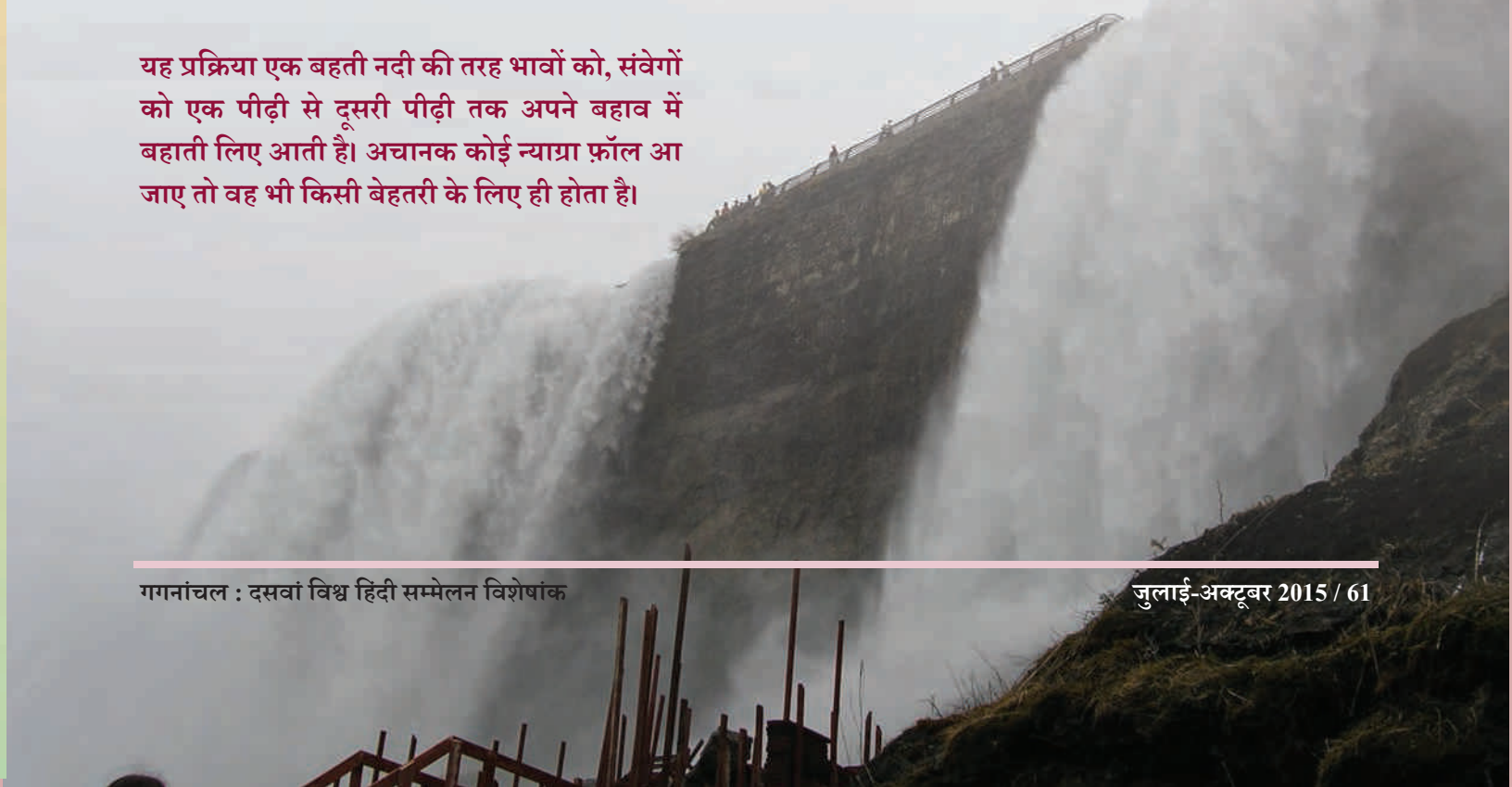

लेखक 'प्रवासी संसार' नामक पत्रिका के संपादक हैं। विश्व हिंदी सम्मेलनों के दौरान उनकी सक्रियता सभी को प्रेरित करती है। मॉरीशस, त्रिनिदाद टोबैगो, गयाना, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका एवं फीजी आदि देशों में वे हिंदी के प्रचार-प्रसार के कार्यों में निरंतर अपना समय देते हैं।

हिंदी के जहां और भी हैं

राकेश पाण्डेय

हिंदी की विश्व पटल पर अब केवल एक भारत की भाषा के रूप में पहचान नहीं है, बल्कि विश्व के अनेक देश अब अपनी हिंदी को भारत की हिंदी से अलग भी मानते हैं। विश्व के अनेक देशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य हो रहा है। हिंदी को संरक्षित एवं संवर्द्धित करने के लिए अलग-अलग देशों में वहां पर स्थानीय स्तर पर गठित भारतीय समुदाय के लोगों के समूह और बाद में उनके संस्थागत समूहों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मॉरीशस में यह कार्य गन्ने के खेतों से ही आरम्भ हुआ और वहां पर उत्तर प्रदेश व बिहार के गिरमिटिया श्रमिकों ने भारतीय गांवों की भांति बैठक लगाना शुरू किया और हिंदी प्रचार-प्रसार का कार्य वहीं से आरम्भ हुआ। बैठक पद्धति वहां पर भारतीय भाषाओं के संरक्षण के साथ-साथ भारतीय संस्कृति एवं उन देशों में रह रहे भारतीयों के भविष्य निर्धारण में भी सार्थक सिद्ध हुई। बाद में अनेक हिंदी सेवी संस्थाएं प्रकाश में आईं, जिनमें 'हिंदी प्रचारिणी सभा' व 'हिंदी स्पीकिंग यूनियन' अग्रणी सेवी संस्थाएं हैं। इनके साथ ही 'सनातन धर्म सभा' व 'आर्य समाज' की संस्थाएं भी हिंदी के लिए अपने स्तर पर प्रयास करती रही हैं।

मैंने अपने कई बार के मॉरीशस प्रवास में अनुभव किया कि हिंदी यहां के भारतवंशियों के लिए उनके अस्तित्व का प्रतीक भी है, क्योंकि यहां सारा सरकारी कार्य फ्रेंच अथवा अंग्रेज़ी में ही होता है और बोलचाल में क्रियोल का प्रयोग होता है, किन्तु अब मॉरीशस की एयरहोस्टेस से लेकर किसी दफ्तर या होटल के बैरे तक हिंदी में बोलते मिल जाएंगे। इसी प्रकार सूरीनाम में भी सूरीनाम हिंदी परिषद' हिंदी प्रचार की प्रमुख संस्था है। उसके साथ ही वहां स्व. बाबू महातम सिंह का नाम भी निजी स्तर पर उल्लेखनीय है, उन्होंने अपना सारा जीवन हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए दिया। सूरीनाम में जब सातवां विश्व हिंदी सम्मेलन हुआ था तो मैंने माई-बाप की प्रतिमा के सामने सूरीनाम के भारतवंशियों को एकत्रित होते देखा था। यह आज भी वहां भाषा एवं संस्कृति को सहेजने का एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रयास है।

निकेरी के मार्ग में वहां एक रेस्टोरेंट के बाहर 'रोटी-शॉप' का बोर्ड लगा था। यह संकेत था एक भारतीय की दुकान होने का कि यहां पर रोटी मिलती है। इसी प्रकार जितनी भी धार्मिक संस्थाएं हैं, जैसे कि 'आर्य समाज', सनातन धर्म महासभा', 'सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था' आदि, सभी ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिसे अनदेखा नहीं किया जा

सकता। भारत से बाहर यदि कहीं सचमुच हिंदी की नींव मजबूत है तो वह देश फीजी है, जहां की तीन घोषित राजभाषाओं में से एक हिंदी भी है। वहां पर सरकारी बोर्ड हिंदी में देखे जा सकते हैं। लेकिन भौगोलिक दृष्टि से भारत से दूर होने के कारण फीजी की हम अधिक चर्चा नहीं सुन पाते। फीजी का लम्बासा क्षेत्र तो पूरा अयोध्या ही है। वहां बोलचाल में लोकभाषा अवधी अपने मूल रूप में विद्यमान है। यहां पर 'हिंदी टीचर एसोसिएशन' व 'आर्य समाज' मुख्य संस्थाएं हैं जिनके माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार किया जाता है। हिंदी टीचर एसोसिएशन' ने तो भारत सरकार को 9वें विश्व हिंदी सम्मेलन के लिए भी प्रस्ताव भेजा था, लेकिन यह संभव न हो सका।

हिंदी को विश्व मंच पर स्थापित करने में हिंदी सिनेमा का महत्वपूर्ण योगदान है, जिसके अनेक उदाहरण हैं। हिंदी सिनेमा ने केवल मनोरंजन ही नहीं किया, बल्कि उसने हमारी भाषा एवं संस्कृति का विस्तार भी किया है। हिंदी सिनेमा ने दुनिया में हिंदी को एक नई पहचान दी है। हिंदी सिनेमा के प्रति दीवानापन इस कदर फैला हुआ है कि कभी-कभी तो कई प्रसंग सुनने पर विश्वास भी नहीं होता। साथ ही दूसरी ओर अनेक विद्वानों ने विदेशों में हिंदी शिक्षण के लिए हिंदी फ़िल्मी गानों को माध्यम भी बनाया है, जिसके लिए जापान के प्रो. तोमियो मिजोकामी का नाम सर्वविदित है, जिन्होंने लगभग 300 फ़िल्मी गानों का हिंदी से जापानी में अनुवाद किया है। जब उन्होंने जापान में मुझे वह पुस्तक भेंट की तो मैं दंग रह गया। इसी प्रकार रूस में स्व. राज कपूर के लोग बेहद दीवाने हैं और उनका गाना 'मेरा जूता है जापानी' अनेक महत्वपूर्ण आयोजनों तक में बजाया जाता है।

भारतवंशी देशों, मॉरीशस, सूरीनाम, गयाना, फीजी व त्रिनिदाद एवं टुबैगो में तो हिंदी फ़िल्मों के प्रति दीवानापन आम जीवन में देखा जा सकता है। एक मित्र ने एक प्रसंग बताया कि त्रिनिदाद में एक युवक ने अपना नाम 'कमीना' रख लिया। यह बहुत ही असहज करने वाला नाम है, क्योंकि सभी जानते हैं कि यह गाली के लिए प्रयोग किया जाता है। जब उस युवक से पूछा कि तुमने यह नाम क्यों रखा है तो उसने उत्तर दिया कि उसे गाना 'इश्क कमीना' बहुत अच्छा लगता है। यह सुनकर सब अवाक रह गए और युवक को बताया कि यह शब्द तो गाली के लिए प्रयोग किया जाता है तो उसने सहजता से उत्तर दिया कि इश्क अर्थात् 'लव' गाली कैसे हो सकता है! इस प्रकार के अनेक प्रसंग हैं। त्रिनिदाद के विषय में तो यह विख्यात है कि वहां पर 'सुहानी शाम ढल चुकी, तुम कब आओगे' एक अघोषित राष्ट्रीय गान का स्थान ले चुका है। किसी भी सामूहिक आयोजन में वहां पर इस गाने को अवश्य बजाया अथवा गाया जाता है। इसी प्रकार फीजी में फ़िल्मों का कार्यक्रम 'मस्ताना' है।

हाल में मुझे चीन यात्रा का अवसर प्राप्त हुआ। वहां पर एक क्लब में चीनी व अंग्रेज़ी गाने बज रहे थे और कलाकार अपना नृत्य प्रस्तुत कर रही थी। हम कुछ देर रुकने के बाद चलने को हुए, तभी वहां 'मुन्नी बदनाम हुई' बजने लगा और ढेर सारे दूर-दूर बैठे भारतीय व अन्य देशों के लोग नाचने लगे और जो वातावरण अभी तक परदेसी लग रहा था वह एकदम देसी हो गया। सभी ने हिंदी में बात करना शुरू कर दिया। चीन जैसे देश में जहां अंग्रेज़ी भी न समझी जाती हो, वहां यह वातावरण हिंदी सिनेमा के कारण सम्भव हुआ। चीन के ग्वानजाऊ के बीजिंग लू बाजार में चीनी दुकानों पर खड़ी लड़कियां आपसे हिंदी में बात करती और अपना सामान बेचती मिल जाएंगी। सुविधानुसार अपने नाम भी गीता, सीमा, सीता रख लिए हैं। हमें बॉलीवुड को धन्यवाद देना चाहिए कि उसके माध्यम से हमारी भाषाओं, हमारी बोलियों के शब्द विदेशों में ग्राह्य होते जा रहे हैं।

कुछ वर्ष पूर्व फ्रांस शासित बेहद खूबसूरत रीयूनियन द्वीप में पहली बार हिंदी की पताका पहुंची और 'हिंदी दिवस' मनाया गया। यहां पर भारतीय मूल के लोगों की लगभग 2,25,000 आबादी है, जिनमें गुजराती व तमिल मूल के भारतवंशी प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं। उनके साथ बोहरा मुस्लिम समुदाय भी है। यहां भाषाई भिन्नता लगभग न के बराबर है, सभी लोग फ्रेंच अथवा क्रियोल ही बोलते हैं। अंग्रेज़ी नाममात्र की भी प्रयोग नहीं होती। यहां हिंदी की व्याप्ति, गुजराती मूल के भारतवंशियों में सम्मिलित मुस्लिम व सुनार समुदाय में बची भाषाएं उर्दू व गुजराती के मध्य है। यहां की राजधानी सेंट डेनिस के आंदी विला में यह बहुत ही रोमांचकारी पल थे, जब हिंदी दिवस समारोह में सम्मिलित होने के लिए लगभग 400 ऐसे लोग एकत्रित थे, जिनमें से कुछ हिंदी, कुछ तमिल जानते थे, कुछ उर्दू, कुछ गुजराती, कुछ अंग्रेज़ी और सभी फ्रेंच।

इस प्रकार विश्व के अनेक देश हैं जहां पर हिंदी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। अत: हिंदी अब केवल भारत की ही नहीं, बल्कि उसके जहां और भी हैं।

pravasisansar@gmail.com

लेखिका ने दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक पद से अपना कार्मिक जीवन प्रारंभ किया, तदनंतर, भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के हिंदी प्रभागों में अधिकारी के रूप में कार्य करती रहीं। फिलहाल वे विदेश मंत्रालय में उप सचिव (हिंदी) के रूप में कार्यरत हैं, जहां रहते हुए उन्होंने विश्वस्तरीय हिंदी सम्मेलनों का दायित्व निभाया है।

वर्तमान की देहरी तक

सुनीति शर्मा

कहावत है, चाहत में ईमानदारी हो तो देर-सबेर पूरी हो ही जाती है। मेरे साथ भी यही हुआ। जब से सपने देखने का शऊर आया तब से ही उनमें रंग भरने की कोशिशें शुरू कर दी थीं। उन्हें साकार करने की दिशा में कदम बढ़ाने लगी। मेरा सफर शुरू हो गया जो अब तक जारी है। ईमानदारी, कठिन परिश्रम, लगन, निष्ठा, आत्मविश्वास, संवेदनशीलता, स्नेह, करुणा, ठान लेने का जज्बा, परफैक्शन, अपने किए हर सही काम पर भरोसा, पीछे मुड़कर न देखने का स्वभाव, सही गलत की पहचान और सबसे ऊपर अपने आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए आगे बढ़ने के हौसले ने मुझे अब तक पॉजिटिव बनाए रखा है।

इसी पॉजिटिवनेस ने मुझे आशावादी बनाया और अपने आप पर भरोसा करना सिखाया जिसकी बदौलत मुझे आज भी कोई चुनौती, चुनौती नहीं लगती। हिंदी-सेवा की मेरी यात्रा शुरू हुई जो विभिन्न मंत्रालयों में राजभाषा हिंदी के कार्य करते हुए विदेश मंत्रालय तक पहुंची।

विदेश मंत्रालय में उप सचिव (हिंदी) के पद के 'साक्षात्कार' के वक्त बड़े ही आत्मविश्वास से मेरे मुंह से बरबस यह निकल पड़ा कि 9वां विश्व हिंदी सम्मेलन तो मुझे कराना ही है, वह भी बहुत सफलतापूर्वक। पहले बोर्ड बिल्कुल मौन अख़्तियार किए हुए था, लेकिन मेरा आत्मविश्वास देखकर बोर्ड के अध्यक्ष अपनी मुस्कुराहट रोक नहीं पाए। मेरा चयन किया जा चुका था। इस प्रकार मैंने विदेश मंत्रालय में अप्रैल 2012 के अंतिम सप्ताह में कार्य संभाला। 22-24 सितंबर, 2012 के दौरान दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग में 9वें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन एक घटनामात्र नहीं थी बल्कि, वह कालखण्ड था, जिसे भुलाया नहीं जा सकता। कभी-कभी तो यह सपना-सा लगता है जो सभी के अथक प्रयासों से साकार हो पाया था।

सम्मेलन के आयोजन के लिए मेरे पास करीब पांच महीने का समय था। 9वें विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन के लिए स्थान का निर्धारण किया जा चुका था। मुझे यह जानकर काफी प्रसन्नता हुई कि **महात्मा गांधी की कर्मस्थली अफ्रीका के 'जोहान्सबर्ग'** की धरती इस सम्मेलन के लिए चुनी गई। यह सम्मेलन गुरुतर दायित्व था, जिसे सफलता से निभाना हमारे लिए एक बड़ी चुनौती थी। इस दौरान मुझे बड़े-बड़े हिंदी साहित्यकारों, विद्वानों एवं लेखकों से निरंतर

संपर्क करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

तत्कालीन माननीय विदेश राज्य मंत्री, श्रीमती प्रनीत कौर के नेतृत्व एवं विशेष सचिव (प्रशा.) एवं संयुक्त सचिव (प्रशासन) के मार्गदर्शन में सहजता, उत्साह एवं एकाग्रता के साथ इस चुनौती भरे दायित्व को पूरा करने का प्रयास किया गया।

9वां विश्व हिंदी सम्मेलन दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग में आयोजित किए जाने का एक विशेष ऐतिहासिक महत्व था, क्योंकि यहीं से राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्दांतों का प्रतिपादन किया। 9वें विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी से जुड़े श्रेष्ठ तथा आधुनिक दोनों पहलुओं से संबंधित पारंपरिक और समकालीन विषयों पर चर्चा की गई। विदेश राज्य मंत्री ने इस मौके पर कहा था 'दक्षिण अफ्रीका, विश्व हिंदी सम्मेलन के लिए एक पिलग्रिमेज की तरह है'। वहीं दक्षिण अफ्रीका में तत्कालीन भारतीय उच्चायुक्त श्री वीरेन्द्र गुप्ता का यह कहना कि 'दक्षिण अफ्रीका ने मोहनदास करमचंद गांधी को 'महात्मा गांधी' बनाकर भारत भेजा', सम्मेलन का आयोजन **दक्षिण अफ्रीका की राजधानी जोहान्सबर्ग** के गांधीग्राम 'सैंडटन कन्वेशन सेंटर' में करने का औचित्य सिद्ध करता है। समग्र सम्मेलन स्थल को 'गांधी ग्राम' नाम दिया गया था। उद्घाटन व समापन समारोह स्थल को 'नेल्सन मंडेला सभागार' कहा गया। इसके अलावा समानांतर सत्रों के लिए 'नीति', 'अहिंसा', 'न्याय' नामक कक्ष स्थापित किए गए थे।

सम्मेलन में दक्षिण अफ्रीका के वित्त मंत्री श्री प्रवीन गोर्धन, भारत की तत्कालीन विदेश राज्य मंत्री श्रीमती प्रनीत कौर, दक्षिण अफ्रीका के उप-विदेश मंत्री मरियस फ्रेंसमेन, मॉरीशस के संस्कृति मंत्री श्री मुकेश्वर चुनी, विदेश मंत्रालय के श्री एम. गणपति, सचिव (पश्चिम), दक्षिण अफ्रीका स्थित 'हिंदी शिक्षा संघ' की अध्यक्ष, श्रीमती मालती राम बली, श्री हीरा लाल सेवानाथ के अतिरिक्त माननीय सांसद श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी सहित अनेक सांसद, डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, प्रो. निर्मला जैन, प्रो. असगर वजाहत, प्रो. अशोक चक्रधर, डॉ. कमल किशोर गोयनका, डॉ. नरेन्द्र कोहली, प्रो. गंगा प्रसाद विमल, श्री हीरा लाल शिवनाथ, प्रो. उपल रणजी (श्रीलंका), डॉ. बुनरूम खाम (थाईलैंड), प्रो. हिदेआकी इशिदा (जापान), गएचेवा वन्या जेर्जज्येदा (बुल्गारिया) और महात्मा गांधी की पौत्री श्रीमती इला गांधी आदि जैसे अनेक विद्वज्जन मौजूद थे।

पंडित वेदालंकार की प्रतिमा के अनावरण, प्रदर्शनी के उद्घाटन, सम्मेलन बुलेटिन 'हिंदी विश्व' का लोकार्पण और शेखर सेन जैसे कलाकार की मंत्रमुग्ध कर देने वाली एकल नाट्य प्रस्तुति सम्मेलन का आकर्षण रहे। सम्मेलन के कार्य बहुआयामी थे। सत्रों के संयोजन, संचालन, आतिथ्य के अलावा एक रुचिकर कार्य मुझे और सौंपा गया, जिसे मैंने बड़ी निष्ठा और ख़ुशी से निभाया, वह था- मंच संचालन।

मेरी तमाम उपलब्धियों में एक अद्भुत उपलब्धि समापन समारोह के उस क्षण को मैं समर्पित करना चाहूंगी कि जब पूरा वातावरण सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रहा था, उस क्षण

मंडेला स्क्वायर, जोहान्सबर्ग

मुझे वह व्यक्ति बरबस याद आया जिसके अथक प्रयासों और विवेकपूर्ण मार्गदर्शन में यह आयोजन सफल मुकाम हासिल कर पाया, जो इस सम्मेलन के पीछे सब कुछ होते हुए भी अपने-आप को बिल्कुल सामने नहीं ला रहे थे, वे थे आदरणीय श्री अनूप कुमार मुद्गल जी, संयुक्त सचिव (प्रशा.)। मैं, वरिष्ठजनों की अनुमति लेते हुए मंच से उतर कर स्वयं उन्हें मंच पर लाई। मुझे नाज़ है उस स्मरण शक्ति पर जिसकी बदौलत मैं अपने कर्तव्य के प्रति न्याय कर पाई, इसे मैं अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि एवं सफलता मानती हूं।

सम्मेलन का सफल आयोजन हो जाने के बाद सभी का ध्यान दक्षिण अफ्रीका के ख़ूबसूरत शहर 'जोहान्सबर्ग' की ओर था और सभी चाहते थे कि इस शहर को नज़दीक से देखा जाए। मैंने इसे बहुत अच्छी तरह से देखा। हमें न केवल जोहान्सबर्ग के खास-खास दर्शनीय स्थलों को देखने का मौका मिला, बल्कि प्रिटोरिया में भारत के उच्चायुक्त महामहिम श्री वीरेन्द्र गुप्ता से मिलने, उनका मार्गदर्शन प्राप्त करने, उनके निवास स्थान के रंग-बिरंगे फूलों से भरे बगीचे के समीप बड़े हॉल में मंद रौशनी के बीच दक्षिण अफ्रीका के ज़ूलू लोक नर्तकों का नयनाभिराम नृत्य देखने और श्री सुरेन्द्र शर्मा की हास्य रचनाएं सुनने का अवसर भी प्राप्त हुआ।

दक्षिण अफ्रीका के केपटाउन शहर को देखने का मोह भी मैं नहीं छोड़ पाई। सम्मेलन के मौके पर दक्षिण अफ्रीका के डरबन, प्रिटोरिया, केपटाउन आदि शहरों से आए हिंदी प्रेमियों का स्नेह और आदर भुलाने की बात नहीं है। विश्व हिंदी सम्मेलन भाषा के विभिन्न पहलुओं से स्वयं को परिचित कराने और उसकी प्रगति की समीक्षा का उपयुक्त मंच प्रदान करता है।

मेरे अपने लिए एक और ख़ुशी यह भी थी कि जोहान्सबर्ग में मेरी छोटी बहन अपने परिवार के साथ पहले से ही रह रही थी, जिसने मुझे अपने काम में भरपूर ऊर्जा दी।

तीन वर्ष का अंतराल कैसे पूरा हुआ, पता ही नहीं चला और 10वां विश्व हिंदी सम्मेलन अब पायदान पर है। इसका आयोजन भारत के मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में 10-12 सितंबर, 2015 में आयोजित किए जाने का निर्णय हुआ। मुझे इस सम्मेलन के कार्य से पुनः जुड़ने का सौभाग्य मिला है। माननीय विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज की दृढ़ इच्छा है कि यह सम्मेलन ऐसा यादगार सम्मेलन बने जो पहले कभी न हुआ हो। मंत्री महोदया अपनी दूरदृष्टि और हिंदी के प्रति विशेष लगाव के कारण सम्मेलन के आयोजन से जुड़ी हर गतिविधि में स्वयं रुचि ले रही हैं। कई बार किसी एक व्यक्ति के कारण भी बहुत बड़ा अनुष्ठान पूरा हो जाता है। माननीय विदेश मंत्री जी के कुशल और उत्साहवर्धक मार्गदर्शन में इसका आयोजन किया जा रहा है। उनकी इस अनुष्ठानिक चेतना से यह सम्मेलन निश्चित रूप से सफल होगा। हम सभी इस सम्मेलन के सफल आयोजन के आकांक्षी हैं।

dshindi@mea.gov.in

लेखक सुप्रसिद्ध कथाकार, बालसाहित्यकार एवं समीक्षक हैं। मेरठ विश्वविद्यालय से अवकाशप्राप्त करने के बाद वे स्वतंत्र लेखन में लगे हैं। उन्हें देश-विदेश में अनेक सम्मानों से नवाज़ा गया है।

उत्तर से दक्षिण पूरब से पश्चिम

डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

भाषा विज्ञानियों के अनुसार भारतवर्ष में उत्तर भारत के प्रदेशों में 'भारोपीय परिवार' की 'आर्य उपकुल' की भाषाएं, यथा-हिंदी, कश्मीरी, पंजाबी, राजस्थानी, बिहारी, गुजराती, उड़िया, बंगाली, मराठी आदि बोली जाती हैं, जबकि दक्षिण भारत के चार प्रदेशों तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और केरल में 'द्रविड़ परिवार' की भाषाएं तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम बोली जाती हैं।

'आर्य उपकुल' की भाषाओं का उद्गम चूंकि मूलतः संस्कृत है और कालान्तर में प्राकृत, पालि तथा अपभ्रंश से उद्भूत उत्तर भारत की 'आर्य भाषाएं' कहीं-न-कहीं मूल में एकत्व का भाव रखती हैं, लेकिन 'द्रविड़ परिवार' की चारों भाषाओं की व्याकरणिक प्रकृति भिन्न होने के कारण यदा-कदा विरोध के स्वर भी उभरते रहे हैं।

'दक्षिण भारतीयों की प्रेरक हिंदी-सेवा'

आर्य उपकुल के हिंदी भाषी प्रदेशों के साथ-साथ हिंदी की ही तरह संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं से उद्भूत आर्य-परिवार की प्रादेशिक भाषाओं के रचनाकारों के द्वारा की गई हिंदी-सेवा तो सहज, स्वाभाविक रूप में सराहनीय रही ही है, लेकिन हिंदी भाषा की राष्ट्रव्यापी स्वीकार्यता और लोकप्रियता के सन्दर्भ में 'द्रविड़ परिवार' की भाषाओं को बोलने-लिखने और पढ़ने वालों की प्रेरक हिंदी-सेवा देखकर सचमुच गर्व और हर्ष होता है। हिंदी-साहित्य और भाषा का इतिहास जानने वाले इस तथ्य से भली-भांति परिचित रहे हैं कि हिंदी के प्रचार-प्रसार और उन्नयन में हिंदी-भाषी क्षेत्रों से बाहर के लोगों का उल्लेखनीय और महनीय योगदान रहा है।

सबसे बड़ा और भाषा विज्ञान से संपुष्ट सच तो यही है कि आज जिसे पूरा भारतवर्ष मन से 'राष्ट्रभाषा' और संवैधानिक दृष्टि से 'राजभाषा' कहता है, उस 'हिंदी' को यह 'हिंदी' नाम वस्तुतः फारस के मुसलमानों ने दिया था। गुजराती भाषी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के ही 'त्रिभाषा-सूत्र' को अपनाते हुए दक्षिण भारत के तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषा-भाषी

प्रबुद्धजनों और रचनाकारों ने हिंदी भाषा को पूरे सम्मान के साथ-साथ समर्पण और श्रद्धाभाव के साथ अपनाया है।

अपने इस आलेख में मैं अत्यन्त गर्व के साथ दक्षिण भारत के तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और केरल राज्य के अहिंदी भाषी रचनाकारों के साथ-साथ प्रबुद्ध, समर्पित हिंदी-सेवियों की मूल्यवान हिंदी-सेवा का संक्षिप्त विवरण देना चाहूंगा।

दक्षिण भारत के रचनाकारों और प्रबुद्धजनों की प्रेरक हिंदी-सेवा के संक्षिप्त विवरण से मैं यह भी सिद्ध करने का विनम्र प्रयास करूंगा कि अस्सी के दशक में भारत के दक्षिणी राज्यों, विशेषतः तमिलनाडु में, जो 'हिंदी-विरोधी आन्दोलन' हमें देखने को मिला था, वह 'जनान्दोलन' कदापि नहीं था, बल्कि उसके मूल में विशुद्ध रूप से कुछ 'क्षुद्र मानसिकता वाले' राजनेता ही थे।

वस्तुतः हिंदी भाषा की राष्ट्रव्यापी स्वीकार्यता के पक्षधर दक्षिण भारतीय विद्वान और सांस्कृतिक एवं दार्शनिक दृष्टि से संपन्न प्रबुद्ध जन तो आज भी यह तथ्य स्वीकार करते हैं कि 'उत्तर भारत ने 'अवतार' दिए हैं, तो दक्षिण भारत ने 'आचार्य' दिए हैं।"

आपको यह तथ्य जानकर निश्चय ही आश्चर्य होगा कि भारत के दक्षिणी राज्यों कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु में 'हिंदी भाषा' में रचना करने वालों का इतिहास बहुत समृद्ध और प्राचीन रहा है। वर्तमान खड़ी बोली के अनेक प्रारंभिक ग्रंथों का सृजन कर्नाटक में हुआ है। फ़खरुद्दीन निज़ामी द्वारा सन् 1428 से 1435 ईसवी के बीच रचित ग्रंथ 'मसनवी कदमराव पदमराव' को विद्वानों ने खड़ी बोली का प्रथम आख्यान-काव्य स्वीकार किया है, जिसकी रचना कर्नाटक राज्य के 'बीदर' स्थान पर हुई थी।

कर्नाटक और केरल की ही तरह तमिलनाडु में भी अनेक समर्पित विद्वानों ने मनसा-वाचा-कर्मणा हिंदी के प्रचार-प्रसार और राष्ट्रव्यापी स्वीकार्यता के लिए अपनी प्रभावी भूमिका निभाते हुए हिंदी और तमिल के बीच सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सेतु का निर्माण किया है।

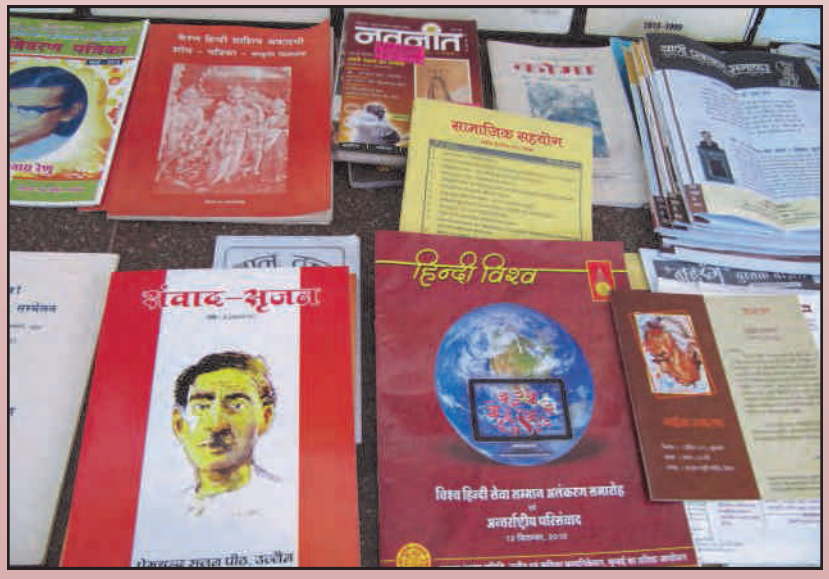

तमिलनाडु में तेलुगु भाषी डॉ. बालशौरि रेड्डी की हिंदी सेवा तो निरन्तर प्रेरक तथा अनुकरणीय रही है। लगभग छह दशक पूर्व हिंदी की ध्वजा पूरे भारत में फहराने वाली बाल पत्रिका 'चन्दा मामा' के यशस्वी संपादक रहे डॉ. बालशौरि रेड्डी की हिंदी सेवा निश्चय ही दक्षिण भारत में हिंदी की व्यापक स्वीकार्यता और लोकप्रियता का आधार बनी है। अनेक मौलिक साहित्यिक कृतियों के सृजेता डॉ. बालशौरि रेड्डी की ही तरह दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई के प्रोफेसर डॉ. दिलीप सिंह ने भाषा विज्ञान के साथ-साथ हिंदी-समीक्षा के उन्नयन के लिए अथक प्रयास किए हैं।

आन्ध्र प्रदेश और केरल में भी हिंदी को राष्ट्रव्यापी स्वीकार्यता दिलाने के लिए अहिंदी भाषी कई विद्वानों ने हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में विशेष योगदान देकर मौलिक तथा अनूदित ग्रंथों का प्रणयन किया है। ऐसे समर्पित अहिंदी, भाषी हिंदी-सेवियों में डॉ. वी.पी. मुहम्मद कुंजुमेत्तर, डॉ. शेषारत्नम, डॉ. एन.पी. कुट्टन पिल्लै, डॉ. टी.के. नारायण, डॉ. नूरजहां बेगम, प्रो. वाई. वेंकट रामन और पी. निर्मला देवी आदि के नाम विशेष सम्मान के साथ लिए जा सकते हैं।

निश्चय ही, हिंदी की राष्ट्रव्यापी स्वीकार्यता और लोकप्रियता की अभिवृद्धि में 'द्रविड़ परिवार' की चार दक्षिणी भाषाओं के ज्ञाता, विद्वानों ने जो रचनात्मक और सकारात्मक भूमिका निभाई है, उसी का सुपरिणाम यह है कि आज दक्षिण भारत के राज्यों में विश्वविद्यालयों तथा विद्यालयों के स्तर पर हिंदी के कदम निरन्तर बढ़ रहे हैं और हिंदी विरोध के कथित स्वर कहीं सुनाई नहीं दे रहे हैं।

हिंदी की स्वीकार्यता में अहिंदीभाषी क्षेत्रों के योगदान की दृष्टि से पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल तथा ओड़ीसा के साथ ही कश्मीर का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कश्मीर के कवियों ने हिंदी में अनूठी रचनाएं देकर हिंदी के भण्डार को समृद्ध किया है। कवि श्री हरिकृष्ण कौल ने हिंदी में जहां काव्य रचा है, वहीं कथा-साहित्य, नाटक और समीक्षा के क्षेत्र में भी उत्कृष्ट रचनाएं दी हैं। अन्य कश्मीरी हिंदी रचनाकारों में श्री चमन लाल सप्रू, शशि शेखर तोणरवाणी, मोहनसिंह 'निराश', हरिकृष्ण कौल के साक्षी गोपाल कृष्ण कौल आदि के नाम

सम्मान के साथ लिए जा सकते हैं, क्योंकि इनकी सक्रिय हिंदी-सेवा से हिंदी समृद्ध हुई है।

वास्तविकता यह है कि पंजाब की तरह ही कश्मीर में भी हिंदी की जड़ें बहुत गहरी और मजबूत रही हैं। वस्तुतः 'अमर नाथ यात्रा' के माध्यम से कश्मीर में भारत के सन्तों, विशेषतः तुलसी, सूर, मीराबाई आदि के पद जब पहुंचे, तो वहां के जनमानस में हिंदी समा गई। सोलहवीं शताब्दी के कश्मीर में कवि परमानन्द लक्ष्मण जू 'बुलबुल', श्री कृष्ण राजदान और पं. नीलकण्ठ शर्मा आदि ने हिंदी भाषा में काव्य रचना करके हिंदी को अमृत दे दिया था।

महाराष्ट्र के मराठी भाषी रचनाकारों ने भी हिंदी को राष्ट्रव्यापी स्वीकार्यता और लोकप्रियता में बेजोड़ योगदान दिया है। आज हिंदी में जो 'दलित-साहित्य-धारा' हमें मिल रही है। वस्तुतः उसका उद्गम तो मराठी रचनाकारों से ही है। 'सीरिका' कथा मासिक के अप्रैल, 1975 तथा मई, 1975 के 'दलित विशेषांकों' से जो 'दलित विमर्श' आरंभ हुआ, वह मूलतः महाराष्ट्र की ही देन है। नामदेव ढसाल, यशवन्त मनोहर, लोकनाथ यशवन्त, बाबूराव बागुल, दया पवार, मालिका अमर शेख, दादा साहेब मोरे आदि मराठी भाषी लेखकों की हिंदी-सेवा ने सचमुच पूरे देश में, विशेषतः हिंदी भाषी क्षेत्रों के दलितों में हिंदी-उन्नयन का बहुत बड़ा काम किया है, जिससे हिंदी 'जनभाषा' बनने में भी सक्षम सिद्ध हुई है।

अपने आलेख के अन्त में मैं 'गीतांजलि' के कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर, बंकिम चन्द्र चटर्जी और 'आवारा मसीहा' शरत चन्द्र के बंगाल की हिंदी-सेवा का भी संक्षिप्त उल्लेख अवश्य करना चाहूंगा, चूंकि बंगाल की हिंदी-सेवा का अत्यन्त गहरा प्रभाव राष्ट्रव्यापी हिंदी -स्वीकार्यता और हिंदी-वर्चस्व पर निरन्तर रहा है। जिससे पूरे भारतवर्ष में हिंदी को पहचान मिली है।

'भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता' और 'भारतीय संस्कृति संसद' जैसी संस्थाओं के साथ ही कलकत्ता विश्वविद्यालय के आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल द्वारा स्थापित 'बंगीय हिंदी परिषद्' आज भी हिंदी के प्रचार-प्रसार और उन्नयन में जुटी हुई हैं। आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री का नाम तो हिंदी सेवा के क्षेत्र में श्रद्धा-सम्मान के साथ लिया ही जाता है और उनके अविस्मरणीय योगदान के लिए हिंदी-जगत सदैव उनका ऋणी रहेगा। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, कथाकार मन्नू भण्डारी, स्वदेश भारती आदि रचनाकारों ने हिंदी की जो बेजोड़ सेवा की है, उसके कारण बंगाल का गौरव पूरे देश में बढ़ा है।

ynsarun@hotmail.com

इतिहास पर बात करने के सूत्र

डॉ. देवेन्द्र चौबे

लेखक भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू. नई दिल्ली में प्रोफेसर तथा चर्चित शिक्षाविद हैं। उन्होंने संस्कृति मंत्रालय राष्ट्रीय फैलोशिप के अंतर्गत दलित साहित्य पर गहन कार्य किया। वे मॉरीशस के महात्मा गांधी संस्थान में विज़िटिंग स्कॉलर रह चुके है।

पिछले कुछ दशकों में हिंदी भाषा में विचार-विमर्श की प्रक्रिया बदली है। हाल के दशकों में जब विचारधाराओं की दुनिया में विकास के नये संदर्भों और सामाजिक अस्मितावादी संरचनाओं ने आकार ग्रहण करना शुरू किया, तब पारंपरिक और प्रगतिशील विचारधारा की दुनिया में हलचल होनी शुरू हुई तथा स्त्री, अश्वेत, सीमांत किसान, मजदूर, दलित और आदिवासी समाज के सामाजिक उत्पीड़न एवं उत्पीड़न के ऐतिहासिक संदर्भों को लेकर जमकर बहसें हुईं। यद्यपि वैश्विक और भारतीय प्रसंग में अश्वेत, स्त्री और दलित का सवाल कोई नया नहीं है। फ्रांस, अमरीका, ब्रिटेन, जापान, जर्मनी, भारत सहित तीसरी दुनिया के देशों में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जहां मूलभूत अधिकारों और सामाजिक अस्मिता के लिए लोगों ने व्यवस्था के उत्पीड़न के खिलाफ लंबा संघर्ष किया है।

दरअसल किसी भी देश के समकालीन साहित्य और इतिहास को पढ़ना और उससे गुज़रना उस समाज को जानना और समझना भी होता है। चाहे वह हिंदी साहित्य हो या अन्य वैश्विक साहित्य। कारण, साहित्य के नई प्रवृत्तियों के उदय के पीछे समकालीन समय के यथार्थ की ही भूमिका नहीं होती है, अपितु अतीत में हुए सामाजिक संवाद एवं संघर्ष भी इसमें निर्णयकारी भूमिका निभाते हैं। इसीलिए प्रसिद्ध इतिहासकार **मार्क ब्लाख** इतिहास को सिर्फ अतीत का ज्ञान मानने से परहेज करते थे। वे इतिहास को किसी खास काल में स्थित मानव समुदाय के विज्ञान के रूप में देखते थे। चाहे वह वर्तमान ही क्यों न हो! इस काल को वह लगातार बनी रहने और लगातार बदलती रहने वाली चीज भी कहते थे जिसके बीच के अंतर्विरोधों से ऐतिहासिक जांच-परख की विराट संभावनाएं जन्म लेती हैं।

सवाल है, इस पूरी प्रक्रिया में हिंदी साहित्य की नई प्रवृत्तियों पर हम किस तरह से और कैसे विचार करें? कारण, 1947 में देश के विभाजन के समानांतर एक तरफ जहां विभाजन एवं उसके बाद हुए सांप्रदायिक हिंसक दंगों ने हमारी जातीय एवं सांस्कृतिक अस्मिताओं को ध्वस्त किया, वहां दूसरी तरफ राष्ट्र के नव-निर्माण की प्रक्रियाओं ने एक नए साहित्य को जन्म भी दिया। समाज,

राजनीति, इतिहास, देश आदि पर नए सिरे से विचार-विमर्श की प्रक्रियाओं का दौर शुरू हुआ। नई कहानी, नई कविता, *सप्तक* के बहाने प्रयोगवादी कवियों, अकविता, अकहानी एवं गांव पर केंद्रित साहित्य के माध्यम से लेखकों ने मध्यवर्गीय और आम जनता की आशाओं, आकांक्षाओं, विचारों, एवं संघर्षों का महाकाव्य रचा। अज्ञेय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, फणीश्वर नाथ रेणु, वृंदावनलाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, शमशेर बहादुर सिंह, बाबा नार्गाजुन, त्रिलोचन, यशपाल, भगवती चरण वर्मा, अमृतलाल नागर, नंद दुलारे वाजपेयी, नगेंद्र, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, सुरेंद्र चौधरी, कुंवर नारायण, नरेश मेहता, अमृत राय, हरिवंश राय बच्चन, भैरव प्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, मुक्तिबोध, हरिशंकर परसाई, रवि प्रसाद सिंह, प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभाकर, द्विजेंद्र नाथ मिश्र निर्गुण, जगदीशचंद्र, धर्मवीर भारती, दुष्यंत कुमार, लक्ष्मीनारायण लाल, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, गोपाल सिंह नेपाली, भवानी प्रसाद मिश्र, विजयदेव नारायण साही, गिरिजा कुमार माथुर, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, राही मासूम रजा, श्रीलाल शुक्ल, भीष्म साहनी, नरेंद्र कोहली, विजयदान देथा, विजयदेव नारायण साही, केदार नाथ सिंह, मैनेजर पाण्डेय, सुमन राजे आदि लेखकों ने स्वाधीनता के बाद के साहित्य के बहाने अपने समय, परम्परा, समाज, राष्ट्र आदि को समझने का प्रयास किया। लेकिन 1956 में अंबेडकर द्वारा हिंदू धर्म छोड़कर अपने समर्थकों के साथ बौद्ध धर्म में प्रवेश करने की घटना एवं 1967 में नक्सलबाड़ी में हुए संघर्षों का गहरा असर भारतीय समाज और गांव की ज़िंदगी पर पड़ा। इसी प्रकार, 1975 के आपातकाल, 1990 के बाद मंडल कमीशन एवं आर्थिक उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की घटनाओं ने राष्ट्र की राजनीति और विकास की प्रक्रियाओं को गहराई के साथ प्रभावित किया।

सबसे बड़ी बात है कि इस दौर में वह नया मध्यवर्ग एवं ग्रामीण समाज उभरकर आया, जो वाकई नए भाव-बोध से परिपक्व था तथा उन पर जाने-अनजाने सातवें दशक में हुए आंदोलनों का प्रभाव। विकास की प्रक्रियाओं से उसके रिश्ते गहरे थे। यह भावबोध, भाषा और इस प्रकार के यथार्थ की चेतना 1947 के पूर्व की कहानियों में दिखाई नहीं पड़ती है। ख़ास बात यह है कि बाबा नार्गाजुन, शमशेर बहादुर सिंह, अज्ञेय, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, रघुवीर सहाय, मुक्तिबोध, धूमिल, राजकमल चौधरी जैसे कवि भी जिस सामाजिक एवं सांस्कृतिक बोध को अपनी कविताओं में लेकर आते हैं तथा उत्पीड़न की एक पूरी प्रक्रिया से संघर्षरत समाज को जोड़ते हैं, वह चेतना सन् 47 के बाद की ही देन है, यद्यपि उसे बनाने में सभ्यता एवं संस्कृति की विकासशील चेतना के साथ ही उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के खिलाफ हुए संघर्ष और क्रांतियों (जैस - फ्रेंच क्रांति, रूसी क्रांति आदि) की भी एक बड़ी भूमिका रही है तथा इस दौर के साहित्य के निर्माण को भी ये कारक प्रभावित करते हैं।

1967 के बाद हिंदी पट्टी में जिस तेजी के साथ स्त्रियों द्वारा **स्त्री लेखन** और 1990 के बाद **दलितों** द्वारा **दलित लेखन** की शुरुआत होती है, वह भी इसी प्रकार के निम्नवर्गीय समाज द्वारा रचित साहित्य के सामाजिक इतिहास पर बात करने का सूत्र प्रदान करता है। इसी प्रकार, हाल के वर्षों में मुख्यधारा के बाहर की जिंदगी व्यतीत कर रहा **आदिवासी समाज** भी अपनी सामाजिक अस्मिता के सवाल को लेकर **लेखन** के ज़रिये व्यवस्था से टकरा रहा है। कारण, इस दौर में जिस प्रकार दलित लेखकों में **जयप्रकाश कर्दम** *छप्पर* (1994) उपन्यास, **मोहनदास नैमिशराय** *अपने अपने पिंजरे* (1995) आत्मकथा, **ओमप्रकाश बाल्मीकि** *जूठन* (1997) आत्मकथा, **कौशल्या वैसंत्री** *दोहरा अभिशाप* (1999) आत्मकथात्मक उपन्यास, **एस.आर. हरनोट** *दारोश* और *अन्य कहानियां* (2001) कहानी, **माता प्रसाद गुप्त** *झोंपड़ी से राजभवन* (2000) आत्मकथा, **सूरजपाल चौहान** *तिरस्कृत* (2002) आत्मकथा, **धर्मवीर** *कबीर के आलोचक* (1997) आलोचना, **कंवल भारती** *दलित विमर्श की भूमिका* (2002) आलोचना, **रमाशंकर आर्य** *घुटन* (2005) आत्मकथा, **रत्नकुमार सांभरिया** *हुकम की दुग्गी* (2003) कहानी, **श्यौराज सिंह बेचैन** *मेरा बचपन मेरे कंधों पर* (2009) आत्मकथा, **सुशीला टाकमौरे** *टूटता वहम* (1997) कहानी आदि, स्त्री लेखिकाओं में कृष्णा **सोबती** *मित्रो मरजानी* (1967) उपन्यास, **मन्नू भंडारी** *आपका बंटी* (1971) उपन्यास, **मृदुला गर्ग** *चितकोबरा* (1979), *कठगुलाब* (1996) उपन्यास, **नासिरा शर्मा** *शाल्मली* (1987)उपन्यास, **मैत्रेयी पुष्पा** *चाक* (1997) उपन्यास, **प्रभा खेतान** *छिन्नमस्ता* (1993) उपन्यास, **चित्रा मुद्गल** *आवां* (2000) उपन्यास, आदि और आदिवासी लेखकों में **पीटर पौल** *एक्का जंगल के गीत* (1999) उपन्यास, **विलियम इ बायरेट्ट** *वीरानों के फूल* (उपन्यास), **हरिराम मीणा** *धूणी तपे तीर* (उपन्यास), **निर्मला पुतुल** *अपने घर की तलाश में* (2004) काव्य, **वासवी** *उलगुलान की औरतें* (विचार), **वाल्टर बेक** *धुंधली दिशाएं* आदि सामाजिक अस्मिता एवं सामाजिक समुदायों के इतिहास एवं संघर्ष से जुड़े साहित्य लेकर आते हैं, वह एक नए सौंदर्यशास्त्र की ही मांग नहीं करता है, अपितु वह समकालीन साहित्य के इतिहास चिंतन पर भी एक नए सिरे से विचार करने की चेतना विकसित करता है।

वस्तुत: समकालीन लेखकों ने आज की दुनिया के समाज का साहित्य रचा है जहां इतिहास भी है और संघर्ष भी। इसी रचनाकर्म में से समकालीन इतिहास चिंतन पर विचार करने एवं उसकी सैद्धांतिकी को समझने के कुछ सूत्र मिलेंगे तथा पुन: हम साहित्य के एक नए वृत्तांत की ओर अग्रसर होंगे।

cdevendra@gmail.com

लेखक मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिप्लोमाधारी हैं। उनकी विशेषज्ञता भारत की लोक परम्पराओं, संस्कृति, देशज ज्ञान और इतिहास के संदर्भों पर शोध आधारित लेखन, छायांकन और फिल्म निर्देशन में है। समय-समय पर आपकी छायाचित्र प्रदर्शनियां आयोजित होती रहती हैं।

भाषा शैली का विकास

संगीत वर्मा

हिंदी के आरंभ और उदय की अनेक प्रस्तावनाएं हैं। इन अर्थों में यदि देवनागरी के व्याकरण को वर्तमान युग में सायण परिभाषित करते हैं तो उसकी सरस शैली का प्रकाश भरतमुनि के रस वृत्तांत में है।

ब्रह्म सूत्र में महर्षि बादरायण की (सत् + चित् + आनन्द) की ब्रह्म की अनुभूति को तैत्तिरीय उपनिषद कहता है - 'रसो वै स:' (वह रस स्वरूप है)। यह आर्ष वचन उस बुद्धिजीवी विमर्श का ठीक उलट है, जो रसों के निषेध को ही ईश्वर से साक्षात्कार का मार्ग मान बैठता है। वास्तव में जो साधना की परम्परा के अनुभवी हैं, वह यह जानते हैं कि साधना के अनुभव में दीक्षित योगी अपनी प्रथम आराध्य 'सरस्वती' से स्वयं को रसों से भर देने की ही प्रणीति करता है। रसों की इसी समग्रता से वह महारास में प्रवेश करता है। दसवीं सदी में कश्मीरी शैवागम के विद्वान अभिनव गुप्त ने भरतमुनि की ग्रन्थावली के शेष बचे अंश को 'अभिनव भारती' में प्रकाशित किया। यही आगे चलकर साहित्य में यह रस सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुआ और इसी परम्परा का 'प्रतिभिज्ञा दर्शन' जयशंकर प्रसाद की लेखनी से हिंदी के पद्य के रूप में स्पन्दित हुआ। इसी परम्परा में भरतमुनि के 'रस' को संगीत और रंग के लिए नाट्यशास्त्र, अलंकार समुदाय की महामहोपाध्याय श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी कृत 'अलंकार मीमांसा', वक्रोक्ति सम्प्रदाय की कुंतक कृत 'वक्रोक्ति जीवितम्' और ध्वनि समुदाय की आनंदवर्द्धन कृत 'ध्वन्यालोक' प्रभावित हुईं जो भाषा में रस का आधार हैं। वहीं दसवीं और ग्यारहवीं सदी में ही मालवा नरेश परमार देव राजाभोज ने भरतमुनि के इसी रस को 'श्रृंगारप्रकाश' और 'सरस्वतीकंठाभरण' में कुछ इस तरह प्रवाहित किया कि उन्होंने रंग, अलंकार, वक्रोक्ति और ध्वनि को समग्रता में व्याकरण से जोड़ कर एक साहित्य की समग्र धारा का विस्तार रचा, जो आज तक काव्यशास्त्र का आधार है।

इस रस को ही भारत की जीवनदृष्टि का प्राण कहा जाता है, जो भारत की उत्सवपूर्ण संस्कृति का आधार है। रसों से समग्र इस संस्कृति के भाष्य को सारे भारतवर्ष में प्रवाहित करने के लिए ही

समृद्ध लोकभाषाओं और संस्कृत का आधार लेकर उन्नीसवीं सदी में हिंदी का जन्म हुआ। यह रस, जो भारतीय संस्कृति में सदा प्रवाहित थे, हिंदी का आविर्भाव होते ही लोकांचलों की सीमाओं से परे बह चले। अपने उद्गम के प्रथम सोपान में ही हिंदी ने श्रेष्ठ रचनाओं की झड़ी लगा दी। 'प्रतिभिज्ञा दर्शन' के रसों का प्रवाह जयशंकर प्रसाद की लेखनी में हिंदी के महाकाव्य 'कामायनी' के रूप में प्रवाहित हुआ, तो निराला की कलम से शाक्तागम का धैर्य 'राम की शक्ति-पूजा' के रूप में प्रकट हुआ। उपमाओं, अलंकारों, उक्तियों और उपमाओं से सजी और लोक तथा ज्ञान की धाराओं से समृद्ध हिंदी में चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बालकृष्ण भट्ट, सुमित्रानंदन पंत, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, मैथलीशरण गुप्त, रामधारीसिंह दिनकर, भवानी प्रसाद मिश्र और फणीश्वरनाथ रेणु से लेकर महादेवी वर्मा तक ने सृजन में इस रस के प्रवाह को गद्य और पद्य, दोनों में बनाए रखा। मुंशी प्रेमचंद ने अपनी लेखनी में यह रस लोक की पृष्ठभूमि से भरा।

परंतु अपने सौ वर्ष पूर्ण करते-करते हिंदी को एक वैचारिक शिथिलता ने घेर लिया। सत्तर के दशक में हिंदी के मूल लोक और ज्ञान के आधार को सरका कर एक अपरिचित द्वन्द्वात्मक विमर्श इसके केन्द्र में लाया गया, जो संस्कृति की सम्बोधि करने की जगह वर्ग-संघर्ष की लड़ाई में भाषा की भूमिका तलाशता रहा और जिसमें उसके पारम्परिक रस और शैली की सर्जना नगण्य थी। इस वैचारिकता के प्रतिरोध में हिंदी में आया दूसरा विमर्श भी यूरोप के सांस्कृतिक विमर्श का भारतीय उत्तराधिकारी जैसा था और दुर्भाग्य से इसमें रसपूर्ण सर्जना संभव नहीं थी। इन दोनों परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप आज के युग में हमारी हिंदी की सर्जना नीरस, निरालंकृत और सपाट जान पड़ती है, जिसका श्रोता कहीं खो गया है और जो भारत की संस्कृति के समग्र तथा सनातन ज्ञान की सम्बोधि होने की भूमिका में ठिठक सी गई है।

आज जब हिंदी विज्ञान और तकनीक, सूचना तकनीक, प्रशासन और विदेश नीति, विधि और पत्रकारिता जैसे आधुनिक संदर्भों में प्रवेश कर रही है तो यह अत्यंत आवश्यक है कि उसके मूल शब्द विन्यास, उसकी पारिभाषिकता और उसकी रसपूर्ण भाषा शैली को पुन: नियोजित किया जाए जिससे वह इन क्षेत्रों में भारत की सरस और वास्तविक सम्बोधि बन सके।

हिंदी की आज की सबसे बृहद् चुनौती है उसके सम्बोधि क्षेत्र का विस्तार, जो अब राष्ट्र की सीमाएं लांघ वैश्विक हो चला है। एक ओर विदेश में रहने वाले भारतीय हैं, जिनकी भावदृष्टि भारत पर है, दूसरी ओर भारत में रहने वाला बृहद् भारतीय समाज है, जिसकी दृष्टि कम से कम भाषाई संदर्भों में, विदेश पर है। नदी के इन दो तटों के बीच सम्बोधि के सेतु पर रस प्रवाहित करना ही हिंदी की मुख्य चुनौती है। आज की सामाजिक रचना में सर्वाधिक सम्बोधि पत्रकारिता की है, जिसके माध्यम से देश और विदेश का समाज जुड़ा हुआ है। इसलिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि हिंदी पत्रकारिता भाषा में अलंकार, प्रत्यय, उक्ति और उपमा के सौंदर्य का निवेश कर उसे रसपूर्ण बनाया जाए।

पत्रकारिता में गद्य रूप में रस और शैली का महत्व इस बात से पता चलता है कि हिंदी की पहली साप्ताहिक समाचार पत्रिका 'दिनमान' के सम्पादक और सह सम्पादक अज्ञेय और रघुवीर सहाय, दोनों ही कवि थे। बाद के वर्षों में राहुल बारपुते, राजेन्द्र माथुर और प्रभाष जोशी जैसे ख्यातिलब्ध सम्पादकों ने अभिधा, लक्षणा और व्यंजना, तीनों की शब्द शक्ति से हिंदी की पत्रकारिता के लेखन में इस रसपूर्ण शैली को बनाए रखने का अथक प्रयास किया। परंतु पत्रकारिता में नई तकनीक, वैश्वीकरण और बाज़ार के बढ़ते प्रभाव ने भाषा से अधिक व्यावसायिकता को बढ़ावा दिया, जिसके कारण हिंदी पत्रकारिता ने अपना प्रसार बढ़ाने की होड़ में हज़ारों वर्षों की ज्ञान साधना से संचित हिंदी के रस सौंदर्य का आश्रय लेने के स्थान पर अंग्रेज़ी शब्दावली का आश्रय ले लिया। पच्चीस वर्षों से भी कम समय लगा और हिंदी की पत्रकारिता अंग्रेज़ी की बंधक हो गई। इसका व्यापक प्रभाव जनमानस पर दिखा और अंग्रेज़ी के शब्दों से बृहद् सौंदर्यविहीन और सपाट हिंदी ही बृहद् सम्प्रेषण का माध्यम बन गई। हिंदी का यह स्वरूप कई तरह की चुनौतियां प्रस्तुत करता है।

vermasangeet@rediffmail.com

हिंदी, भारत माँ की बिंदी

मृदुला सिन्हा

हिंदी से सजतीं भारत की भाषाएं,
सब मिल गाएं भारत की गाथाएं।
विश्व में फैले इसके गान
''वसुधैव कुटुम्बकम्' इसकी शान।

हिंदी ही अपनाएं हम
भारत का भाल उठाएं हम
विश्व भगिनी कहलाए हिंदी
भारत का मान बढ़ाए हिंदी
विश्व भाषाओं को गले लगाना
सारी बहना, मिलकर बहना
मां का गहना बनी सब रहना
जय-जय हिंदी, जय भारत मां
विश्व पटल पर शोभित गान।

सात समन्दर मसि करै, लेखनी सब वनराइ,
धरती सब कागद करै, हिंदी गुण लिखा न जाइ।

आओ सब मिल गाएं हिंदी गान,
विश्व में गूंजे हिंदी सम्मान।

कई पुरस्कारों एवं सम्मानों से समादृत डॉ. रैणा वर्ष 1999 से लेकर 2001 तक भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला में अध्येता रहे हैं जहां उन्होंने भारतीय भाषाओं से हिंदी में अनुवाद की समस्याओं पर कार्य किया।

भाषाई सद्भावना की संतान

डॉ. शिबन कृष्ण रैणा

आज जब वैश्वीकरण की अवधारणा उत्तरोत्तर बलवती होती जा रही है, सूचना प्रौद्योगिकी ने व्यक्ति के दैनन्दिन जीवन को एक-दूसरे के निकट लाकर खड़ा कर दिया है। क्षितिजों तक फैली दूरियां सिमट गई हैं। ऐसे में अनुवाद और अनुवादक की महिमा और उपयोगिता की तरफ हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है। अनुवाद वह साधन है जो हमें भौगोलिक सीमाओं के उस पार ले जाकर दूसरी दुनिया के ज्ञान-विज्ञान, कला-संस्कृति, साहित्य-शिक्षा आदि की विलक्षणताओं से परिचित कराता है। दूसरे शब्दों में दुनिया में ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में हो रही प्रगति या अन्य गतिविधियों का परिचय हमें अनुवाद के माध्यम से ही मिल पाता है। दरअसल, यह अनुवादक ही है जो दो संस्कृतियों, राज्यों, देशों एवं विचारधाराओं के बीच 'सेतु' का काम करता है और तो और यह अनुवादक ही है जो भौगोलिक सीमाओं को लांघकर भाषाओं के बीच सौहार्द, सौमनस्य एवं सद्भाव को स्थापित करता है तथा हमें एकात्मकता एवं वैश्वीकरण की भावनाओं से ओतप्रोत कर देता है। इस दृष्टि से यदि अनुवादक को समन्वयक, मध्यस्थ, संवाहक, भाषायी-दूत आदि की संज्ञा दी जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी। कविवर बच्चन जी, जो स्वयं एक कुशल अनुवादक रहे हैं, उन्होंने ठीक ही कहा है कि 'अनुवाद दो भाषाओं के बीच मैत्री का पुल है।' वे कहते हैं 'अनुवाद एक भाषा का दूसरी भाषा की ओर बढ़ाया गया मैत्री का हाथ है। वह जितनी बार और जितनी दिशाओं में बढ़ाया जा सके, बढ़ाया जाना चाहिए।

आज देश के सामने यह प्रश्न चुनौती बनकर खड़ा है कि बहुभाषाओं वाले इस देश की साहित्यिक-सांस्कृतिक धरोहर को कैसे अक्षुण्ण रखा जाए? देशवासी एक-दूसरे के निकट आकर आपसी मेल-जोल और भाई-चारे की भावनाओं को कैसे आत्मसात करें? वर्तमान परिस्थितियों में यह और भी आवश्यक हो जाता है कि देशवासियों के बीच सामंजस्य और सद्भाव की भावनाएं विकसित हों ताकि प्रत्यक्ष विविधता के होते हुए भी हम अपनी सांस्कृतिक समानता एवं सौहार्दता के दर्शन कर अनेकता में एकता की संकल्पना को मूर्त रूप प्रदान कर सकें। भाषायी सद्भावना इस दिशा में एक महती भूमिका अदा कर सकती है। सभी भारतीय भाषाओं के बीच सद्भावना का

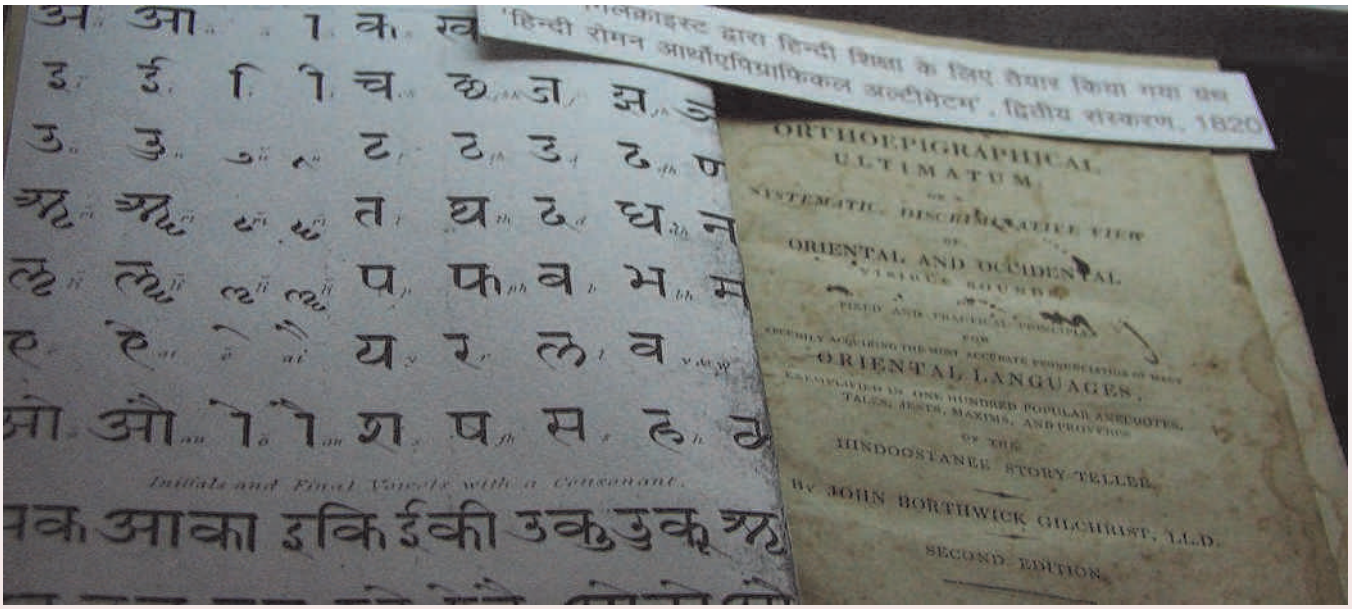

माहौल बने, वे एक-दूसरे से भावनात्मक स्तर पर जुड़ें और उनमें पारस्परिक आदान-प्रदान का संकल्प दृढ़तर हो, यही भारत की भाषायी सद्भावना का मूलमंत्र है। इस पुनीत एवं महान कार्य के लिए सम्पर्क भाषा हिन्दी के विशेष योगदान को हमें स्वीकार करना होगा। यही वह भाषा है जो सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में जोड़कर राष्ट्रीय एकता के पवित्र लक्ष्य को साकार कर सकती है। स्वामी दयानन्द ने ठीक ही कहा था, 'हिन्दी के द्वारा ही सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।' यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हिन्दी को ही भाषायी सद्भावना की संवाहिका क्यों स्वीकार किया जाए? कारण स्पष्ट है, हिन्दी आज एक बहुत बड़े भू-भाग की भाषा है। इसके बोलने वालों की संख्या अन्य भारतीय भाषा-भाषियों की तुलना में सर्वाधिक है। इसके अलावा अभिव्यक्ति, रचना-कौशल, सरलता-सुगमता एवं लोकप्रियता की दृष्टि से भी वह एक प्रभावशाली भाषा के रूप में उभर चुकी है और उत्तरोत्तर उसका प्रचार-प्रसार बढ़ता जा रहा है। अतः देश की भाषायी सद्भावना एवं एकात्मकता के लिए हिन्दी भाषा के बहुमूल्य महत्व को हमें स्वीकार करना होगा।

भाषायी सद्भावना की जब हम बात करते हैं तो 'अनुवाद' की ओर हमारा ध्यान जाना स्वाभाविक है। दरअसल, अनुवाद वह साधन है जो 'भाषायी सद्भावना' की अवधारणा को न केवल पुष्ट करता है, अपितु भारतीय और अंतर्देशीय साहित्य एवं अस्मिता को गति प्रदान करने वाला एक सशक्त और आधारभूत माध्यम भी है। यह एक ऐसा अभिनन्दनीय कार्य है जो भारतीय साहित्य के अलावा विश्व साहित्य की अवधारणा से हमें परिचित कराता है तथा हमें सच्चे अर्थों में भारतीय होने के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय भी बनाता है। यदि विश्व के ख्यातनामा रचनाकारों शेक्सपियर मिल्टन, पोप, गोर्की, शेख सादी, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, काजी नज़रुल इस्लाम, अलामा इकबाल, सुब्रह्मण्य भारती, महाश्वेता देवी, उमाशंकर जोशी, विजयदान देथा, कुमारन आशान, वल्लत्तोल, ललद्यद, हब्बाखातून, सीताकान्त महापात्र आदि विश्व और भारतीय भाषाओं के इन यशस्वी लेखकों की रचनाएं अनुवाद के ज़रिए हम तक नहीं पहुंचती तो भारतीय साहित्य सम्बन्धी हमारा ज्ञान कितना सीमित, कितना क्षुद्र होता, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

पूर्व में कहा जा चुका है कि विविधताओं से युक्त भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश में एकात्मकता की परम आवश्यकता है और अनुवाद साहित्यिक धरातल पर इस आवश्यकता की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम है। अनुवाद वह सेतु है जो साहित्यिक आदान-प्रदान, भावनात्मक एकात्मकता, भाषा समृद्धि, तुलनात्मक अध्ययन तथा राष्ट्रीय/अंतर्राष्ट्रीय सौमनस्य की संकल्पनाओं को साकार कर हमें बृहत्तर साहित्य-जगत से जोड़ता है। अनुवाद-विज्ञानी डॉ. जी. गोपीनाथन कहते हैं कि भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश में अनुवाद की उपादेयता स्वयंसिद्ध है। भारत के विभिन्न प्रदेशों के साहित्य में निहित मूलभूत एकता के स्वरूप को निखारने (दर्शन करने) के लिए अनुवाद ही एकमात्र अचूक साधन है। इस तरह अनुवाद द्वारा मानव की एकता को रोकने वाली भौगोलिक और भाषायी दीवारों को ढहाकर विश्वमैत्री को और भी सुदृढ़ बना सकते हैं।

skraina123@gmail.com

लेखिका उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान से संयुक्त निदेशक के पद से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात सतत लेखन और समाज सेवा के कार्यों से सम्बद्ध हैं। कथा साहित्य के अतिरिक्त नवसाक्षरोपयोगी साहित्य को उन्होंने अपनी पुस्तकों से समृद्ध किया है।

रागात्मक अनुभवों की साझेदारी

डॉ. विद्याविन्दु सिंह

आज के सिमटते हुए विश्व में सूचनात्मक जानकारी का सम्प्रेषण एक स्थान से दूसरे स्थान तक, एक भाषा से दूसरी भाषा में तो आवश्यक है ही उसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि एक भाषायी और सांस्कृतिक परिवेश में मनुष्य का जो भी रागात्मक अनुभव है उसकी साझेदारी दूसरे परिवेश का समाज भी करे।

बिना इस रागात्मक सम्प्रेषण के विश्व को एक नीड़ बनाने की कल्पना पूरी नहीं हो सकती। इसके लिए अनुवाद का महत्व जितना आज है उतना पहले कभी नहीं रहा होगा। पहले अनुवाद की विवशता सांस्कृतिक दृष्टि से कम विकसित या कम सम्पन्न देश या भाषा को होती थी। आज सम्पन्न से सम्पन्न देश और सम्पन्न से सम्पन्न भाषा भी विवश है कि वह उन लोगों के बारे में जानें, जो कम सम्पन्न हैं। जो उनके बारे में केवल सतही तौर पर नहीं, उनकी पूरी रागात्मक सक्रियता की गहराई में जाकर उन्हें जानें ताकि ऐसे देशों के साथ संवाद स्थापित कर सकें। आज कोई भी शक्ति संवादहीनता की स्थिति में या एकदम विच्छिन्नता की स्थिति में प्रभावशाली नहीं हो सकती।

विकसित से विकसित साहित्य को भी यह लगता है कि आज सभ्यता के विकास में पिछड़े हुए व्यक्ति की सहज संवेदना उनके अस्तित्व के लिए एकाएक अपेक्षणीय हो गई है क्योंकि वह परिष्कार की प्रक्रिया में अपनी सहजता खो चुके हैं। इसके साथ ही वे गति की तीव्रता में मनुष्य के गन्तव्य का पता भूल चुके हैं। मेरी समझ में आज की परिस्थिति एक साहित्य से दूसरे साहित्य में अनुवाद के लिए बड़ी अनुकूल है।

परन्तु परिस्थिति जितनी अनुकूल है, अनुवाद का कार्य उतना ही कठिन है। एक इतावली कहावत है कि अनुवाद मात्र विश्वासघात है। एक भाषा के भाव, जब दूसरी भाषा को समर्पित किए जाते हैं तो कहीं न कहीं मूलभाव के प्रति आदमी झूठा ज़रूर हो जाता है। शायद भाषाएं अपने पास कुछ ऐसे रहस्य रखती हैं जो दूसरों को नहीं सौपना चाहतीं।

भारतीय भाषाओं ने संस्कृत से अनुवाद की अपरिहार्यता का अनुभव किया और अनुवाद के

अच्छे परिणाम आए। अनुवाद के माध्यम से संस्कृत साहित्य से पूरा भारतीय समाज परिचित हुआ। धर्म ग्रन्थों वेद, उपनिषद, पुराण आदि के अनुवाद से ही यह ज्ञान समाज के हर वर्ग तक पहुंचा। इसी प्रकार पाश्चात्य देशों में 'लैटिन' से अंग्रेज़ी में और फिर यूरोप की अन्य भाषाओं में यह परम्परा विकसित हुई। श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद आज आवश्यक इसलिए भी है कि सम्पूर्ण विश्व संस्कृति के मर्म को समझने के लिए सभी भारतीय एवं विदेशी भाषाओं का साहित्य सामने होना चाहिए। इन भाषाओं में कितना परस्पर ग्रहण किया गया है, कितनी उनमें समानता है, इसके अध्ययन के लिए भी अनुवाद एक माध्यम बन सकता है। यह तुलनात्मक दृष्टि भाषा, भाव और अभिव्यक्ति तीनों ही दृष्टियों से अध्ययन करने पर ही मिल सकती है, किन्तु साहित्य का अनुवाद मात्र अनुवाद नहीं होता यह संस्कृति की समझ और गहन संवेदना की अनुवादक में अपेक्षा रखता है। अनुवादक को, स्वयं को साधारणीकरण की अवस्था तक पहुंचाना आवश्यक है, तब ही वह सार्थक और साभिप्राय अनुवाद कर सकता है।

साहित्य के अनुवाद में दो कठिनाइयां विशेष रूप से होती हैं। पहली कठिनाई तो यह कि साहित्य की भाषा एक गढ़ी हुई भाषा होती है, उस भाषा को यदि समानान्तर गढ़ी हुई भाषा में रूपान्तरित न किया जाए तो संदेश खो जाता है, क्योंकि संदेश और संदेश की माध्यम भाषा दोनों एक दूसरे में ओत-प्रोत रहते हैं।

अभिप्राय यह है कि साहित्य के अनुवाद में संस्कृति के स्वभाव को पहचानने और उस स्वभाव के अनुकूल प्रभावकारी मुहावरे को चुन सकना अत्यंत आवश्यक है।

कभी-कभी लोग पाठ 'टिप्पणी' या परिशिष्ट में दी गई सूची से काम निकालते हैं पर यदि रूपान्तरित साहित्य का आस्वादन साहित्य रूप में होना है तो पाठ टिप्पणी या शब्द-सूची देखना विघ्न बन सकता है। अत: अनुवादक को इस तथ्य को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। रूपान्तर करने वाले को विवश होकर कुछ जोखिम उठाने पड़ते हैं। कभी-कभी वह पूरा वातावरण ही विस्थापित कर देता है अर्थात यूरोप के वातावरण की कहानी को एशिया के वातावरण की कहानी के रूप में प्रस्तुत कर देता है। कभी-कभी वह कुछ चीजें जोड़ देता है, कुछ चीज़ें छोड़ देता है। भले ही उसके स्थान पर उससे कहीं अधिक हृदयस्पर्शी अर्थ आ जाए, इन दोनों प्रक्रियाओं में यह जोखिम है कि मूल अर्थ बिल्कुल ही तिरोहित न हो जाए। अच्छे रूपान्तरकार को यह जोखिम उठाते समय बहुत संतुलन और मनोयोग से काम लेना पड़ता है।

एक ओर तो उसे एक सक्रिय माध्यम की भूमिका अदा करनी होती है, दूसरी ओर एक जांचने वाले समीक्षक की। वह एक ओर तो सेतु बनाता है, दूसरी ओर वह दोनों किनारों से सेतु को जांचता भी रहता है कि यह सेतु ठीक बना है कि नहीं। स्पष्ट है कि साहित्य का अनुवाद एक चुनौती भरा कार्य है। जब तक ज्ञान की प्यास है, विविध भाषाओं के साहित्य के रसास्वादन का भाव है, विश्व संस्कृति से जुड़ने की आकांक्षा है, ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षितिज छूने का चाव है, अनुवाद की अपरिहार्यता बनी रहेगी। बस इसके लिए अनुवादक को अपने हृदय और बुद्धि दोनों के आंतरिक उजाले को उपयोग में लाना होगा तभी तो उसके मानवीय श्रम से एक रागात्मक साझेदारी करते हुए भाव अंदर से दिपदिपाएंगे।

45srivatsa@gmail.com

बहने लगी पुरवाई रे

केशरी नाथ त्रिपाठी

उमड़-घुमड़ बादल गरजे
बिजुरी चमके, मेघा बरसे
नाचे मयूर, चिड़ियां चहकें
धरती सजी, सपने महके
हरियारे पात, पुलकित है गात
सूरज ढके, आया प्रभात
कभी छिपे, कभी दिखे
चन्दा करे रुसवाई रे।
बहने लगी पुरवाई रे।

मीठी लगे, कोयल की कूक
नेहा सने, उठती है हूक
कजरा लगे, मेहंदी रचे
पगवा रंगे, बिंदिया सजे
वेणी गुंथे बेला के फूल
मुग्धा गयी सुध-बुध भूल
आखर न एक लाया है काग
मितवा की याद पुन आयी रे।
बहने लगी पुरवाई रे।

गूंजे कहीं आल्हा औ' ढोल
छाये कहीं कजरी के बोल
झूले टंगे, पेंगें बढ़ीं
गीतों की है लगती झड़ी
नयनों दिखे राधा की प्रीत
अधरों बसे मीरा के गीत
रचने लगा नया संसार
ऋतु ने है ली अंगड़ाई रे।
बहने लगी पुरवाई रे।

जहाजी चालीसा

प्रेम जनमेजय

दोहा

शीश नवा विनती सदा, हम करते कर जोर।
पुरखों की हम सभी पर, रहे कृपा हर ओर॥

रवि की किरनों से खिले, प्रेम हृदय के भाव।
जन सागर में खे रहे, चालीसा की नाव॥

1

पावन पुन्य स्मरन कीन्हा,
पुरखावली ध्यान हम दीन्हा।

2

गिरमिटिया जहाज से आवा,
एक जहाजी कुटुम कहावा।

3

सात समुन्दर पार उतारा,
चारों तरफ घना अंधियारा।

4

छूट गया सब साथ तिहारा
बंधु बांधव मुलुक तिहारा।

5

दीपक सम तुम प्रान जलावा
आंधी बरखा सब सह पावा।

6

कुली से तुमहिं कुलीन बनावा
सीस उठा जीना सिखलावा।

7

दिवा रात्रि तुम स्वेद बहावा,
तब हम सब मीठा फल पावा।

8

मान-सरोवर वास तिहारा,
कमल समान सुमंगल प्यारा।

9

आजा आजी नाना नानी,
राम कथा सम तुमरि कहानी।

10

काला पानी बनवास पावा,
निडर राम सम धरम निभावा।

11

देस पराया, भाख अजानी,
इकलेपन का खारा पानी।

12

हर कठिनाई पर जय पावा,
स्वतंत्रता का दीप जलावा।

13

चीनी खेत स्वर्न बरसावा,
मेहनत का मोती चमकावा।

14

जगत गुरू भारत के दूता,
लाए संस्कृति धरम सपूता।

15

सगरे सुत सागर बिच आवा,
गंगा की मधु धारा लावा।

16

वसुधा कुटुम, राह दिखलाई,
संग रहो सब मिलजुल भाई।

17

मन अमीर, चिथरा पहनावा,
अपनी मेहनत का तुम खावा।

18

वज्र दधीची सम कर माटी,
गांधी बाबा की तुम लाठी।

19
तुम ही माता - पिता हमारे,
तुम ही गुरु, औ ब्रह्म हमारे।

20
मारीशस त्रिनिदाद गयाना,
मलेशिया जमैका सुरिनामा।

21
अफरीका और फिजी सुहावा
गिरमिटिया मंडल कहलावा।

22
तुमरी कृपा जनम हम पावा,
इस माटी के लाल कहावा।

23
तुमने हमको सीख सिखाई,
परहित करो सदा सब भाई।

24
जहजी रीति सदा चलि आई,
प्रान जाएं पर वचन न जाई।

25
तुलसी बाबा संत हमारे,
सदा जहजियन के रखवारे।

26
चालीसा औ श्री रामायण,
हम करते जीवन पारायण।

27
महावीर का बल पहचाना,
हर संकट से लड़ना जाना।

28
राम नाम तृण लिया सहारा,
सिय सम रावण को ललकारा।

29
शिव सम पिया जहर तुम सारा
ये धरती परसाद तुम्हारा।

30
वेद पुरान राह बतलावा
ऋषियों की संतान बनावा।

31
संस्कृति छटा बिबिध बिखरावा,
इंद्रधनुष बहुरंग बनावा।

32
जगमग दीप दीवाली गावे,
हर त्योहार रंग बिखरावे।

33
सब जन चट्नी चौटल गावें,
तासा ढोल मंजीर बजावें।

34
दाल-भात भाजी मन भावा,
संग साथ सब मिल करि खावा।

35
हर इक जहाजी रूप तिहारा,
श्रम तुम्हरा परताप तिहारा।

36
हमको मिली धरोहर प्यारी,
अनुकंपा बस रहे तिहारी।

37
जै जै हमरे पुरखे प्यारे,
तुम ताक़त तुम प्रान हमारे।

38
हृदय अश्रु तव चरन पखारे
पुरखो तुम्हें प्रणाम हमारे।

39
धरम संस्कृति के रखवारे,
सदा रहो तुम साथ हमारे।

40
प्रेम सहित चालीसा गाओ,
जनम जनम का कर्ज चुकाओ।

दोहा

उस पथ पर जाएं सदा, जो तुम दिया दिखाय।
एकोहं बहु स्याम का, मार्ग दिया बतलाय॥

सभी जहाजी आज मिल, मन में लें ये ठान।
पुरखों की सब धरोहर, है सम्पत्ति समान॥

premjanmejai@gmail.com

लेखक वरिष्ठ समीक्षक, सम्पादक, प्रेमचन्द विशेषज्ञ, भारतवंशी देशों के साहित्य के गहन अध्येता एवं दिल्ली विश्वविद्यालय से अवकाशप्राप्त आचार्य हैं। उन्हें देश और विदेश के अनेक सम्मानों एवं पुरस्कारों से नवाज़ा जा चुका है।

अभिमन्यु अनत : मेरे दोस्त

डॉ. कमल किशोर गोयनका

अभिमन्यु अनत से मेरी पहली भेंट मॉरीशस की धरती पर हुई और इस भेंट के कारण बने प्रेमचंद। प्रेमचंद की जन्म-शताब्दी पर 'प्रेमचंद जन्म-शताब्दी राष्ट्रीय समिति' बनाई थी। जैनेन्द्र कुमार इसके अध्यक्ष थे और मैं इसका महामंत्री था, इंदिरा गांधी इस समिति की मुख्य संरक्षक थीं। इस राष्ट्रीय समिति ने देश-विदेश में अनेक कार्यक्रम आयोजित किए और मॉरीशस में भी 30 अगस्त से 3 सितंबर, 1980 को हिंदी प्रचारिणी सभा, मोंतांई लोंग ने प्रेमचंद शताब्दी समारोह आयोजित किया। भारत सरकार ने जैनेन्द्र जी तथा मुझे इस कार्यक्रम में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए भेजा। उस समय के प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने प्रेमचंद समारोह का उद्घाटन किया। दूसरे दिन महात्मा गांधी संस्थान (मोका) ने मुझे प्रेमचंद पर व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया तो वहां अभिमन्यु अनत से मेरी पहली भेंट हुई और फिर उनके निमंत्रण पर घर जाना हुआ और उनकी मां के दर्शन का सौभाग्य मिला। मैंने उनके चरण छुए और उन्होंने मेरे माथे पर चुम्बन करके आशीर्वाद दिया। मां के इस ममतापूर्ण स्पर्श ने मुझे मॉरीशस और वहां के हिंदी साहित्य के प्रति समर्पित बना दिया। मॉरीशस का इंद्रधनुषीय सौंदर्य, हरियाली ओढ़े धरती, आकाश की गहरी नीलिमा को अंतस में समाए समुद्र, कल-कल बहते झरने तथा गन्ने की गंध से परिपूर्ण वायुमंडल मन को वैसे ही वशीभूत कर लेता है और कोई भी सहृदय मॉरीशस के लिए समर्पित हो सकता है। अभिमन्यु अनत की औपन्यासिक सफलता का जादू 'लाल पसीना' (1977) उपन्यास के कारण मन में पहले से ही समाया हुआ था।

उस पहली भेंट तथा मॉरीशस की इस पहली यात्रा से लौटते समय मैंने यह निश्चय किया कि मॉरीशस के हिंदी साहित्य के लिए अवश्य कुछ करना है। उस समय तक भारत में अभिमन्यु अनत एक ख्यात लेखक बन चुके थे, परन्तु हिंदी के प्रवासी साहित्य के मूल्यांकन की कोई परम्परा शुरू नहीं हुई थी। मैंने भारत लौटकर अपना कार्य अभिमन्यु अनत से आरम्भ किया, क्योंकि वे भारत के लिए सुपरिचित थे तथा वे ही एकमात्र ऐसे हिंदी लेखक थे जिन्होंने प्रवासी भारतीय के रूप में सर्वाधिक साहित्य लिखा था तथा जो भारत और मॉरीशस की आत्मा को जोड़ने वाले साहित्य-सेतु थे। भारत के पाठकों का सम्बन्ध अभिमन्यु के साहित्य से 'दो शरीर एक आत्मा' वाला हो गया था, क्योंकि इतिहास की यातनाएं और मुक्ति की आकांक्षा एवं संघर्ष लगभग एक-सा ही था। प्रेमचंद और अभिमन्यु में यही समानता है कि दोनों ही धरती के लेखक हैं तथा वे अपने देश की

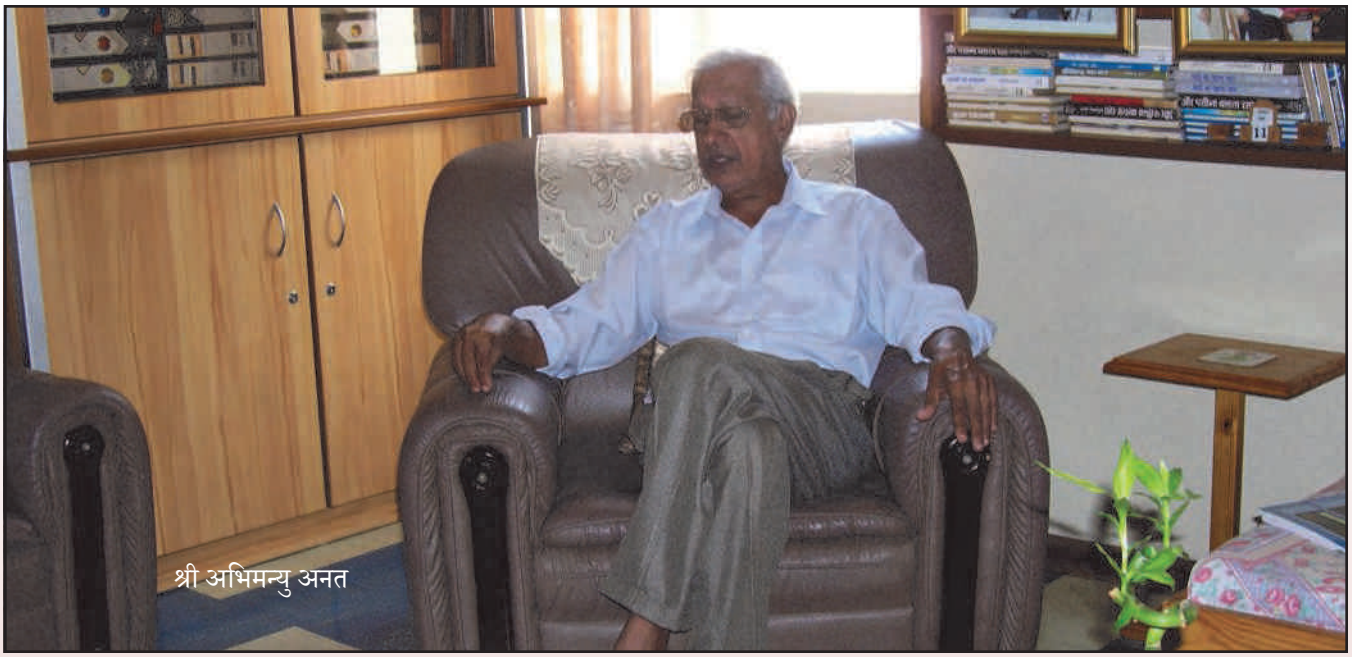
श्री अभिमन्यु अनत

जन-पीड़ा और जन-मुक्ति के लेखक हैं। इस कारण वे 'मॉरीशस के प्रेमचंद' हैं।

मैंने पहला कार्य, अभिमन्यु अनत से लम्बी बातचीत करके किया, जो अक्टूबर, 1981 से सितम्बर, 1983 तक पत्र-व्यवहार से पूरा हुआ। यह बातचीत सन् 1985 में 'अभिमन्यु अनत : एक बातचीत' शीर्षक से प्रकाशित हुई। यह अभिमन्यु के व्यक्तित्व, रचना -संसार तथा चिन्तन को समझने का पहला लघु प्रयास था। इस पुस्तक से पहली बार मॉरीशस के भारतवंशियों के गूंगे इतिहास, उनकी यातना एवं संघर्ष तथा वहां की सांस्कृतिक परिस्थितियों को जानने का अवसर मिला और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि मेरे एक प्रश्न के उत्तर में अभिमन्यु ने 'लाल पसीना' उपन्यास की दूसरी कड़ी के रूप में 'गांधी जी बोले थे' (1984) उपन्यास की रचना की। मैंने अनत से प्रश्न किया था कि 'लाल पसीने' के कथा-काल में महात्मा गांधी मॉरीशस गए थे और उन्होंने भारत से गए गिरमिटिया मजदूरों का उद्बोधन किया था, तो आपने उनकी इस यात्रा का उपन्यास में उपयोग क्यों नहीं किया? अनत ने इस प्रश्न के उत्तर के रूप में 'गांधी जी बोले थे' उपन्यास की रचना की और जब सन् 1984 में वह छपा और उसकी प्रति मुझे मिली तो अनत ने लिखा था— 'कमल किशोर गोयनका को, जिनके एक प्रश्न का यह उपन्यास उत्तर है।' इससे अभिमन्यु के व्यक्तित्व की झलक मिलती है कि वे प्रश्नों को कितनी गम्भीरता से लेते हैं। वे कहते भी हैं कि वे स्वयं प्रश्न करने वाले लेखक हैं।

इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद अभिमन्यु अनत से मेरी निकटता और घनिष्ठता बढ़ती गई। इन चार-पांच वर्षों (1980-85) में हमारी दोस्ती की बुनियाद पड़ ही नहीं गई थी, बल्कि उस पर इमारत की रचना भी होने लगी थी। मेरे से पूर्व जैनेन्द्र, धर्मवीर भारती, हजारी प्रसाद द्विवेदी, शिवमंगल सिंह 'सुमन', राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, राजेन्द्र अवस्थी, विनय आदि मॉरीशस की यात्रा कर चुके थे तथा अभिमन्यु के इनके साथ साहित्यिक सम्बन्ध बन चुके थे, परन्तु पारिवारिक एवं आत्मीय रिश्तों का विस्तार मेरे तथा मेरे परिवार के साथ ही हुआ। मेरी पत्नी ने उन्हें राखी भेजी और इस प्रकार हम अटूट सम्बन्ध में बंध गए। मैं अब दिल्ली में उनके साहित्यिक हितों, प्रकाशन आदि को देखने लगा तथा उनके प्रकाशकों से सम्बन्ध, रचनाओं के प्रकाशन, रॉयल्टी आदि के भुगतान में मेरा सक्रिय सहयोग रहता। अभिमन्यु के पास राजकमल प्रकाशन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस जैसे बड़े प्रकाशक थे, परन्तु मेरे कहने पर उन्होंने प्रभात प्रकाशन को अपनी 'आत्म-विज्ञापन' (1984) और 'मार्क ट्वेन का स्वर्ग' (1985) तथा किताब घर को 'रोक दो कान्हा' (1986) पुस्तकें दीं। इसप्रकार, वे नए प्रकाशकों से जुड़े और उनके साहित्य-संसार का विस्तार हुआ। अभिमन्यु अब 'लाल पसीना' के ही लेखक नहीं थे, वे अब कवि, कहानीकार, नाटककार आदि के रूप में भारतीय पाठकों के प्रिय लेखक बन चुके थे।

इस बीच बिशन टंडन से मेरा सम्पर्क हुआ और उन्होंने प्रेमचंद पर मेरी दो पुस्तकें भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित कीं, लेकिन वे बिड़ला फाउंडेशन के निदेशक बने तो उन्होंने विदेशी विद्वानों, लेखकों आदि की एक व्याख्यानमाला आरम्भ की तो इस सम्बन्ध में मुझसे चर्चा की। मैंने अभिमन्यु अनत का प्रस्ताव किया और टंडन जी ने 5-6 दिसम्बर, 1994 को अभिमन्यु के नई दिल्ली में दो व्याख्यान

कराए। अनत के व्याख्यानों के विषय थे : 'मॉरीशस में भारतीय संस्कृति और उसको घेरे चुनौतियां' तथा 'हिंदी की अन्तर्राष्ट्रीयता में मॉरीशस की भूमिका'। इन व्याख्यानों में अटल बिहारी वाजपेयी, कृष्ण कुमार बिड़ला तथा अनेक प्रतिष्ठित लेखक उपस्थित थे। कार्यक्रम के बाद कृष्ण कुमार बिड़ला से अनौपचारिक बातचीत में अभिमन्यु तथा मैंने यह प्रस्ताव रखा कि उनका फाउंडेशन प्रतिवर्ष मॉरीशस के दो हिंदी लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित कराने में वित्तीय सहयोग दे। बिड़ला जी ने इसे तत्काल स्वीकृति दी और फिर टंडन जी से विस्तार से बातचीत हुई। इस योजना का शुभारम्भ स्वाभाविक था कि मॉरीशस के सर्वश्रेष्ठ लेखक अभिमन्यु की किसी कृति से होता, परन्तु अभिमन्यु ने अपने देश के दो लेखकों, रामदेव धुरन्धर तथा पूजानन्द नेमा के नाम प्रस्तावित किए और इनकी कृतियों से ही योजना आरम्भ हुई। मेरे लिए अभिमन्यु का यह व्यवहार नया नहीं था। मॉरीशस में प्रेमचंद शताब्दी समारोह (1980) के अवसर पर जैनेन्द्र जी ने पूर्वोदय प्रकाशन के लिए एक पांडुलिपि मांगी थी, तब भी अभिमन्यु ने रामदेव धुरन्धर की पांडुलिपि देकर कहा था कि आप पहले इसे प्रकाशित करें, बाद में मैं अपनी रचना दूंगा। मैंने देखा और पाया कि अभिमन्यु ने 'वसंत' पत्रिका के सम्पादक के रूप में मॉरीशस में लेखकों की कई पीढ़ियों का निर्माण किया, उनकी रचनाओं को अपने देश और भारत में प्रकाशित कराया और लेखकों का एक मित्र-मंडल बनाया। इस प्रकार उन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, अज्ञेय आदि की परम्परा को विकसित किया और मॉरीशस के हिंदी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। इसके विपरीत उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा, प्रचार या प्रसिद्धि के लिए कोई कार्य करने को कभी नहीं कहा। अभिमन्यु ने कहा था कि वे कृत्रिम प्रसिद्धि नहीं चाहते। यदि उनकी कृतियों में दम होगा तो उन्हें यशस्वी बनाएंगी।

अभिमन्यु अनत से मैंने पारिवारिक सम्बन्धों की चर्चा की थी। मेरी तीन मॉरीशस की यात्राएं तो अभिमन्यु की प्रेरणा और योजनाओं के कारण ही हुईं और मैं उनके घर ही ठहरा। वे भी सन 1988 के बाद जब भी दिल्ली आए, 2004 तक मेरे ही निवास पर सपरिवार ठहरे। मैं जब पहली बार उनके घर पर ठहरा तो मैं प्रकृति-प्रेम देखकर आश्चर्यचकित रह गया। वह घर क्या था एक सुन्दर, रमणीय वाटिका थी तथा उसमें दो हजार से अधिक पेड़-पौधे लगे हुए थे। अभिमन्यु प्रातः 5 बजे उठते और पौधों में पानी देते। उनका दिन इसी प्रकार शुरू होता। नाश्ता बनता तो पत्नी की मदद करते और फिर अपनी कार से दफ्तर निकल जाते। दफ्तर भी एक सुन्दर उपत्यका में बना था। वे सहयोगियों से मज़ाक करते, कुछ कार्य पूरा करते और मेरे साथ कार्यक्रम के लिए निकल जाते। शाम होती तो घर पर कुछ सुर-सुरा का आनन्द लेते और खुलकर विभिन्न विषयों पर बातचीत करते। ये हमारे बड़े आत्मीय क्षण होते जब उनके जीवन के अंतरंग प्रसंगों पर भी बातचीत होती। वे जीवन में बड़े संघर्ष से आगे बढ़े थे, लेकिन गलत प्रसंगों में उन्होंने झुकना नहीं सीखा था। उन्होंने अपने प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम को भी उत्तर दे दिया था। उन्हें इसका अफ़सोस था कि उन्होंने अपने देश के जिन लेखकों की मदद की, उनमें से कुछ ने बाद में बड़ा अनुचित व्यवहार किया। मॉरीशस हो या भारत, मनुष्य ऐसे ही व्यवहार करता है। हमारे लिए यही संतोष करने का आधार था। मेरे भी कुछ ऐसे ही अनुभव रहे हैं, पर कटुता स्थायी नहीं होनी चाहिए।

अभिमन्यु अनत को मैंने एक लेखक के रूप में ही नहीं एक सामान्य मनुष्य के रूप में भी जीवन जीते देखा है। अपने देश की सामान्य जनता के प्रति उसकी प्रतिबद्धता और परिवार को एकजुट रखने का उसका प्रयास दोनों ही प्रभावित करते हैं। अनत ने अपने भाई के परिवार को जिस रूप में अपना परिवार बनाया है, यह तो उसके अच्छे मनुष्य होने का प्रमाण है। पत्नी पर भी मैंने उनका बहुत रोब-दोब नहीं देखा। अपनी यात्रा में (23 फरवरी-8 मार्च, 2007) भी वे सपत्नीक आए और काफी समय ख़रीदारी में ही व्यतीत हुआ। वे मेरे आग्रह पर भारत भवन, भोपाल गए तथा वहां कहानी का पाठ किया और मॉरीशस में बनाए अपने टी.वी. धारावाहिक को दिखाया। अनत अपने नाटकों का निर्देशन स्वयं करते रहे हैं लेकिन धारावाहिक बनाने का यह उनका पहला अनुभव था। वे अब 75 वर्ष के हैं, परन्तु वे कुछ-न-कुछ करते रहते हैं। उनके 75 वर्ष पूरे करने पर मैंने कई हिंदी पत्रिकाओं के 'अभिमन्यु अंक' निकलवाए। इनमें 'नई धारा', 'सद्भावना दर्पण', 'समकालीन साहित्य', 'प्रेरणा', आदि पत्रिकाएं थीं। इसी प्रकार मेरे प्रस्ताव पर साहित्य अकादमी, नई दिल्ली ने अनत को 'मानद सदस्यता' प्रदान कर अपना सर्वोच्च सम्मान दिया और उन्हें दिल्ली आमंत्रित करके यह सम्मान प्रदान किया। अनत पर शोध-कार्य के लिए भी मेरा सहयोग सभी के लिए उपलब्ध होता है।

अभिमन्यु से दोस्ती मेरे जीवन का हिस्सा बन गई है। उसके और मेरे बाहरी व्यक्तित्व में कुछ ऐसी समानताएं हैं कि कुछ लोग मुझे अभिमन्यु और उसे गोयनका मान लेते हैं, लेकिन यह हमारे लिए आनन्द का ही विषय होता है। राजेन्द्र यादव की एक उक्ति से अपना संस्मरण समाप्त करूंगा। अपनी पिछली एक यात्रा में अभिमन्यु और मैं राजेन्द्र यादव से मिलने उनके कार्यालय गए तो यादव हमें देखते ही बोले, 'हे भगवान, प्रेमचंद और अभिमन्यु से गोयनका को बचाओ।' यह बात मज़ाक में कही गई थी, लेकिन मैं उसे अपनी दोस्ती की स्वीकृति मानता हूं। इस दोस्ती ने मुझे मॉरीशस का बना दिया और मॉरीशस के लोगों के लिए मेरा घर उनका स्वागत-स्थान बन गया। दो देशों के आत्मीय सम्बन्धों के लिए यह उपलब्धि कम नहीं थी।

kkgoyanka@gmail.com

लेखक जनपद बलरामपुर (उ.प्र.) के मूल निवासी हैं। विगत 12 वर्षों से स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं में हिंदी विषय में अध्यापन कार्य ए.पी.एन.पी.जी. कॉलेज, बस्ती (उ.प्र.) में कर रहे हैं।

सारे जग से प्यारा सूरीनाम हमारा

डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव

सूरीनाम दक्षिणी अमेरिका का एक छोटा सा भाग है। यहां काफी संख्या में भारतवंशी धन-धान्य सम्पन्न जीवन जी रहे हैं। पहले इस देश पर 'डच' लोगों का अधिकार था। वहां के मूल निवासी 'नीग्रो' दास प्रथा के अन्तर्गत बंधुआ मजदूर के रूप में काम करते थे। डच जॉनसन ने भारत की अंग्रेज़ सरकार से समझौता करके लगभग 33000 से अधिक भारतीय मजदूरों को सूरीनाम बुलाया और ब्रिटिश हुकूमत ने कुछ ही वर्षों के अन्तराल में ही भारतीय मजदूरों को सूरीनाम भेजना प्रारम्भ कर दिया। जिसे 'गिरिमिटया' मजदूर कहा गया। 15 जून 2015 को भारत से सोलह हज़ार कि.मी. दूर दक्षिणी अमेरिका के उत्तर पूर्वी क्षेत्र में स्थित सूरीनाम में भारतीयों के पदार्पण के 142 वर्ष पूरे हुए। इसी दिन 1873 में पहली बार 'लाला रुख' जहाज से और बाद में 64 अन्य जहाजों से उतरे 34,304 भारतीय मजदूरों की चौथी पीढ़ी, 5 जून को आप्रवासी दिवस के रूप में मनाती है। सूरीनाम के भारतवंशियों में 38% हिन्दू, 12% मुसलमान हैं। ये सभी भारतीय त्योहारों को मिलकर मनाते हैं। सूरीनाम में 90% लोग हिंदी का प्रयोग करते हैं।

सूरीनाम की भाषा को सरनामी हिंदी अथवा 'सरनामी हिन्दुस्तानी' कहा जाता है। इसमें कई भाषाओं और बोलियों का मिश्रण है। मुख्यत: अवधी, भोजपुरी, मगही, उर्दू, डच सर्वाधिक है। हिंदी यहां की सम्पर्क भाषा है। सरनामी हिंदी में 70% अवधी के शब्द, 20% भोजपुरी के शब्द और 10% डच के शब्द हैं। समय-समय पर वहां भारतीय मूल के लोग राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और मंत्री चुने गए हैं। इस देश में सरनामी हिंदी का लेखन दो रूपों में विभाजित है। एक रोमन में, दूसरे देवनागरी में। सूरीनाम में मानक हिंदी का प्रयोग भी होता है जो भारत में लिखी जाने वाली हिंदी के समतुल्य है जबकि सरनामी कुछ भिन्न-भिन्न दिखाई देती है।

—'ऊ बेटवा जब तक हमार पकावल न खात रहा, ओकर पेट न भरत रहा। जब तक दुई घंटा बैठके हमसे बात न करत रहा, तब तक न सूतत रहा, न हमके सूते देत रहा।

—अपन देस के अत्याचार से मारल सुख खोजे सिरी राम टापू चलिन। दुख काट-काट के ठिकान बना लेइन। लड़-लड़ के अपन हक पे जान दइ-दइ कै काम रहते रह गैन।

सरनामी की व्याकरणिक विशेषताओं में 'र' की जगह 'ल' होता है। जैसे परिवार को पलवाल। इसमें बहुवचन में न का प्रयोग अधिक पाया जाता है, जैसे लड़कियों के लिए छोड़ियन। इसके अधिकतर शब्द अवधी के हैं, जैसे नरे (पास), उढनिया (चुनरी), अज्या (आजा-आजी) तो कुछ शब्द डच से भी प्रेरित है रसोई (कुकर), मेंढक (मेघा), मनुष्य (मनेर) मां (महतारी), चांदनी (पोछनी), जन्म (जलम), अंधकार (अधियार), ऐतराज (ऐतराजी) आदि। सरनामी के सर्वनाम भी भिन्न हैं, जैसे तू, तोनिया (तुम), तोके (तुमको), हमके (हमको), ऊ (वह), तुहार, तोर, तुहका (तुम्हारा), के (कौन), ओकरे (उसका), एही (इस), केकर (किसका) आदि।

सरनामी विशेषणों में भी भिन्नता है, जैस एगो (एक), हल्लुक (हल्का), हियां - हुवां (यहां-वहां), बेस्तर (अधिक), तब्बो (तभी)। क्रिया पदों में अवधी से साम्य होने के उपरांत भी भिन्नतर जैसे- आवे है (आता है), होवे है (होता है), गन्नै (जाता है) बोलिला (बोला), देलो (दिया), जोरिला (जोड़ा) ए रहिला (रहा) नचली (नाची) भैल (हुआ), लाइस (लाया) आदि। सहायक क्रिया रूप में बा, बाय, बाटिन रहे आदि का प्रयोग बहुत होता है।

सूरीनाम में 1978 में भारतीय दूतावास की स्थापना हुई। 1982 में जब बच्चू प्रसाद सिंह जी सूरीनाम गए तो हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति को बड़ा बल मिला। नेता जगन्नाथ लक्ष्मण के प्रयास से हिन्दुस्तानी पार्टी सत्ता में आई। इस प्रकार भारतीयों का वर्चस्व स्थापित हो गया।

सूरीनाम स्थित भारतीय दूतावास में रह चुकी भावना सक्सेना के अनुसार 'आज सूरीनाम के सरकारी विद्यालयों, जिन्हें कुली स्कूल कहा जाता था, में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था थी। 1929 में सरकारी विद्यालयों में हिंदी शिक्षण कार्य बन्द कर दिया गया और तब हिंदी शिक्षण का बीड़ा उठाया, धार्मिक, सामाजिक संस्थाओं और स्वाध्याय मण्डलों ने। आज हिंदी की सुदृढ़ स्थिति का श्रेय इन्हीं सस्थाओं को जाता है। कुल मिलाकर लगभग 134 मंदिर व धार्मिक केन्द्र/सभाएं हैं। इन मंदिरों में प्रार्थना के अतिरिक्त हिंदी भाषा व धर्म सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है।

सूरीनाम में दो संस्थाएं बहुत प्रसिद्ध हैं- एक आर्य समाज और दूसरी सनातन धर्म महासभा। डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया के अनुसार 'सूरीनाम प्रवासी संस्था की स्थापना 1910 में हुई और आर्य समाज की स्थापना 1912 में हुई।' सूरीनाम में डॉ. सदानन्द सिंह ने, जो भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद द्वारा भेजे गए हिंदी प्राध्यापक थे, ने सन् 1978 में सूरीनाम हिंदी परिषद तथा जय प्रकाश हिंदी संस्थान स्थापित कर सूरीनाम में हिंदी के प्रचार-प्रसार में ऐतिहासिक पहल की थी।

सूरीनाम में भारतवंशियों ने अनेक शिक्षण संस्थाएं स्थापित कीं। सनातन धर्म सभा और दिवाकर आदि संस्थाओं के 100 से अधिक विद्यालयों में हिंदी की शिक्षा दी जाती है। उतरेख्त विश्वविद्यालय में

सरनामी हिंदी की पढ़ाई होती है। इन्हीं सस्थाओं के माध्यम से हिंदी अध्यापन कार्य को बल मिला। सूरीनाम में हिंदी प्रचार सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, राष्ट्र भाषा प्रचार समिति वर्धा आदि संस्थाएं हिंदी परीक्षाओं का आयोजन करती हैं। महात्मा गांधी ने वर्धा स्थित अपने आश्रम में 11 अक्टूबर 1935 को सूरीनाम के एक प्रवासी भारतीय से मुलाकात के बारे में लिखा कि 'डच-गयाना के पंडित भवानी भीख मिश्र, बनारसी दास चतुर्वेदी के साथ मुझसे मिले और सूरीनाम के प्रवासी भाइयों के लिए मुझसे संदेश मांगा। मेरी आप लोगों से इतनी ही अर्ज है कि आप सब भारत में मिलकर रहें। जीवन में शरीर, मन और वचन की पवित्रता का ख़्याल रखें। परस्पर की बातचीत में हिंदी-हिन्दुस्तानी भाषा का इस्तेमाल करें। हिंदी स्कूल एवं पुस्तकालय खोलें।'

सूरीनाम में हिंदी को लोकप्रिय बनाने में रेडियो व टी.वी. की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी फ़िल्में भी देखकर अधिकांश लोग हिंदी सीखते हैं। आवश्यकता है कि ऐसे लोग, लिपि ज्ञान के क्षेत्र में प्रगति करें। सूरीनाम में 6 रेडियो केन्द्र तथा 4 टी.वी. केन्द्र का प्रसारण हिंदी में हो रहा है। 5 वर्ष पूर्व आम चुनाव में हिन्दुस्तानी पार्टी ने अपने चुनाव प्रचार में हिंदी का जमकर प्रयोग किया।

सूरीनाम में हिंदी लेखन की परम्परा समृद्ध रही है। भारत के बाहर कई देशों में साहित्य सृजन हो रहा है। डॉ. सदानन्द सिंह और सूरीनाम हिंदी परिषद के अध्यक्ष श्री जानकी प्रसाद ने सूरीनाम में देवनागरी लिपि में खड़ी बोली हिंदी के प्रचलन को प्रोत्साहित किया, जिसके फलस्वरूप आज सुरजन परोही, सूर्य प्रसाद वीरे, जीत नारायन, सीता महावीर आदि अनेक सरनामी हिंदी लेखन में सक्रिय योगदान दे रहे हैं।

सूरीनाम के हिंदी सेवियों में पूर्व राजदूत बच्चू प्रसाद सिंह, जीत नारायन, महातम सिंह, महादेव श्री निवास, चित्र, उमादत्त शर्मा, लक्ष्मण सिंह, रामदेव-चन्द्र मोहन, रणजीत, प्रेमचन्द, कमला जग मोहन सिंह, अमृत प्रसाद, राम सिंह, उदयराज, शिव रतन शास्त्री, सुरतन परोही, पुष्पिता, गंगाराम पाण्डेय और सर्वोपरि मुंशी रहमान की सेवाएं सर्वथा सराहनीय हैं। गुरुदत्त काला सिंह ने यहां का राष्ट्रगीत लिखा है—'सारे जग से प्यारा सूरीनाम हमारा'

142 वर्षों से सूरीनाम के भारतवंशियों ने अपनी भाषाई एंव सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखा है तथा सूरीनाम में हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वे सूरीनाम को अपना देश मानते हैं, उनके मन में हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तानी संस्कृति और हिंदी भाषा की त्रिवेणी सतत प्रवाहित होती रहती है। इसीलिए 2003 में सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन करके सूरीनाम ने देशान्तरी हिंदी की अपनी विशिष्ट छवि निर्मित कर ली है। अभी उसकी अनेक संभावनाएं बरकरार हैं।

drbaljeetsrivastava@gmail.com

लेखक वरिष्ठ भाषाविद तथा गिरमिटिया देशों की हिंदी के अध्येता हैं।

मन पर वृहत्तर भारत का चित्र

कैलाश चन्द्र पंत

1975 में एक कल्पना की गई। उसे नागपुर में विश्व हिन्दी सम्मेलन के रूप में मूर्त रूप दिया गया। सामान्य से दिखाई देने वाले केवल तीन प्रस्ताव पारित हुए थे, जो बाद में छठे विश्व हिन्दी सम्मेलन तक दोहराए जाते रहे। संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को मान्यता की बात एक प्रजातांत्रिक देश की न्यायसंगत गुहार थी। यह मांग आज तक भी अनसुनी है। इस प्रस्ताव को लेकर भारत में ही प्रश्न खड़े किए जाते रहे। कहा गया कि पहले हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा की मान्यता तो मिल जाए, फिर विश्व भाषा का सपना देखें। कुछ लोग आक्षेप करते रहे कि ऐसे सम्मेलन केवल हिन्दी वालों की विदेश-यात्राओं के साधन-मात्र हैं। ऐसी आलोचना करने वाले परिवर्तन की उस अन्तर्धारा को समझ पाने में सर्वथा असफल रहे जो वैश्विक-पटल पर क्रियाशील थी।

बात हिन्दी की थी। शुरू वहीं से हुई। लेकिन उसने विदेशों में बस गए भारतीय मूल के लोगों और प्रवासी भारतीयों के मन पर वृहत्तर भारत का चित्र अंकित कर दिया। विदेशों में बसे इन भारतीयों को भारत के प्रति नया दृष्टिकोण विकसित करने की प्रेरणा दी। मॉरीशस, सूरीनाम, केन्या, त्रिनिदाद जैसे द्वीपों में निवास कर रहे भारतीय वंश-वृक्ष के लोगों में अपनी नानी मां (भारत को वे अपनी नानी मां कहते हैं) के स्नेहमयी आंचल की याद आने लगी। वे भारत से भावात्मक रूप से जुड़ गए। वे सब विश्व हिन्दी सम्मेलन के मंच पर एकत्र हुए तो इस स्मृति को प्रगाढ़ बनाने के बारे में भी सोचा जाने लगा। भारत में जिन तत्वों ने हिन्दी और भारतीय भाषाओं के बीच विवाद खड़ा कर दिया था, उनसे बेपरवाह रह कर विदेशी धरती पर बसे भारतीयों ने पारस्परिक एकता के लिए हिन्दी भाषा को एकता का सूत्र मान लिया। यह विदेशी भूमि पर नए भारत को जन्म दे रहा है। इस वृहत्तर भारत के उन्मेष को उसकी सार्थकता तक पहुंचाने का दायित्व हम हिन्दी भाषियों का है। इस बीज तत्व को प्रवासी भारतीय सम्मेलन में ज़्यादा प्रस्फुटित रूप में देखा जा सकता है। विदेशों में बसे प्रवासी भारतीयों में भारत के हितों को लेकर आवाज़ उठाने की ललक पैदा हुई।

इस वृहत्तर भारत के जन्म के पीछे दो अन्य बातों की भूमिका भी रही। विदेशों में बसे लोग ऐसी दुनिया में रहते हैं जहां सूचनाओं का प्रसार पलक झपकते होता है। वे इस बात से परिचित हैं कि आर्थिक संपन्नता के बावजूद विदेशी धरती पर चैन गायब है। न तो आत्म संतुष्टि है और न सामाजिक संतुष्टि। पूंजीवादी व्यवस्था के प्रतिरोध में खड़े हुए मार्क्सवादी दर्शन से समाज में आर्थिक समानता नहीं आई, शोषण का स्वरूप बदल गया। इसके विपरीत पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा

प्रदत्त व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण और हो गया। इन दोनों व्यवस्थाओं की असफलता ने उन्हें भारतीय चिन्तन की गहराई को समझने के लिए बाध्य किया। उन्होंने पाया कि उनके गुलामी के दुर्दिनों में एकमात्र सहारा रामचरितमानस और हनुमान चालीसा क्यों रहे। वहां बस गए प्रबुद्ध भारतीयों ने अनुभव किया कि विदेशी गलत और मिथ्या तर्कों के आधार पर भारतीय शास्त्रों और परम्पराओं पर आक्षेप करते हैं। इसकी पीड़ा ने उन्हें अपने देश के आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन करने की प्रेरणा दी। इस तैयारी के दौरान उनको अनुभव हुआ कि सामान्य-जन के लिए संस्कृत ग्रंथों को समझ पाना दुष्कर होगा।

इसके लिए हिन्दी ज़्यादा उपयोगी होगी। क्योंकि हिन्दी सही अर्थों में संस्कृत की उत्तराधिकारिणी है और भक्तिकाल के साहित्य में शास्त्रों की सरल व्याख्या पहले से ही उपलब्ध है। विदेशों में रहकर वे समझ सके हैं कि वहां पर अपने धर्म, अपनी संस्कृति की प्रस्तुति किस तरह की जानी चाहिए, जिससे कि विद्वत-विमर्श में भारत का प्रतिनिधित्व सही ढंग से हो सके। हिन्दी में प्रस्तुत व्याख्याओं का अंग्रेज़ी रूपान्तरण करने में वे समर्थ हैं।

उपर्युक्त बातों ने भारतीय अस्मिता के भाव को प्रखर बनाया। इसका अर्थ यह भी है कि विदेशों में हिन्दी भारतीय अस्मिता की प्रतीक बन चुकी है। विश्व हिन्दी सम्मेलनों में हिन्दी के वैश्विक प्रतिनिधियों की उपस्थिति ने भारतीयों को भी कुछ प्रेरणा दी है। उनका हिन्दी प्रेम हमें सोचने को विवश करता है कि अपने ही देश में हम अपनी भाषा के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं? यह एक कटु सत्य है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी को मान्यता दिलाने के लिए जो उत्साह भारतीय वंश-वृक्ष के प्रतिनिधियों में है, वह भारतीयों में अनुपस्थित है। उनके कारण ही मॉरीशस में अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी सचिवालय गठित हुआ। हां! वर्धा में महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय भारत सरकार की इच्छा शक्ति का परिचायक है। फिर भी यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि हिन्दी के ही कुछ लेखक उसे वर्धा से दिल्ली स्थानांतरित करने में ही पांच वर्षों तक अपनी शक्ति का अपव्यय करते रहे। खैर! अब वह क्रियाशील है और आशा की जानी चाहिए कि भविष्य में वह वृहत्तर भारत के सपनों को साकार करने वाला संस्थान बन सकेगा।

इस तरह विश्व हिन्दी सम्मेलनों को वृहत्तर भारत के निर्माण का माध्यम बनने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। एक चमत्कार घटित हो रहा है, जिसके लिए नियति ने हिन्दी को निमित्त बनाया है। यदि इस अवसर का उपयोग करने में हिन्दी प्रेमी चूकते हैं तो इस अपराध को इतिहास क्षमा नहीं करेगा, क्योंकि वृहत्तर भारत के निर्माण का श्रेय हिन्दी को प्राप्त होने का अवसर हाथ से निकल जाएगा। हमें तय करना होगा कि हमारे जो बंधु हमसे सुदूर देशों में अपना घर बसा चुके हैं उनके प्रति आत्मीयता और स्नेह का भाव रखें, उनके अनुभवों का लाभ उठाएं। भारतीय भाषाओं के साहित्य में जो कुछ नया है और जिन सामाजिक हलचलों का प्रतिबिम्ब वह बना है उससे उन्हें परिचित रखें। एक प्रकार का साहित्यिक विनिमय प्रारंभ हो।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रवासी भारतीय करवट लेते भारत को भी ज़्यादा निकटता से पहचानें। भारत के सांस्कृतिक मूल्यों को वे भारतीय चरित्र में आकार लेते देखें। इसके लिए हमें संस्कृत ग्रंथों के शोधपरक अध्ययन और विश्लेषणात्मक व्याख्या की ओर ध्यान देना होगा। हमारी संस्कृति के विभिन्न आयामों की तार्किक व्याख्या, वह भी आधुनिक परिवेश में, करने का दायित्व भारतीय लेखकों को ही उठाना पड़ेगा। अब वृहत्तर भारत के नए उन्मेष को हर संभव सहायता पहुंचाना युगधर्म है। इस कार्य में शिथिलता या प्रमाद घातक सिद्ध होगा। बेचैन मानवता के लिए समाधान प्रस्तुत करने की चुनौती हमारी पीढ़ी को स्वीकार करनी होगी।

bbhawan@gmail.com

लेखक आकाशवाणी के अवकाशप्राप्त अपर महानिदेशक (समाचार) हैं। कविता कहानी के अतिरिक्त मीडिया प्रसंगों पर आपकी अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है तथा आपको अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

मीडिया में हिन्दी का बदलता स्वरूप

सुभाष सेतिया

हिंदी पत्रकारिता ने आज़ादी के बाद दिन दोगुनी, रात चौगुनी बढ़ोतरी की है। सबसे बड़ा अंतर यह आया है कि यह मिशन का दामन छोड़कर विशुद्ध पेशेवर और कुछ हद तक व्यापारिक रूप प्राप्त कर चुकी है। हिंदी पत्रकारिता के स्वरूप में भी काफी बदलाव आया है। कुछ शुद्धतावादी तथा मानक प्रेमी लोग इसे अराजकता एवं अनुशासनहीनता कहकर आलोचना करते हैं किन्तु वास्तव में यह विविधता ही हिंदी की शक्ति है और इससे इसकी स्वीकार्यता बढ़ रही है। इसी का प्रभाव है कि देश के किसी भी भाग में आप लोगों को स्थानीय शब्दों के रंग में रची हिंदी में अपने विचार व्यक्त करते हुए देख सकते हैं। स्थानीय शब्दों की तरह अख़बारों की हिंदी में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी तेज़ी से बढ़ा है। नवभारत टाइम्स जैसे कुछ समाचार पत्र तो अंग्रेज़ी शब्दों का असंतुलित प्रयोग भी करते हैं, जो स्वीकार्य नहीं है। हमारे समाज जीवन तथा शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेज़ी के महत्वपूर्ण स्थान को देखते हुए अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग से बचना न तो संभव है और न ही अपेक्षित है। आज के युग में विश्व की कोई भी भाषा अंग्रेज़ी के प्रभाव से अछूती नहीं है। किंतु यह प्रयोग वहीं तक सीमित रहना चाहिए जहां तक हिंदी की अपनी गरिमा, पहचान एवं शोभा आहत न हो।

हम जानते हैं एफ.एम. रेडियो के आगमन से पूर्व प्रसारण का मुख्य संगठन आकाशवाणी या ऑल इंडिया रेडियो रहा है। आज भी फ़िल्मी संगीत को छोड़कर सब प्रकार का रेडियो प्रसारण आकाशवाणी से ही होता है। आकाशवाणी ने समाचार, विचार, शिक्षा, सामाजिक सरोकार, संगीत, मनोरंजन आदि सभी तरह के अपने प्रसारणों के माध्यम से हिन्दी को देश के कोने-कोने तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसमें हिंदी फ़िल्मों और फ़िल्मी गीतों का विशेष स्थान रहा है। आकाशवाणी की विविध भारती सेवा तथा अन्य कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रसारित फ़िल्मी गानों ने हिंदी को देशभर के लोगों की ज़बान पर ला दिया है। अब वही काम आकाशवाणी के केन्द्रों के साथ-साथ एफ.एम. चैनल कर रहे हैं। एफ.एम. चैनल हल्के-फुल्के कार्यक्रमों, वाद-संवाद और हास्य-प्रहसन के ज़रिए हिंदी का प्रसार कर रहे हैं। इस समय आकाशवाणी के 225 से अधिक

केन्द्रों और 360 से अधिक ट्रांसमीटरों के अलावा लगभग 400 एफ.एम. और सामुदायिक रेडियो चैनल प्रसारण कर रहे हैं। इनमें अधिकतर चैनल हिंदी में कार्यक्रम प्रसारित करते हैं।

1980 से 1990 के दशक में दूरदर्शन ने राष्ट्रीय कार्यक्रम और समाचारों के प्रसारण के ज़रिए हिंदी को जनप्रिय बनाने में काफी योगदान दिया। 1990 के दशक में मनोरंजन और समाचार के निजी उपग्रह चैनलों के पदार्पण के उपरांत यह प्रक्रिया और तेज़ हो गई। रेडियो की तरह टेलीविजन ने भी मनोरंजन कार्यक्रमों में फ़िल्मों का भरपूर उपयोग किया और फ़ीचर फ़िल्मों, वृत्तचित्रों तथा फ़िल्मी गीतों के प्रसारण से हिंदी भाषा को देश के कोने-कोने में पहुंचाने के सिलसिले को आगे बढ़ाया। टेलीविज़न पर प्रसारित सीरियलों ने दर्शकों में अपना विशेष स्थान बना लिया है। सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, पारिवारिक तथा धार्मिक विषयों को लेकर बनाए गए हिंदी सीरियल देश-विदेश में देखे जाते हैं। 'रामायण', 'महाभारत', 'हम लोग', 'भारत एक खोज' जैसे धारावाहिक न केवल हिंदी प्रसार के वाहक बने बल्कि राष्ट्रीय एकता के सूत्र बन गए। इन कार्यक्रमों की लोकप्रियता की बदौलत देश के विभिन्न भागों के अहिंदी भाषी लोग हिंदी समझने और बोलने लगे। 'कौन बनेगा करोड़पति', 'बिग ब्रदर' तथा अन्य लाइव कार्यक्रमों ने लगभग पूरे देश को टेलीविज़न से बांधे रखा है। हिंदी में प्रसारित ऐसे कार्यक्रमों में पूर्वोत्तर राज्यों, जम्मू-कश्मीर और दक्षिणी राज्यों के प्रतियोगी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं और इस तथ्य को दृढ़ता से उजागर करते हैं कि हिंदी की पहुंच समूचे देश में है। विभिन्न चैनलों द्वारा अलग-अलग आयु वर्गों के लोगों के लिए आयोजित लाइव संगीत प्रतियोगिताओं में भी अनेक अहिंदीभाषी राज्यों के प्रतियोगी हिंदी गीत गाकर प्रथम और द्वितीय स्थान प्राप्त कर रहे हैं। हिंदी फ़िल्मों की तरह टेलीविज़न के हिंदी कार्यक्रमों ने भी भौगोलिक, भाषायी तथा सांस्कृतिक सीमाएं तोड़ दी हैं।

टेलीविज़न चैनलों पर हिंदी समाचार सबसे अधिक दर्शकों द्वारा देखे जाते हैं। हिंदी ख़बरिया चैनलों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। टी.वी. पत्रकारों में दृष्टिकोण विकसित किया जाता है कि भाषा अपने आपमें कोई शक्ति नहीं, वह कथ्य की अभिव्यक्ति का साधन मात्र है। इसलिए जिन शब्द प्रयोगों की पहले कल्पना तक नहीं की जाती थी, उनका कुछ चैनल खुलकर प्रयोग कर रहे हैं। प्रादेशिक तथा स्थानीय स्तर पर प्रसारण करने वाले समाचार चैनलों की भाषा का तो कोई स्वरूप ही नहीं है। भविष्य में पता नहीं क्या स्थिति बनती है, किन्तु इस समय तो अधिकतर हिंदी चैनल समाचारों और विचारों को मनोरंजन तथा नाटकीयता की चाशनी में भिगोकर प्रसारित कर रहे हैं, जिससे उनकी भाषा का स्तर भी औचित्य की मर्यादा पर खरा नहीं उतरता। हम कह सकते हैं कि टेलीविज़न की हिंदी का मानक रूप अभी विकास की प्रक्रिया अथवा संक्रांति काल से गुज़र रहा है। किन्तु एक सुखद पहलू यह है कि चैनलों में भाषा संस्कार से सम्पन्न अनेक मीडियाकर्मी मौजूद हैं जिनके प्रताप से हिंदी का गरिमामय तथा स्तरीय रूप कुछ हद तक बचा हुआ है।

विज्ञापन मीडिया का अनिवार्य अंग है। सच तो यह है कि मीडिया के बहुत बड़े वर्ग की सांसें विज्ञापन की ऑक्सीजन से ही चलती हैं। इसलिए विज्ञापनों में प्रयोग की जाने वाली भाषा भी हिंदी के स्वरूप पर असर डालती है। विज्ञापनों में हिंदी की बढ़ती स्वीकार्यता का आलम यह है कि विज्ञापन लिखे या दिखाए अंग्रेज़ी में जाते हैं किन्तु भाषा आमफहम हिंदी होती है। कहना न होगा कि विज्ञापनों में हिंदी ने अपने पांव दृढ़ता से जमा लिए हैं और लगता है कि यह जल्दी ही अपना विशिष्ट स्वरूप ग्रहण कर लेगी।

हिंदी इस समय राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकार्यता के राजमार्ग पर सरपट दौड़ रही है और मीडिया इस दौड़ को और गतिशील बना रहा है। सच तो यह है कि जिस तरह हिंदी को अपने प्रसार के लिए मीडिया की ज़रूरत है, उसी तरह मीडिया को अपने विस्तार के लिए हिंदी की आवश्यकता है और आवश्यकता है योग्य मीडियाकर्मियों की। अनेक संस्थान हैं जो युवाओं को मीडिया पत्रकारिता का प्रशिक्षण दे रहे हैं।

setia_subhash@yahoo.co.in

लेखक आकाशवाणी में उपनिदेशक (हिंदी समाचार) पद पर कार्यरत हैं। एक रचनात्मक लेखक पत्रकार के रूप में वे साहित्यिक जगत में आदर पाते हैं।

ये आकाशवाणी है, अब आप....

राजेन्द्र उपाध्याय

आकाशवाणी का समाचार सेवा प्रभाग आज भी छाछ को फूंक-फूंककर पीता है। हमारे ऊपर दोहरी ज़िम्मेदारी है। हमें चौबीस घंटे चलने वाले टी.वी. चैनलों का मुकाबला भी करना है, समय पर समाचार देना है और भाषा का संस्कार भी बनाए रखना है। सरकारी आचार संहिता का भी पालन करना है और सामाजिक, सांस्कृतिक आचार संहिता का भी। हमारे हाथ बंधे हुए हैं। हमें हिन्दू-मुसलमान आतंकवादी कहने की आज़ादी नहीं है जैसी अन्य चैनलों को है। हमें युवा कांग्रेस में चले 'चाकू-छुरे' की घटना की भी कथित या 'तथाकथित हिंसा' कहकर काम चलाना पड़ता है। पूरे देश की भावनाओं का ध्यान रखना पड़ता है। हिंदी मुहावरों, शब्दों का अर्थ भौगोलिक दूरियों के बाद बदल जाता है। कुछ समय पहले तक आकाशवाणी में 'निधन' शब्द पर प्रतिबंध था, केवल देहांत से काम चलाना पड़ता था, लेकिन क्या वे केवल 'देह' थे? अन्य चैनल या अखबार स्वर्गवासी या गोलोकवासी कह सकते हैं, हम नहीं। यात्रा के अंतिम चरण में कहना है, अंतिम यात्रा। पर नहीं 'महायात्रा' पर नहीं।

हिंदी देश की राष्ट्रभाषा और राजभाषा है। भारत जैसे बहुभाषी देश में हिंदी संपर्क भाषा की भूमिका निभा रही है। आकाशवाणी का जनता के साथ सीधा संबंध है और आकाशवाणी जनसंचार का वह माध्यम है, जिसने भाषा की सहजता को बनाए रखते हुए अपना संबंध जनमानस के साथ बनाए रखा है। आज भी सुदूरवर्ती क्षेत्रों में आकाशवाणी जनसंचार का सशक्त माध्यम है। हिंदी भाषा की सहजता को बनाए रखने में आकाशवाणी का समाचार सेवा प्रभाग समाचारों के माध्यम से अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है।

अन्य दृश्य-श्रव्य माध्यमों में हिंदी का प्रयोग दिन पर दिन विकृत होता जा रहा है एफ.एम. आदि पर। खिचड़ी हिंग्लिश' का प्रयोग दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। हिंदी मुहावरों के गलत-सलत प्रयोग से लोगों के कान पकते जा रहे हैं। समुदाय विशेष की, महिलाओं की, दलित वर्गों की

भावना से खिलवाड़ किया जा रहा है। कुछ समय पहले आपको याद होगा कि दार्जिलिंग में दंगे भड़क गए थे, क्योंकि एफ.एम. कार्यक्रम में एक एंकर ने 'इंडियन आइडल' के विजेता प्रतियोगी के गोरखा समुदाय का मजाक उड़ाया था।

आकाशवाणी में भाषा की शुद्धता, सरलता तथा स्पष्टता का बहुत ध्यान रखा जाता है। आकाशवाणी का काम पंडिताऊ भाषा से नहीं चल सकता, दूसरी ओर उसका काम सड़क छाप भाषा से भी नहीं चल पाता है। हमें ऐसी भाषा लिखनी पड़ती है, जिसे पंडित से लेकर रिक्शा चलाने वाला भी आसानी से समझ सके। अख़बार, पढ़ते वक्त आप शब्दकोश देख सकते हैं, लेकिन समाचार सुनते वक्त नहीं। समाचार सुनते समय आप दाढ़ी बना रहे होते हैं या पान की दुकान पर खड़े हो सकते हैं।

आकाशवाणी समाचार के अपने मुहावरे हैं या सैट पैटर्न हैं जो संवाददाता या संपादक इन्हें जितनी जल्दी रट लेता है, वह उतना सफल संवाददाता या संपादक होता है। दो देशों के नेताओं की बातचीत के बारे में हमेशा ख़बर बनाई जाती है 'द्विपक्षीय संबंधों को सुदृढ़ करने' आपसी हितों पर विचार-विमर्श, आतंकवाद के खिलाफ सहयोग का वचन दिया, इसी तरह बंद या कर्फ्यू की सेट, बनी-बनाई ख़बरें होती हैं, स्थिति तनावपूर्ण लेकिन नियंत्रण में है, कहीं से किसी अप्रिय घटना का समाचार नहीं है। सड़कों पर वाहन नहीं चल रहे हैं। स्कूल, कॉलेज और व्यापारिक प्रतिष्ठान बंद हैं आदि-आदि।

अज्ञेय और डॉ. नगेन्द्र आकाशवाणी में हिंदी समाचार सेवा प्रभाग के प्रभारी बने। आकाशवाणी की हिंदी जितनी अज्ञेय, रघुवीर सहाय, मनोहरश्याम जोशी जैसे साहित्यकारों की बनाई हुई है, उतनी ही वह देवकीनंदन पाण्डेय, अशोक वाजपेयी, रामानुजप्रसाद सिंह की बनाई हुई है। कुछ साहित्यकारों को जैसे कुछ शब्द विशेष प्रिय होते हैं, वैसे ही कुछ वाचकों को भी कुछ शब्द विशेष प्रिय होते हैं। वे उनकी जिह्वा पर चढ़ जाते हैं। आप कुछ भी लिखकर दे दीजिए, वे वही पढ़ेंगे जो उन्हें पढ़ना होगा। उन्हें 'सुबह' पढ़ने में दिक्कत आती है 'सवेरे' ठीक पढ़ लेंगे। कुछ को उर्दू शब्दों से लगाव होगा तो वे 'अफसोस पढ़ेंगे' शोक व्यक्त किया नहीं। आप उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय लिखते रहिए, वे सुप्रीम कोर्ट, हाईकोर्ट के चक्कर लगाएंगे, तर्क- तीर्थ, लक्ष्मण शास्त्री- जोशी, अंग्रेज़ी हिज्जों के हिंदी उल्टा करने से 'ताड़का तीर्थ' हो गए। इसी तरह आईजेक बेशेविस सिंगर (नोबेल पुरस्कार प्राप्त लेखक) देहांत के बाद आकाशवाणी पर 'गायक' हो गए। महामना पंडित मदन मोहन मालवीय को भारत रत्न दिए जाने पर मुख्य समाचार में और अन्य समाचारों में महामना लिखने पर हमारे अंग्रेज़ आला अफसरों को दिक्कत आई, क्योंकि

अंग्रेज़ी संवाददाता ने महामना को अपने समाचार में महामना नहीं लिखा था। इसलिए हिंदी में भी महामना लिखने की मनाही कर दी गई। यह अंग्रेज़ी की गुलामी का एक और उदाहरण है।

'भाषा और वार्ता' होने के बावजूद आज भी हिंदी के समाचार अंग्रेज़ी में पहले तैयार होते हैं और बाद में उसका अनुवाद होता है। अनुवाद के कारण कई बार अर्थ का अनर्थ हो जाता है। राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा हिंदी दिवस पर हिंदी में संदेश देते थे, उसकी रिपोर्ट अंग्रेज़ी में फाइल की जाती थी और फिर उसकी हिंदी आकाशवाणी में की जाती। आज भी गृहमंत्री का संदेश इसी तरह प्रसारित होता है।

हमारे संवाददाता विदेश में बैठे भी और देश में बैठे भी गलत हिंदी बोल सकते हैं, लेकिन अंग्रेज़ी गलत नहीं बोल सकते। अंग्रेज़ी का सही-सही प्रयोग करना है, हिंदी तो उड़िया भाषी, तमिलभाषी, कन्नड़भाषी, बांग्लाभाषी संवाददाता गलत बोलना अपना अधिकार समझता है। अंग्रेज़ी तो उसने किसी स्कूल या कॉलेज से सीखी होगी, लेकिन हिंदी वह अपनी बीबी से या नौकरानी से भी सीख लेता है। अचानक मेरे पास दूर देश से या अपने देश से ही किसी संवाददाता का फोन आता है 'मिस करना' या 'फलां शब्द' की हिंदी क्या होगी? मैं कहता हूं कि नहीं होगी तो कहेंगे, काहे के कवि हैं, जब इतनी हिंदी भी नहीं आती। हिंदी और अंग्रेज़ी की प्रकृति अलग है। हमारे अधिकांश अफसर जैसे पहले अंग्रेज़ी में सोचते हैं वैसे ही हमारे अधिकांश संवाददाता, संपादक, पत्रकार पहले अंग्रेज़ी में सोचते हैं, बाद में उसका हिंदी में अनुवाद करते हैं। हाल में एनकाउंटर स्पेशलिस्ट मुंबई मुठभेड़ में मारे गए, अब 'एनकाउंटर स्पेशलिस्ट की हिंदी क्या होगी? मुठभेड़ विशेषज्ञ। अंडरवर्ल्ड डॉन या माफिया जैसे कई शब्द अंग्रेज़ी के ही इस्तेमाल करने पड़ते हैं। कुछ समय पहले 'पुलिस पेट्रोलिंग का पुलिस पैट्रोल छिड़क रही है, हो गया था। हमारे संवाददाता पेड़ लगाने की बजाए 'झाड़ लगाए' बोलते थे।

हमने अपने अहिंदी भाषी संवाददाताओं को हवाई जहाज से दिल्ली बुलाकर दो-तीन दिन का सघन प्रशिक्षण भी दिया। फिर वही ढाक के तीन पात। आग बुझाने के काम में चार दमकल गाड़ियां लगाया गया है' अग्निशमन दस्ता ही होता रहता है अब भी। लिट्टे का चार आतंकवादी मारा गया है, हमारा कोलंबो संवाददाता बोलता है।

आकाशवाणी हिंदी के श्रव्य-रूप के प्रचार-प्रसार और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह कर रहा है। समाचार सुनते-सुनते अहिंदीभाषी क्षेत्रों में भी लोगों ने सहजता और सरलता से हिंदी सीख ली है। आकाशवाणी के अधिकांश कार्यक्रम हिंदी में बनते हैं और प्रसारित किए जाते हैं। हिंदी के प्रति दुर्भावनावश कुछ अहिंदीभाषी राज्य हिंदी में समाचार या अन्य कार्यक्रम प्रसारित नहीं करते। उन पर हिंदी थोपी भी नहीं जा सकती। आकाशवाणी और दूरदर्शन से संस्कृत में समाचार प्रसारित किए जाते हैं। रविवार को आधे घंटे का संस्कृत वार्तावलि दूरदर्शन पर शुरू हुआ है। कितने लोग सुनते हैं, नहीं सुनते, ये अलग बात है। अब तो भोजपुरी में भी और अन्य लोकभाषाओं में समाचार प्रसारित किए जा रहे हैं। अब जब कुछ अंग्रेज़ी शब्दों का हिंदी में ही अभी तक अनुवाद नहीं हो पाया तो भोजपुरी में क्या होगा? पहले 'वैश्विक आतंकवाद का मुकाबला करना होता था अब वैश्विक वित्तीय व्यवस्था-' ग्रेट मेल्टाडाऊन' का 'महान मंदी' करना पड़ता है। अश्वेत ओबामा को कई अख़बार 'काले ओबामा' कहते रहे। ब्लेक ओबामा इन व्हाईट हाउस' लिखकर गर्व अनुभव करते रहे।

मुझे अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में आकाशवाणी में कुछ समय काम करने का अवसर मिला है। दूर-दूर तक फैले द्वीपों में स्थानीय समाचार पहुंचाने में आकाशवाणी ही एकमात्र ज़रिया है। यहां अख़बारों का इतना महत्व है कि कहीं किसी गली-कूचे में कोई बूढ़ा या बुढ़िया गुजर जाए तो तत्काल रेडियो को ख़बर दी जाती है। सुबह सात बजे के समाचार से पहले ख़बर दे दी जाए और वह प्रसारित हो जाए कि शवयात्रा उनके निवास से दिन में ग्यारह बजे निकलेगी तो सुबह नौ-दस बजे छूटने वाले जहाज से उनके सगे संबंधी आकर उसमें शामिल हो जाएंगे। जिसका पिता गुजर गया हो वह भी सब काम छोड़कर पहले रेडियो को ख़बर करेगा। रेडियो से हर द्वीप में ख़बर पहुंच जाएगी।

आकाशवाणी का समाचार सेवा प्रभाग आजकल हिंदी, संस्कृत, मराठी, डोगरी और नेपाली में दिन में तीन बार मोबाइल पर एस.एम.एस के ज़रिए प्रमुख समाचार प्राप्त करने की सुविधा दे रहा है। इसका उद्घाटन आकाशवाणी के नवप्रसारण भवन में पिछले दिनों सूचना एवं प्रसारण मंत्री माननीय श्री प्रकाश जावड़ेकर ने किया।

rajendra.upadhyaya58@gmail.com

लेखिका दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर हैं। वे वरिष्ठ साहित्य-कला समीक्षक तथा मीडिया विशेषज्ञ हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार, साहित्यश्री सम्मान, बालमुकुन्द गुप्त साहित्य सम्मान तथा प्रेमचन्द रचनात्मक सम्मान से सम्मानित हो चुकी हैं। वे साहित्यिक मासिक 'साहित्य अमृत' की पूर्व संयुक्त संपादक तथा प्रसार भारती बोर्ड के अन्तर्गत 'लिट्रेचर कोर कमेटी' की पूर्व सदस्य हैं।

बाजारोन्मुख भाषाई परिदृश्य

डॉ. कुमुद शर्मा

भाषा केवल अभिव्यक्ति ही नहीं है, वह एक राष्ट्र, एक सभ्यता, एक संस्कृति है और राष्ट्रीय तथा जातीय पहचान का प्रतीक भी। वह व्यक्ति और देश के चेहरे की पहचान भी है। इसीलिए हिंदी पत्रकारिता की विरासत में ऐसे असंख्य नाम हैं जिन्होंने हिंदी के योद्धा बनकर अपने कौशल और सजग प्रयासों से हिंदी गद्य को शक्ति सम्पन्न बनाया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से ही भाषा संस्कार और परिमार्जन का अपना अभियान पूरा किया। बाबूराव विष्णु पराड़कर ने हिंदी भाषा और पत्रकारिता की नई दिशाओं के पाट खोले। बालमुकुन्द गुप्त, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, शिवपूजन सहाय, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' आदि पत्रकारों ने हिंदी पत्रकारिता को विशिष्ट मतवाला तेवर और भाषा का विशिष्ट मुहावरा सौंपा, उसे नए मानदंडों पर आगे बढ़ाया। पत्रकारिता के दायित्वबोध का निर्वाह करते हुए हिंदी गद्य को विशिष्टता, व्यापकता, उदात्तता प्रदान की और उसे पैना धारदार बनाया। उनके संपादकीय कौशल से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों ने हिंदी गद्य शैली के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पत्रकारिता को उन दिनों 'लिट्रेचर इन हेस्ट' यानी 'जल्दबाज़ी में लिखा हुआ साहित्य' कहा जाता था। उसी जल्दबाज़ी में लिखे हुए साहित्य की भाषा ने हिंदी पाठकों के साथ बड़ा ही आत्मीय रिश्ता क़ायम किया। उनको जीवन के सूत्र सिखाए। राष्ट्रीय जागरूकता, सूचना का समन्वित आदर्श समेटे हिंदी के पत्रों की विषय सामग्री भाषा की जीवंतता के कारण बिना किसी अवरोध के पाठकों तक पहुंचती रही।

अब भूमंडलीय मीडिया के उभार ने टी.वी. के परदे और रेडियो की ध्वनि तरंगों में समाहित नए भाषाई तेवर, प्रिंट मीडिया की भाषा को प्रभावित करना शुरू कर दिया। 'बाज़ारवाद' की जकड़न में फंसे प्रिंट मीडिया के संसार में आज ऐसे संपादकों का अकाल पैदा हो गया है जो बाबूराव विष्णु पराड़कर की तरह नए समय के उपयुक्त कुछ नए शब्द गढ़ सकें। उच्च प्रौद्योगिकी के नए स्वरों के अनुकूल शब्दों को समायोजित कर सकें। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की तरह उपभोक्तावादी संस्कृति के विकृत प्रभाव से हिंदी भाषा के संस्कार को बचा सकें, विकृत और भ्रष्ट हो चुकी भाषा के परिमार्जन का बीड़ा उठा सकें।

हमें आज याद करने की ज़रूरत है कि 'मिस्टर' के लिये 'श्री' और 'सर्वश्री' का प्रयोग सर्वप्रथम पराड़करजी ने ही किया था। इसी तरह 'सुश्री', 'श्रीमती', 'नौकरशाही', 'मुद्रास्फीति', 'वायुमण्डल', 'राष्ट्र', 'अन्तरराष्ट्रीय' आदि शब्द उन्होंने ही हिंदी को दिए।

महान लेखक और पत्रकार भी पत्रकारिता की भाषा में सहजता और सरलता के पक्षधर थे। अज्ञेय, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, राजेन्द्र माथुर एवं प्रभाष जोशी आदि पत्रकारों ने न केवल पत्रकारिता की भाषा को सादगी से भरा, बल्कि सरल व आत्मीय संवाद करती भाषा का प्रतिमान खड़ा करने की कोशिश की। इस कोशिश में उन्होंने भाषा की गरिमा को बचाए रखने की भी भरपूर कोशिश जारी रखी। इक्कीसवीं सदी में भूमंडलीय बाज़ार से पैदा होने वाले सरलीकरण के भारी दबाव ने हिंदी प्रिंट मीडिया की भाषा को बाज़ारू और छिछला बना दिया है। उसके कारण भाषा के वर्तमान स्वभाव ने कई संयम तोड़े हैं। कहीं उसने व्याकरण का संयम तोड़ा है तो कहीं नैतिकता का। भाषा के सरलीकरण से शायद ही किसी को परहेज़ हो, लेकिन यदि इसके पीछे छिपी नीयत में खोट हो तो चिंतातुर होना स्वाभाविक है।

इसमें संदेह नहीं कि भाषा पर युग की प्रवृत्तियों का दबाव पड़ता है। युग की प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं के अनुसार हिंदी परिवर्तन के कितने ही मोड़ों से गुज़री है। हिंदी पत्रकारिता के क्रमिक इतिहास में हिंदी के संस्कार की दृष्टि से शुचितावाद का आग्रह बार-बार तोड़ा गया। आज हिंदी पत्रकारिता में एक ख़ास क़िस्म की अराजकता देखने को मिल रही है। भूमंडलीय मीडिया के उभार ने इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के चरित्र को बदलते हुए उसे उपभोक्तावादी संस्कृति का संवाहक बना दिया है। साहित्य, संस्कृति और भाषा संबंधी गंभीर मुद्दे इस मीडिया की परिधि से बाहर हो गए। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में प्रतिस्पर्धा करने और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विज्ञापन बाजार से अधिक से अधिक विज्ञापन हथियाने की होड़ में प्रिंट मीडिया ने भी इलैक्ट्रॉनिक मीडिया का अनुकरण करना शुरू कर दिया। गंभीर चिंतन-मनन से दूर होती पत्रकारिता में भाषा का परिवर्तन स्वाभाविक था। पहले पत्रकारिता के क्षेत्र में 'भाषा की योजना' सर्वोपरि थी। वही संपादक और पत्रकार इस क्षेत्र मे लोकप्रिय और सम्मानित होते थे जो शब्दों की नब्ज़ को, उसकी धड़कन को अच्छी तरह पहचानते थे।

आज संपादक की कुर्सी पर सच्चा पत्रकार नहीं, बल्कि 'मार्केटिंग एडिटर' बिठाए गए हैं, जिनका उद्देश्य 'अख़बार को ब्रांड' समझकर उसकी बिक्री बढ़ाने के लिए हर संभव कोशिश करना है, विज्ञापन बाज़ार पर अपने पत्र की बढ़त सिद्ध करनी है। ऐसे में वह विज्ञापनदाताओं की मर्ज़ी और शर्तों के मुताबिक़ अख़बार के समूचे स्वरूप को गढ़ता है और यह स्वरूप बाज़ार के गणित और बाज़ार के सूत्र से निर्देशित होता है। आज कोई संपादक भाषा की मूल्य चिंता में सर उठाने की हिम्मत नहीं कर सकता, क्योंकि झट समझ लिया जाता है कि वह अपनी सीमा से बाहर जा रहा है। इसलिए कोई भी पत्रकार-संपादक भाषा के योद्धा की भूमिका में आने को तैयार नहीं है। भाषा के उद्धारक की भूमिका में सर उठाने वाले व्यक्ति को 'जनेऊधारी तालिबानी' की संज्ञा देकर घोर परम्परावादी, जड़ और पिछड़ा हुआ घोषित कर दिया जाता है। बाज़ारवाद के सिद्धांत से जो भाषा सामने आ रही है वह संस्कारित भाषा नहीं है। हिंदी पत्र-पत्रिकाएं शब्द-ग्रहण, व्याकरण संबंधी मानदंडों में सकारात्मक सोच को सामने नहीं रखती। परिणामस्वरूप शब्द-ग्रहण, व्याकरण संबंधी टूट-फूट धड़ल्ले से बड़े साहस के साथ सामने आ रही है।

बाज़ारवाद की संस्कृति को विकसित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले विज्ञापनों ने भी भाषा को भ्रष्ट करने में अपनी भूमिका निभाई है। 'विज्ञापनी आतंकवाद' ने शब्द संसार के साथ ऐसी छेड़खानी और ज़ोर-ज़बरदस्ती की है कि शब्द से जुड़े सीधे और आत्मीय अर्थ अपनी शक्ति खो बैठे हैं। हिंदी के समाचार-पत्रों में विवाह, व्यापार और आवास संबंधी 75 प्रतिशत विज्ञापन अंग्रेज़ी में दिए जाने लगे हैं। 'अंग्रेज़ी की खुरचन के रूप' में जो विज्ञापन हिंदी पत्रों में प्रकाशित होते हैं, वे हिंदी की प्रकृति को बिगाड़ते हैं।

'मार्केटिंग' संपादकों की दृष्टि भाषिक संरचना पर नहीं वरन विज्ञापन के बाज़ार पर गड़ी रहती है। विज्ञापन की लड़ाई में जीत ही पत्रकारिता का असली मिशन है। इसी कारण आज विज्ञापन से बाज़ारोन्मुखी हुए हिंदी प्रिंट मीडिया ने हिंदी की स्वाभाविकता को, उसकी गरिमा को, उसकी शक्ति को बाज़ार के हवाले कर दिया है।

आज हिंदी पत्रकारिता के भाषाई परिदृश्य का एक ही सकारात्मक पक्ष उभरता हुआ दिखाई दे रहा है कि उसमें क्षेत्रीय भाषा के शब्दों और बोलचाल के शब्दों से हिंदी को बल प्रदान करने की कोशिश दिखाई पड़ने लगी है। यद्यपि यह कोशिश अभी किसी अभियान का हिस्सा नहीं बन पाई है, इसलिए व्यापक स्तर पर इसका प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता।

sharma.kumud9@yahoo.com

लेखक वरिष्ठ मीडियाकर्मी हैं। वे लिखित और दिखित दोनों प्रकार की पत्रकारिता में पिछले बीस वर्ष से अपनी साफ़गोई के लिए सराहे जाते हैं। इन दिनों वे 'आजतक' के प्राइम टाइम एंकर और एग्ज़िक्यूटिव एडिटर हैं।

भाषा के लिए बैचेनी होनी चाहिए

पुण्य प्रसून वाजपेयी

साहित्य और पत्रकारिता का तारतम्य कब कैसे टूटा और कैसे संवाद की भाषा शहरी मिजाज़ के साथ पत्रकारिता ने अपना ली, इसके लिए कोई एक वक्त की लकीर तो खींची नहीं जा सकती, लेकिन यह कहा जा सकता है कि 1991 के बाद जब सत्ता ने ही कल्याणकारी राज्य की जगह उपभोक्तावादी राज्य की सोच अपना ली, तो सत्ता की नीतियां उन नागरिकों से भी हट गईं, जो उपभोक्ता नहीं थे। शायद इसी दौर में दो प्रवृत्तियां आईं, पहली, अंग्रेज़ी अख़बारों से हिंदी अख़बारों में अनुवाद का चलन और दूसरी, उसके बाद निजी समाचार चैनलों के ज़रिए हिंग्लिश का अपनाया जाना। यह सोच उपभोक्ताओं को लेकर ही जागी। पत्रकारिता को भी लगा कि उसके उपभोक्ता जिस भाषा को सरलता से बोलते हैं, उसी भाषा को पत्रकारिता भी अपना ले तो ज़्यादा जल्दी पाठकों से जुड़ा जा सकता है।

फिर खुली अर्थव्यवस्था ने जब सब कुछ बाज़ार के हवाले करते हुए बाज़ार को ही मानक मान लिया तो बाज़ार की भाषा ठीक वैसी ही चल पड़ी जिसमें पत्रकारिता को भी उत्पाद के तौर पर ले लिया गया। ध्यान दें तो यह बहुत बारीक रेखा है कि कैसे राज्य सत्ता की सोच बदलने के साथ हर वह धंधा बदल जाता है जो पूंजी पर टिका होता है और जिसका पहला और आख़िरी मंत्र मुनाफा बनाना ही होता है। मीडिया या पत्रकारिता दोनों ही इससे हटकर नहीं हैं। कह यह भी सकते हैं कि अब वह दौर नहीं कि साहित्यकार संपादक हो जाए या संपादक किसी साहित्यकार की तर्ज पर रचता-बसता दिखे। लेकिन सत्ता के नज़रिए से अगर भाषा की सत्ता को समझें तो मनमोहन सिंह/सोनिया गांधी से नरेन्द्र मोदी के हाथों में सत्ता जाने के पीछे भाषा की ताक़त को समझना होगा।

मनमोहन सिंह और सोनिया गांधी दस बरस की सत्ता के दौर में बेहद कम हिंदी में बोल पाए। कहें तो जब भी बोले वह हिंदी को मज़ाक में लेने से कहीं ज़्यादा रहा। वहीं 2014 के चुनाव प्रचार के दौरान नरेन्द्र मोदी ने जिस तरह हिंदी भाषा का प्रयोग लच्छेदार तरीके से किया और आम जनता से वह संवाद बनाते चले गए उसमें पहली बार राजनीतिक भाषा की ताक़त कांग्रेस को भी समझ में आ गई और सोनिया गांधी/राहुल गांधी को भी।

पिछले दिनों दो वाकये ऐसे हुए, जिन्होंने सत्ता और विपक्ष को लेकर बहुसंख्यक जनता की भाषा हिंदी की ताक़त का एहसास सियासी राजनीतिक दलों को करा दिया। पहला तो कांग्रेसी नेता गुलाम नबी आज़ाद ने बात-बात में जानकारी दी कि हिंदी का प्रभाव बड़ी तेज़ी से जनता के बीच जाता है,

क्योंकि न्यूज़ चैनलों के दौर में हिंदी में अपनी बात कहकर कहीं ज़्यादा बड़े तबके को प्रभावित किया जा सकता है, तो अब राहुल गांधी और सोनिया गांधी भी हिंदी बोलते नज़र आएंगे। वहीं भूमि अधिग्रहण अध्यादेश को लेकर जब सियासी हंगामा संसद से सड़क तक बढ़ा तो संसद में वित्त मंत्री अरुण जेटली ने अंग्रेज़ी में जवाब दिया, लेकिन उसका प्रभाव कुछ ज़्यादा पड़ा नहीं तो प्रधानमंत्री मोदी तक को लगा कि मामला किसानों का है और भूमि अधिग्रहण को लेकर देश की उस बहुसंख्य जनता को समझाना है जो वोटर है, तो जवाब हिंदी में ही देना होगा। उसके तुरंत बाद लच्छेदार हिंदी को मराठी शैली में बोलते हुए केंद्रीय मंत्री नितिन गडकरी सामने आ गए और झटके में उन्होंने जिन मुहावरों के आसरे सोनिया गांधी और राहुल पर निशाना साधा उसने ख़बरों में नितिन गडकरी को लाकर खड़ा कर दिया और हिंदी में बोले जा रहे राजनीतिक वक्तव्य अंग्रेज़ी न्यूज़ चैनलों में भी सुर्खियां पाने लगे।

दरअसल भाषा की ताक़त होती क्या है? राजनीतिक तौर पर ही नहीं बल्कि सामाजिक तौर पर भी सरोकार और संवाद बनाने वाले माध्यमों के लिए अब यह क्यों ज़रूरी होता चला जा रहा है कि वह जनभाषा का प्रयोग करें? इसके लिए बाज़ार अर्थव्यवस्था के साथ-साथ देश के सामाजिक-आर्थिक हालात को भी परखना होगा, जो 1991 के बाद से लगातार हाशिए पर धकेल दिए गए। उस सवाल को भी नए सिरे से मथना होगा कि पत्रकारिता की भाषा, सत्ता की भाषा होनी चाहिए या आम जन की भाषा। यह दोनों सवाल पत्रकारिता या मीडिया को लेकर इसलिए मौजूं हैं क्योंकि दो दशक का वक्त हो चुका है जब से देश में सरकारी ख़बरों से इतर दूरदर्शन पर ही निजी ख़बरों को जगह मिली और बीते डेढ़ दशक से निजी न्यूज़ चैनल उसी तर्ज पर पनपे, जैसे नवरत्न को बेचकर डिसइंवेस्टमेंट की थ्योरी देश में शुरू हुई। लेकिन पूंजी पर टिका बाज़ार भारतीय जनमानस के अनुकूल रहा नहीं, क्योंकि सामाजिक तौर पर महज बीस से पच्चीस करोड़ उपभोक्ताओं के लिए तो जेब और बाज़ार दोनों खुले, लेकिन बाकियों के लिए हालात और दुविधापूर्ण होते चले गए। समाज में आर्थिक दूरियां बढ़ती चली गईं।

कमोबेश यहीं से पत्रकारिता और भाषा का सवाल भी खड़ा होता है। हिंग्लिश गायब होने लगी, लेकिन पटरी पर लौटते हिंदी पत्रकारों के सामने संकट भाषा को लेकर उभरा। हिंदी का प्रयोग कैसे किस रूप में करना है और न्यूज़ चैनल के स्क्रीन पर अपनी महत्ता भी बरकरार रखनी है। इसके लिए दो ही तरीके हो सकते थे, पहला कंटेंट और दूसरा भाषा को लेकर सामाजिक-आर्थिक समझ। राजनेताओं की बहस में उलझते चैनलों का चेहरा हो या राजनेताओं के चेहरों के ज़रिए पत्रकारिता का मिजाज, दोनों हालातों में पत्रकार या न्यूज़ एंकर के पास कोई धारदार शैली होनी चाहिए। यह तब ही संभव है, जब पत्रकार के सरोकार समाज के विभिन्न तबकों से हों। दिल्ली और पटना का एक मिजाज़ हो नहीं सकता है। ठीक उसी तरह जैसे कश्मीर के आतंक को छत्तीसगढ़ के माओवादियों के साथ जोड़ कर नहीं देखा जा सकता। पत्रकार अगर ये बारीकियां नहीं समझेंगे, तो ख़बरों में राजनेता उन पर भारी दिखेगा।

मसलन प्रधानमंत्री मोदी बिहार के 'डीएनए' को लेकर नीतीश कुमार पर हमला करते हैं और नीतीश कुमार 'जुमला बाबू' कहकर प्रधानमंत्री मोदी पर हमला करने से नहीं कतराते। अब सवाल है कि पत्रकारिता अगर डीएनए को खांटी बिहार की राजनीति के परिप्रेक्ष्य में न समझ पाए और विज्ञान के नज़रिए से टेलीविज़न स्क्रीन पर व्याख्या करने लगे तो किसकी रुचि जागेगी? सियासत तेज़ होगी तो कई नए मुहावरे गढ़े जाएंगे, क्योंकि राजनीति सत्ता संघर्ष में भी अब हर राजनेता समझ रहा है कि उसे जनभाषा में ही संवाद बनाना होगा, नहीं तो उसका कहा न मीडिया में चलेगा, न अख़बारों तक पहुंच पाएगा।

लंबे वक़्त तक लालू प्रसाद यादव इसीलिए न्यूज़ चैनलों के डार्लिंग ब्वॉय बने रहे, क्योंकि गांव-देहात के लोगों से अपने बोल या कहीं भाषा के ज़रिए सीधा संवाद बनाते रहे, जिसे सुनने में एक नयापन भी था और वह शहरी अंग्रेज़ी मिजाज़ के उस आवरण को तोड़ता भी था, जो धीरे-धीरे एक रसता ला रहा था। यहां यह भी समझना होगा कि न्यूज़ चैनलों के 85 फीसदी दर्शकों के लिए यह मायने नहीं रखता कि वह हिंदी का चैनल देख रहे हैं या अंग्रेज़ी का। यानी, एक ही ख़बर अगर ज़्यादा रोचक तरीके से या फिर ज़्यादा बेहतर तस्वीरों के साथ अंग्रेज़ी में भी चल रही है तो उसे भी देखने में किसी भाषा के दर्शकों को परहेज़ नहीं होता। हालांकि इसके समानांतर अख़बार या हिंदी पत्रिकाओं के सामने यह सवाल है कि न्यूज़ चैनल तो किस्सागोई से चल सकते हैं, लच्छेदार भाषा से चल सकते हैं, लेकिन अख़बारों का क्या करें? इस दायरे में फणीश्वरनाथ रेणु की पटना में आई बाढ़ पर दिनमान में छपी रिपोर्टिंग को पढ़ना चाहिए। इस लेखन को लेकर राजकमल प्रकाशन ने 'ऋणजल धनजल' नामक किताब भी छापी है। वैसे साहित्यकारों की पत्रकारिता का मिजाज़ धर्मयुग, दिनमान, रविवार, साप्ताहिक हिन्दुस्तान सरीखी पत्रिकाओं में सत्तर-अस्सी के दशक में देखा जा सकता है, जहां यह साफ लगता है कि साहित्य पत्रकारिता से कई कदम आगे चलता है।

उपभोक्ता संस्कृति के दौर में, लेकिन साहित्य की धार में भोंथरापन आया और पत्रकारिता राजनीतिक सत्ता के मोहजाल में फंसी, तो उसकी भाषा भी कहीं उपभोक्ता तो कहीं मुनाफ़ा तो कहीं सत्ता की मलाई खाने वाली हो गई। यह भी तय है कि चापलूसी या पेट भरी भाषा के ज़रिए उस समाज में संवाद बनाना बेहद मुश्किल है जो बहुसंख्यक समाज लगातार विकल्प की तलाश में भटक रहा है और संसदीय राजनीति तले हर बार लोकतंत्र के नाम पर छला भी जा रहा है।

punyaprasun@gmail.com

लेखिका मीडिया और साहित्य पर अपने काम के लिए भारत के राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी द्वारा स्त्री-शक्ति पुरस्कार के अतिरिक्त अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी हैं। इनकी संपादित किताब - तिनका तिनका तिहाड़ - जेलों पर अनूठे प्रयोग की वजह से लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड्स में शामिल की गई है। वे इस समय दिल्ली विश्वविद्यालय के लेडी श्री राम कॉलेज में पत्रकारिता विभाग की अध्यक्ष हैं।

हिंदी के नाम पर कुछ मीठा हो जाए

डॉ. वर्तिका नन्दा

हिंदी सांस में, पानी में, पहाड़ में, खेत में, सेल्फी में, शहर में, देहात में है। इसलिए ज़ाहिर है कि हिंदी की धमक मीडिया में भी है। नब्बे के दशक में जब निजी मीडिया भारत में दस्तक दे रहा था, मुझे देश के पहले निजी चैनल ज़ीटीवी का हिस्सा बनने का मौका मिला। दिल्ली के साउथ एक्सटेंशन के जे-ब्लॉक की एक गली के 27 नंबर रिहायशी मकान में जीटीवी का दफ्तर, तब यह नहीं जानता था कि यहां एक ऐसा इतिहास रचा जा रहा है जिसे दुनिया हमेशा याद रखेगी। इस मकान में देश के पहले हिंग्लिश न्यूज बुलेटिन के प्रसारण ने हिंदी के समाज को ख़ुशी और नाख़ुशी दोनों ही दी। हिंदी के कई पुरजोर समर्थकों को लगा कि हिंदी और अंग्रेज़ी की मिलावट का यह प्रसारण भाषा की गरिमा को ही चौपट कर डालेगा, जबकि दूसरे हिस्से का कहना था कि इससे हिंदी का फैलाव बढ़ेगा।

समय ने एक करवट ली। बुलेटिनों की भाषा तय हो गई। हिंग्लिश का झमेला ख़त्म हुआ। 1996 में जब मैं एनडीटीवी का हिस्सा बनी, तब वह ख़बरों की भाषा की उधेड़बुन के बीच मीडिया और जनता के बीच पुल बनने के रास्ते खोज रहा था। तय हुआ कि एक ही चैनल पर हिंदी और अंग्रेज़ी के अलग-अलग बुलेटिन दिए जाएं। यह परंपरा दूरदर्शन की स्थापित परंपरा से अलग थी क्योंकि यहां कलेवर अलग था और मकसद भी। यह बदलाव जनसेवा माध्यम की तरह जनता के लिए ही नहीं था, यह बाज़ार के लिए था और बाज़ार से चाहिए था, पैसा। लेकिन इस आर्थिक ज़रूरत के बावजूद निजी चैनलों की हिंदी ने कहानी को नए सिरे से लिख ही दिया। आज उन पन्नों को एक साथ समेट कर पढ़ने पर लगता है कि हिंदी को लेकर न तो शोक सभा करने की ज़रूरत है और न ही उसके भविष्य को लेकर कोप भवन में जा बैठने की। हिंदी अपने उछाल पर है। अगर मीडिया मे हिंदी की स्थिति डगमगा रही है तो यही बात काफी हद तक अंग्रेज़ी और बाकी भारतीय भाषाओं के लिए भी कही जा सकती है। इसलिए एहतियात की ज़रूरत वहां भी है। हिंदी के साथ सौभाग्य इस बात का भी है कि इतरा कर चलने के बावजूद हिंदी खुद को संवारने और निखारने के प्रयास में लगातार लगी रहती है। वह न्यूज रूम में उस नोंक-झोंक का हिस्सा हमेशा रही जहां बहस यह थी कि शब्द लायब्रेरी हो या वाचनालय। खाना हो या व्यंजन। पानी हो या जल। शब्दकोश की हिंदी और आम जनता की हिंदी के बीच मीडिया की हिंदी ने जनता की नब्ज को टटोलते हुए अपनी जगह बनाने की हिम्मत और साफगोई दिखाई है। जरा मीडिया में हिंदी की यात्रा पर भी तो गौर फरमाइए। जब निजी चैनलों पर ख़बर के प्लेटफॉर्म पर हिंदी उतरी तो अंग्रेज़ी वालों ने उसे देवनागरी की बजाए रोमन में लिखना ही मुनासिब समझा। ज़ाहिर है कि आसानी चुनने के इस फेर में हिंदी की अनाड़ी फुटबॉल खेली

जाने लगी।

भाषा की स्लेट हिलने लगी और टेलीप्रॉम्प्टर से जो शब्द पढ़े जाने लगे, वे अक्सर ग़लतियों से भरपूर रहे। हिंदी को लिखने और पढ़ने वालों में बड़ी तादाद उन्हीं की थी जो हिंदी वाले नहीं थे। अंग्रेज़ी के मीडिया मालिक इस मुगालते के साथ आगे बढ़ रहे थे कि हिंदी वही सजेगी जिसे अंग्रेज़ी वाले सजाएंगे। माना यह भी गया कि हिंदी वाले ख़ालिस और क्लिष्ट हिंदी लिखेंगे। उनकी लिखी भाषा बाज़ार में बिक ही नहीं सकती। इसलिए अंग्रेज़ीदां स्कूलों में पढ़े युवकों से ही घिसटती-भटकती हिंदी बुलवा कर काम चलाया जाए। दर्शक अंग्रेज़ी वालों को हिंदी बोलता देख खुश ही होगा (मजे की बात यह कि ऐसी छूट हिंदी वालों को भी दी जाए, इसकी तब कल्पना तक नहीं की गई) । कहानी बाज़ार की थी। करो वही जो बाज़ार को भाए। लेकिन बाज़ार भी ख़ालिस की ही मांग करता रहा। कुछ दिनों तक तो प्राइवेट मीडिया की बचकानी और कई बार बेहद गंभीर ग़लतियों को जनता और विश्लेषक यह कह कर माफ़ करते रहे कि नए बच्चे से ग़लतियां हो ही जाती हैं। बाद में बच्चा बड़ा हुआ तो ग़लतियों को इस तरह नज़रअंदाज़ करना आसान भी न रहा।

अब फिर एक नई करवट की बारी आई। हिंदी वाले हिंदी देखें। अंग्रेज़ी वाले अंग्रेज़ी। चैनलों का विभाजन सीधे तौर पर होने लगा। इधर बाज़ार ने भी हिंदी की पताका फहरा दी। कथित टीआरपी हफ्ते दर हफ्ते यह ऐलान करने लगी कि हिंदी के चैनल सबसे ज़्यादा देखे जाते हैं। हिंदी के मुहावरे, उसकी लचक, उसकी मस्ती पसंद की जाती है। हिंदी का रिपोर्ट कार्ड हफ्तों और महीनों में टॉप पर रहा। अब हिंदी चैनलों ने अंग्रेज़ी से लिए उधार के एंकरों की बजाए अपने प्रोडक्ट खुद तय करने शुरू कर दिए। हर हिंदी चैनल ने अपने ब्रांड एंबेसडर बना लिए और उनके नाम पर तिजोरियां भरनी भी शुरू कर दीं। हिंदी अख़बारों और हिंदी में पत्रकारिता पढ़ाने वाले संस्थानों में ऐसे लोगों के लिए हांक लगाई जाने लगी जो हिंदी बेल्ट के अनुसार ख़बर तैयार करें। इस दौर में हिंदी की अशुद्धियों को भी ख़ूब नज़रअंदाज़ किया गया। कई ऐसे पत्रकार टीवी के लिए चुन लिए गए जिनका श और स हमेशा ग़लत डिब्बे में ही जाकर गिरता रहा। चूंकि मालिकों को हिंदी ज़्यादा समझ में नहीं आती थी, कई फैसले हड़बड़ी में लिए गए। नतीजतन अब भी टीवी चैनलों पर कई ऐसे पुराने पत्रकार मौज़ूद हैं जिनकी वर्तनी आज भी सुधर नहीं सकी है और भविष्य में उसके सुधरने के कोई आसार भी नहीं हैं। इसलिए हिंदी का जो कथित अशुद्ध चेहरा टीवी पर दिखता है, उसके लिए मौजूदा पीढ़ी को ही ज़िम्मेदार ठहराना उन्हें ठगने जैसा ही होगा।

लेकिन अभी एक बदलाव और भी बाकी था। नए दौर ने पाया कि अंग्रेज़ी की दुकान अब हिंदी की तरफ आना चाह रही है। हवा उलटी दिशा में बहने लगी। अगर हिंदी के पत्रकार अंग्रेज़ी में ओबी करने की कोशिश में लगे थे तो अंग्रेज़ी के पत्रकार भी इससे पीछे नहीं रहे। अब उनके लिए हिंदी एक ज़रूरत बन गई। इसकी एक बड़ी मिसाल 2004 में देखी जब एनडीटीवी के मालिक प्रणव रॉय ने पाकिस्तान के प्रधानमंत्री जमाली का हिंदी में इंटरव्यू किया। एक और मौके पर वे राजनीति के हास्य कलाकार लालू यादव से भी हिंदी में बोलते देखे गए। उधर प्रभु चावला, एम.जे.अकबर और वीर सांघवी भी हिंदी में बोलने लगे। लेकिन हिंदी का असर सिर्फ न्यूज रूम की स्टाइल बुक और ख़बर की दुनिया को संचालित करने वाले मालिकों और ख़बरों को जमा कर लाने वाले पत्रकारों पर ही नहीं पड़ा।

हिंदी ने राजनीतिक गलियारे में जमकर धमा-चौकड़ी मचाई। हिंदी न बोल पाने वाली सोनिया गांधी हिंदी में लंबे भाषण देने लगीं। जयललिता ने भी हिंदी में अपना हाथ आजमा लिया। राजनीतिक अखाड़ों में हिंदी की पाठशाला खुलने लगी। हिंदी का ककहरा सीखना राजनीति के टेस्ट में पास होने की पहली शर्त बनने लगा। नतीजतन बड़े नेता टीवी चैनलों को अंग्रेज़ी में बाइट देने के बाद खुद ही हिंदी में भी बाइट देने का आमंत्रण देने लगे। एनडीटीवी ने कुछ साल पहले जब राजनीतिक हंसी के तौर पर 'गुस्ताखी माफ' नाम के एक कार्यक्रम की शुरूआत की तो एक बड़े नेता ने इस बात पर कड़ा एतराज जताया कि उन पर कार्टून क्यों नहीं बनाए जा रहे। हिंदी चैनल में दिखना नेताओं के लिए च्यवनप्राश का काम करने लगा। वे जान गए कि संसद से सड़क तक पहुंचना होगा तो हिंदी का हाथ थामना ही होगा। हिंदी न आना या उसे बोल पाने में अक्षमता जाहिर करना फैशन की बात नहीं है। फैशन में रहना हो तो भी हिंदी चाहिए और वोट बटोरने हों तो भी। हाल यहां तक पहुंचा कि 2014 के चुनाव सोशल मीडिया के मैदान पर लड़े गए। वादों-विवादों-अपवादों की कहानी का बड़ा हिस्सा भी हिंदी में ही कहा गया। आज भी हिंदी के सभी प्रमुख न्यूज चैनल नेताओं पर राजनीतिक कार्टून और टिप्पणियां हिंदी में देकर खूब तालियां बटोर रहे हैं।

हिंदी असल में ऊर्जा की भाषा है। हिंदी गति है, वीर गति नहीं। बहस का केंद्र यह रखने की ज़रूरत नहीं है कि मीडिया ने हिंदी को क्या दिया। यहां कोई बहस है ही नहीं। बात यहां यह सोच कर मुस्कुराने की है कि हिंदी ने मीडिया को क्या दिया। ख़बरों के केंद्र से लेकर न्यूज एंटरटेंमेंट चैनल, रेडियो, प्रिंट, फ़िल्म, नाटक से लेकर हर विधा में हिंदी ने अपने को कायम कर लिया है। अब विश्व हिंदी सम्मेलनों में हिंदी की चिंता से ज़्यादा जोर इस पर हो कि हिंदी वाले कुछ और सकारात्मक कैसे हों। छोटे गुट टूटें और हिंदी बने पूरी तरह से ग्लोकल। तिनके तिनके जोड़ कर हिंदी अब हिमालय हो चुकी है। इसलिए हिंदी के चेहरे पर इस समय उत्सव की-सी जो चमक और दमक है, उसे लेकर मुंह मीठा करना तो बनता ही है, क्योंकि हिंदी है, तो मीडिया है। हिंदी है, तो हम हैं।

vartikamedia@gmail.com

हिंदी संक्रमण के दौर में

प्रीति सागर

लेखिका आलोचनात्मक एवं सृजनात्मक लेखन में रुचि रखती हैं। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में उनके शोध लेख, कविताएं, गज़ल आदि प्रकाशित हुए हैं। वे हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं।

भाषा सामाजिक-सांस्कृतिक निर्मिति है। समाज, संस्कृति और भाषा का अटूट संबंध है। मानव समाज के विकास के साथ ही भाषा का विकास भी जुड़ा हुआ है। विश्व की भाषाओं का वर्तमान स्वरूप एक लम्बी विकास यात्रा का परिणाम है, किसी भी भाषा का स्वरूप हमेशा के लिए निश्चित नहीं होता। भाषा की परिवर्तनशीलता के संबंध में सभी एकमत हैं। हिंदी भी इसका अपवाद नहीं है। अनेक मोड़ों से मुड़ते हुए हिंदी ने एक नवीन रूप धारण कर लिया है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में अन्य संस्कृतियों और भाषाओं के संयोग से हिंदी की एक और छवि उभर कर आई है। हिंदी के इस नए स्वरूप को सामने लाने और विकसित करने में जनसंचार माध्यमों की अहम भूमिका रही है। प्रत्येक जनमाध्यम की भाषा दूसरे माध्यम से थोड़ी पृथक है। प्रिंट-मीडिया और दैनिक व्यवहार की भाषा में यह अन्तर दिखाई देता है। टीवी और केबल चैनल सूचनाएं ही प्रदान नहीं करते वास्तव में ये माध्यम भी मुख्यत: मनोरंजन और व्यावसायिक लाभ का लक्ष्य लेकर चलते हैं। इनका प्रसार व्यापक है अत: इन माध्यमों की हिंदी व्यापक समाज तक पहुंच रही है। उसमें कई तरह के बदलाव आ रहे हैं। टीवी और केबल चैनल्स के कार्यक्रम मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं, सूचना प्रधान और मनोरंजन प्रधान। सूचना प्रधान कार्यक्रमों में समाचार, समसामयिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक घटनाएं, वार्ता एवं परिचर्चा, रिपोर्ट, वृत्तचित्र जैसे कार्यक्रमों में मानक हिंदी को वरीयता दी जाती है। कहीं समझाने के लिए सरल सहज शब्दावली का प्रयोग किया जाता है लेकिन मानक रूप के निकट रहने की कोशिश की जाती है।

मनोरंजन प्रधान कार्यक्रमों जैसे धारावाहिक हिंदी फ़िल्मी गाने, गेम, शो आदि में, प्राय: हिंदी का ऐसा रूप प्रवृत्त होता है जो जनसाधारण की पकड़ में हो। इसलिए ऐसे कार्यक्रम में हिंदी के साथ प्रयोग करने की पूरी छूट ली जा रही है जैसे कि धारावाहिकों में संवादों में आवश्यकतानुसार क्षेत्रीय या अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग किया जाता है। पौराणिक धारावाहिकों में प्राय: संस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रयोग किया जाता है। सामाजिक और हास्य प्रधान धारावाहिकों की हिंदी बोलचाल के

अधिक निकट रहती है। विशुद्ध मनोरंजन या रोचकता में वृद्धि हेतु भारतीय हिंदी फ़िल्मों को देखा जा सकता है। इनमें मानक हिंदी, ब्रज, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी आदि से संयुक्त हिंदी, प्रादेशिक प्रभावों से युक्त हिंदी, जैसे पंजाबी हिंदी, बम्बइया हिंदी, हैदराबादी हिंदी, कलकतिया हिंदी आदि।

इलैक्ट्रॉनिक मीडिया और बाद में सूचना क्रान्ति आने के बाद सम्पूर्ण विश्व एक वैश्विक ग्राम में बदल गया है, जिसका प्रभाव भाषा पर भी दिखाई देता है। आज विश्व में कई भाषाएं मर रही हैं या अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही हैं। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया ने हिंदी को जीवन्तता प्रदान की है। टीवी और चैनलों के कार्यक्रमों से किसी भी समाज की अभिरुचि और जागरूकता का पता चलता है। टीवी पर हिंदी विज्ञापनों की बाढ़ यह दर्शाती है कि हिंदी बाज़ारवाद का शिकार हो रही है। बाज़ार की भाषा होने के कारण आज हिंदी जनसंचार माध्यमों की अनिवार्य आवश्यकता बन गई है। हिंदी को विश्वभाषा के रूप में पहचान दिलाने में भी जन-माध्यमों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। भारत में हिंदी एक विस्तृत क्षेत्र की भाषा है और सम्पूर्ण देश में सम्पर्क सूत्र का माध्यम भी। किन्तु राजकाज की हिंदी और जनमाध्यमों की हिंदी में अन्तर है और केबल चैनल के कार्यक्रमों में प्रयुक्त हिंदी वह हिंदी नहीं है जो विश्वविद्यालयों में पठन-पाठन के केन्द्र में है या जिसके शुद्ध स्वरूप के प्रति व्याकरणविद् या भाषाविद् सचेत रहे हैं। टीवी एवं केबल चैनलों के कार्यक्रमों में प्रयुक्त हिंदी का दायरा कहीं ज़्यादा विस्तृत है। इसमें शुद्धता का खास ख्याल नहीं रखा जाता।

बाजारवाद के प्रभावों ने भी जनसंचार माध्यमों में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा दिया। शुरुआती दौर में इस हिंदी या हिंग्लिश को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया लेकिन आज इस नए प्रयोग को सकारात्मक दृष्टि से देखा जा रहा है। पहले कार्यक्रमों को मनोरंजक रूप प्रदान करने के लिए ऐसे प्रयोग किए गए। धीरे-धीरे प्रवृत्ति व्यापक होती गई। क्षेत्रीय टीवी और केबल चैनल के कार्यक्रमों में तथा अन्तरराष्ट्रीय और देशव्यापी चैनल की हिंदी में अंग्रेज़ी शब्दों का व्यवहार बढ़ता जा रहा है। हिंदी का एक नया और मिला-जुला स्वरूप हमारे सामने आ रहा और धीरे-धीरे यही हमारे बोलचाल और कामकाज की भाषा बनती जा रही है। पर इस भाषा को देखकर लगता है कि आज की हिंदी संक्रमण के दौर से गुजर रही है। इस मसले पर तमाम पक्षों को गहन विचार-विमर्श करने की ज़रूरत है कि कैसे यह संभव हो कि हिंदी नई स्थितियों के अनुरूप ढलती भी रहे, पर इसका मूल चरित्र नष्ट न हो।

psagarhv@gmail.com

लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में कॉमर्स के एसोसियेट प्रोफेसर हैं, हिंदी के तमाम अख़बारों में वे आर्थिक विषयों पर नियमित लेखन करते हैं। उनकी ख़्याति देश के एक प्रसिद्ध व्यंग्यकार के रूप में भी है। उन्हें अनेक राष्ट्रीय सम्मानों से नवाज़ा जा चुका है।

बिज़नेस मीडिया की ख़ास भाषा हिंदी

डॉ. आलोक पुराणिक

आर्थिक पत्रकारिता में हिंदी का असर यह है कि हिंदी बिजनेस न्यूज चैनल—सीएनबीसी, आवाज़ और हर चैनल के बिजनेस न्यूज केंद्रित कार्यक्रमों के इतने दर्शक हैं, जितने सारी इंग्लिश बिजनेस चैनलों के कुल मिलाकर नहीं है। हिंदी सिर्फ आम आदमी की भाषा ही नहीं है, बल्कि अब यह बिजनेस मीडिया की खास भाषा हो गई है। अगर इतिहास का अध्ययन किया जाए तो पता लगता है कि आर्थिक मीडिया में हिंदी का एक खास स्थान रहा है। खास तौर पर हिंदी के अख़बारों में हुई आर्थिक पत्रकारिता को देखें, तो साफ होता है कि हिंदी दूसरी भाषाओं से शब्द लेने के मामले में बहुत उदार रही है।

आर्थिक-पत्रकारिता है क्या : आर्थिक-पत्रकारिता शब्द में दो शब्द हैं—आर्थिक और पत्रकारिता। आर्थिक का संबंध अर्थशास्त्र से है। अर्थशास्त्र की बहुत शुरुआती परिभाषाओं में एक परिभाषा एल रोबिंस ने दी है— अर्थशास्त्र वह विज्ञान है, जो मानवीय व्यवहार का अध्ययन उन साध्यों और सीमित साधनों के रिश्ते के रूप में करता है, जिनके वैकल्पिक प्रयोग हैं।

ये हैं प्रमुख आर्थिक पत्र-पत्रिकाएं-चैनल : प्रमुख आर्थिक पत्र-पत्रिकाएं इस प्रकार हैं—इकोनोमिक टाइम्स, फाइनेंशियल एक्सप्रेस, बिजनेस स्टैंडर्ड, हिंदू बिजनेस लाइन, मिंट ये तो दैनिक आर्थिक पत्र हैं। इसके अलावा इकोनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, बिजनेस इंडिया, बिजनेस वर्ल्ड, केपिटल मार्केट जैसी पत्रिकाओं को भी मोटे तौर पर आर्थिक-पत्रकारिता के दायरे में रखा जा सकता है। इसके अलावा हर सामान्य अख़बार में भी आर्थिक ख़बरों के लिए स्थान होता है।

बाज़ार ही बाज़ार : आर्थिक पत्रकारिता खासतौर पर बाज़ारों को कवर करती है। सोना-चांदी बाज़ार से लेकर, लेबर बाज़ार से लेकर, शेयर बाज़ार से लेकर तमाम तरह के बाज़ार। बाज़ारों के बग़ैर गुजारा नहीं है। बाज़ार जाए बग़ैर कोई चारा नहीं है। खास-खास बाज़ार ये हैं—सोना-चांदी बाज़ार; धातु बाज़ार; शेयर बाज़ार; फल-सब्जी बाज़ार; शॉपिंग माल; तमाम वस्तुओं के थोक

बाज़ार; तमाम वस्तुओं के रिटेल बाज़ार; आनलाइन बाज़ार-फ्लिपकार्ट, स्नैपडील, एमेजन जैसी आनलाइन दुकानें; अन्य बाज़ार|

आर्थिक पत्रकारिता इन पर फोकस करती है। आइये, देखें पुराने वक्त में हिंदी में बाज़ार-रिपोर्टिंग के क्या हाल थे।

हिन्दुस्तान 10 अक्तूबर 1950, मंगलवार : व्यापार समाचार पेज पर ये रिपोर्टें थीं—बम्बई शेयर बाज़ार की रिपोर्ट : दो कॉलम; कलकत्ता शेयर बाज़ार की रिपोर्ट : सिंगल कॉलम; मद्रास शेयर बाज़ार की रिपोर्ट : सिंगल कॉलम; दिल्ली शेयर बाज़ार की रिपोर्ट : सिंगल कॉलम; दिल्ली सराफा : सिंगल कॉलम।

दिल्ली के तेल बाज़ार के भावों की टेबल :
जिसमें मूंगफली, गोला, अलसी, महुआ, अरंडी, नीम, बिनौला रिफाइंड, तिल के टीन के भाव बताए गए हैं।

हिन्दुस्तान 10 अक्तूबर 1950, मंगलवार :
व्यापार समाचार पेज की एक रिपोर्ट में सोमवार के विभिन्न मंडियों के भाव बताए गए। दिल्ली-गल्ला छिलका चना, चूरी, चना, गुवार, मूंग, उड़द, मसूर, अरहर, चना कंट्रोल के भाव बताए गए। तिलहन-सरसों, बिनौला दक्खनी, काला, तिल सफेद, खल-सरसों, बिनोला, तिल, नया गुड़ के भाव, दिल्ली किराना भाव।

बम्बई का जलवा है, बिलकुल है। इतना है कि वहां के बाज़ार क्यों बंद रहे, यह भी बताया जाता रहा है— हिन्दुस्तान 10 अक्तूबर 1950, मंगलवार व्यापार समाचार पेज पर दिया गया है— 'तिल व तेल के बाज़ार एक सदस्य की मृत्यु हो जाने के फलस्वरूप बन्द रहे।' 'मसाले काली मिर्च तैयार, दालचीनी, लौंग, कपूर, पारा के भाव बताए गए।'

भटिंडा भी अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा था।

सो, बाज़ार तरह-तरह के थे और हैं। रुई से लेकर तेल के बाज़ार, टेक्सटाइल से लेकर टेक्सटाइल कंपनियों के शेयरों के खेल के बाज़ार। हल्दी बम्बई से लेकर हल्दी हरोट, हल्दी मच्छली, हल्दी निजामाबादी, हल्दी गट्ठे तक के बाज़ार। गोला बम्बई बड़ा, गोला बम्बई छोटा, कटोरी, किशमिश, आवजोश से लेकर पिश्ता, बादाम कागजी, बादामी गीरदी, बादाम दुजावी काठा, गोला नं. 18, इलायची छोटी, इलायची बड़ी, लौंग, दालचीनी, मिर्च काली, मिर्चलाल, सूंठ एलपाई, ज़ीरा मामूल, ज़ीरा सफेद, सौंफ, धनिया, अमचूर, पोस्तदाना, गूंद मकलाई, कत्था कानपुरी, चाय काली, सुपारी, सींख नारियल, फटकरी सफेद, फटकरी लाल, सज्जी काली, मेंहदी पत्ता, मेंहदी पिस्सी, नारियल, सुतली, गिरी बादाम, काजू के बाज़ार।

हिंदी की बाज़ार रिपोर्टिंग की भाषा में कमोबेश बहुत फ़र्क नहीं आया है।

इंग्लिश का भी स्वागत : बुल ये और बीयर ये यानी तेजड़िया और मंदड़िया। अब भी अकसर ये बुल-बीयर, तेजड़िया-मंदड़िया जैसे शब्द बाज़ार रिपोर्टिंग में सुनाई पड़ जाते हैं। ये हैं क्या, इन्हे समझने की कोशिश करेंगे कुछ पुरानी रिपोर्टों के माध्यम से—

हिन्दुस्तान 4 नवम्बर, 1954 : बम्बई, 3 नवंबर। स्थानीय सराफे में आज तेजड़ियों की कटान तथा समर्थन की कमी के कारण चांदी वायदे के भावों में गिरावट आई, जबकि मंदड़ियों की पटान से सोना वायदे मजबूत रहे। अन्य बाज़ारों की सक्रियता की सहानुभूति में सराफे के भावों में सुधार होता दिखाई देता है। कलकत्ता की कमजोर ख़बरों के कारण चांदी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा जबकि पेशेवर समर्थन के फलस्वरूप चांदी के भावों में बंद होते समय सुधार हो गया। चांदी की 15 सिल्लियों की आमद रही, जबकि 8 सिल्लियां उठाई गईं। 4,000 तोले सोने की आमद हुई व 3,000 तोले सोना उठाया गया।

तेजड़ियों से मतलब बाज़ार में ऐसे कारोबारियों से होता है, जो भविष्य के भावों के बारे में सकारात्मक रुख रखता है यानी उन्हें उम्मीद होती है कि आने वाले दिनों में भाव ऊपर जाएंगे। इस उम्मीद में ये सौदे करते हैं। पर अगर इन्हें भविष्य के बाज़ार से उम्मीद न हो, तो ये अपने सौदे काटते हैं या कैंसल करते हैं। इसे कटान कहा जाता है। मंदड़िये वे कारोबारी होते हैं, जो इस उम्मीद में कारोबार करते हैं कि आने वाले टाइम में भाव गिरेंगे। मंदड़िये, जैसा कि नाम से साफ है, मंदी की भावना से प्रेरित रहते हैं। मंदड़ियों को जब लगता है कि भविष्य में भाव तेज हो सकते हैं तो ये अपने भविष्य के सौदों को पटाते हैं या बैलेंस करते हैं। इसे मंदड़ियों की पटान कहा जाता है।

समर्थन से आशय मांग के समर्थन से है, जैसे समर्थन के कारण चांदी के भाव बढ़ गए, यानी चांदी में मांग आने के कारण इसके भाव बढ़ गए। इस रिपोर्ट में ग़ौर की बात यह भी है कि एडजस्टमेंट शब्द का प्रयोग हुआ है। बाज़ार रिपोर्टिंग ने विशुद्ध हिंदी के प्रति विशेष आग्रह आम तौर पर नहीं रखा है। मिली-जुली भाषा बाज़ारों की ख़ासियत रही है और यह मिली-जुली भाषा ही बाज़ार रिपोर्टिंग की भी ख़ासियत रही है। बाज़ार-रिपोर्टिंग में शुद्धतावादी आग्रह नहीं चलते, हिंदी, इंग्लिश का मिला-जुला समन्वय रहता है।

मुलायम, नरम, स्थिर, वायदा जैसे शब्द ठेठ हिंदी के ठाठ की निदर्शना करते हैं। कुल मिलाकर आर्थिक पत्रकारिता में हिंदी भाषा ऐसी भाषा के तौर पर सामने आई है, जिसने बाकी भाषाओं से ख़ासा समन्वय दिखाया है, पर ठेठ हिंदी के ठाठ भी छोड़े नहीं हैं। हिंदी सबको मिलाने वाली भाषा है, यह बात हिंदी की आर्थिक पत्रकारिता को देखकर गहरे तौर पर रेखांकित होती है।

puranika@gmail.com

लेखक लोक सेवा आयोग के पूर्व सदस्य हैं। वे लंदन में आयोजित छठे विश्व हिंदी सम्मेलन में भी पर्चा प्रस्तुत कर चुके हैं।

हिंदी का विस्तार पाता विश्व

प्रकाश बरतूनिया

मीडिया में हिंदी का वर्चस्व था ही अब इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में भी हिंदी बहुत तेज़ी से लोकप्रियता प्राप्त कर रही है। मीडिया को प्रजातंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है अर्थात व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका के पश्चात चौथा स्थान मीडिया का माना जाता है। जीवन के अनेक क्षेत्रों में मीडिया की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह शक्ति के एक नए केन्द्र के रूप में उभर कर सामने आ रहा है। मीडिया के प्रमुख अंग प्रिन्ट और इलैक्ट्रॉनिक दोनों इसके दो नेत्रों की भांति कार्य करते हैं। इन दोनों नेत्रों ने सम्पूर्ण विश्व को अपने में समा लिया है। प्रिन्ट मीडिया ने यदि अपनी संग्रहणीयता के कारण जन साधारण में पैठ बनाई है तो इलैक्ट्रॉनिक मीडिया ने अपनी बहुरंगी छवि से सबको आकर्षित किया है।

भारत में वर्ष 2013-14 के प्रकाशनों के सर्कुलेशन के आंकड़ों के अनुसार कुल संख्या 45,58,86,212 में से केवल हिंदी भाषा के प्रकाशनों के सर्कुलेशन की संख्या 22,64,75,517 (प्रेस इन इंडिया 2013-14 सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार) है। इनमें उर्दू एवं क्षेत्रीय भाषाओं के आंकड़े सम्मिलित नहीं हैं। ये आंकड़े स्वयं दर्शाते हैं कि भारत के प्रिन्ट मीडिया में हिंदी की स्थिति कितनी अधिक मजबूत है। भारत में सर्कुलेशन से कहीं अधिक संख्या समाचार पत्र-पत्रिकाओं के पाठकों की रहती है। किसी बस या ट्रेन के सफर में एक समाचार पत्र को अनेक संख्या में यात्री मांग कर पढ़ते हैं। इसी प्रकार छोटी दुकानों, होटलों, रेस्टोरेन्ट्स आदि में उपलब्ध पत्र-पत्रिकाओं को भी अनेक ग्राहक पढ़ते हैं। हिंदी दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक एवं आवधिक पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त हिंदी के दोपहर, अपराह्न, संध्या के समाचारों के विशेष बुलेटिन भी देश के अनेक हिस्सों से प्रकाशित होते हैं। हिंदी भाषा की सुबोधता, सरलता, लोकप्रियता और प्रचलन के कारण हिंदी पत्र-पत्रिकाओं को हिंदी भाषी के अतिरिक्त अन्य भाषा-भाषी भी पढ़ते-समझते हैं।

इलैक्ट्रॉनिक प्रौद्योगिकी की शुरुआत का श्रेय अमरीका के दूर-दराज क्षेत्र के एक छोटे से स्कूल के एक दुबले-पतले छात्र फिलो टी. फर्न्सवर्थ को जाता है। फर्न्सवर्थ ने सन् 1922 में एक सर्किट डिजाइन कर अपनी विज्ञान की शिक्षिका को आश्चर्यचकित कर दिया था। सन् 1927 में इस छात्र ने अपने मित्रों के बीच स्वनिर्मित यंत्रों के माध्यम से स्थिर और चल-चित्रों को प्रसारित करने का करिश्मा कर दिखाया। विवादों और कानूनी लड़ाइयों पर विजय प्राप्त करने के बाद फर्न्सवर्थ ने

यह खोज अपने नाम पेटेंट करवाई, इस प्रकार पहले टेलीविज़न केन्द्र की स्थापना अमरीका की न्यूयार्क सिटी के एम्पायर स्टेट भवन में हुई। लगभग सात दशक बाद आज टेलीविजन घर-घर में पहुंच गया है।

भारत में 60 के दशक में टेलीविज़न के आगमन के पहले रेडियो का ही बोलबाला था। रेडियो भारत में प्रथम विश्वयुद्ध के लगभग दस वर्ष बाद आया। आकाशवाणी का प्रसारण मुंबई और कोलकाता में दो निजी स्वामित्व के ट्रांसमीटरों के साथ 1927 में प्रारंभ हुआ था। सन् 1930 में इन ट्रांसमीटरों को अधिग्रहण कर इंडियन ब्रॉडकास्टिंग सर्विस के नाम से इनका संचालन किया गया। सन् 1936 में इसका नामकरण 'ऑल इंडिया रेडियो' (ए.आई.आर.) हुआ और फिर आज़ादी के बाद सन् 1957 में दोबारा इसका नामकरण हुआ और इसे 'आकाशवाणी' कहा जाने लगा। स्वाधीनता प्राप्ति के समय देश में आकाशवाणी के कुल 16 रेडियो स्टेशन कार्यरत थे। पचास वर्ष बाद अगस्त 2000 में इनकी संख्या 184 पूर्ण विकसित केन्द्रों, 10 रिले केन्द्रों और 3 विविध भारतीय वाणिज्य केन्द्रों सहित कुल 197 केन्द्रों तक पहुंच गई थी, जो देश की 97.3 प्रतिशत जनसंख्या और देश के 90 प्रतिशत क्षेत्र को रेडियो सेवा उपलब्ध कराते थे। आकाशवाणी से संगीत, मनोरंजन, नाटक, समाचार, खेलकूद, परिवार कल्याण, स्वास्थ्य, कृषि जैसे अनेक घरेलू विषयों पर कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक 'विदेश सेवा डिवीजन' (ई.सी.डी.) है जो विभिन्न देशों में रहने वाले श्रोताओं के लिए 25 भाषाओं में प्रसारण सेवा उपलब्ध कराता है। हिंदी की इसमें विशेष भूमिका रहती है।

भारत में दूरदर्शन का पहला प्रसारण नई दिल्ली के आकाशवाणी भवन में स्थित अस्थाई स्टूडियो से 15 सितम्बर 1959 को किया गया था। 500 वॉट शक्ति के इस ट्रांसमीटर से दिल्ली के 25 कि.मी. रेडियस के अन्दर प्रसारण सेवा प्रारंभ की गई थी। समाचार बुलेटिन की नियमित सेवा सन् 1965 से प्रारंभ की गई। सन् 1975 में कोलकाता, मुम्बई, चेन्नई, श्रीनगर, अमृतसर और लखनऊ में भी दूरदर्शन केन्द्र स्थापित किए गए। भारत में सेटेलाइट इन्स्ट्रक्शनल टेलीविज़न एक्सपेरिमेंट (साइट) के रूप में प्रचलित उपग्रह प्रौद्योगिकी के साथ प्रथम प्रयोग सन् 1975-76 में किया गया। संयोगवश सामाजिक शिक्षा के लिए उपग्रह प्रसारण की परिष्कृत प्रौद्योगिकी का उपयोग किए जाने वाला यह विश्व का प्रथम प्रयास था। भारत में लगभग 36 करोड़ से भी अधिक दर्शकों द्वारा अपने घरों में दूरदर्शन कार्यक्रम देखे जाते हैं। आज भारतीय राष्ट्रीय दूरदर्शन सेवा, जन सेवा प्रसारण में कार्यरत विश्व की सबसे बड़ी भूमि नेटवर्क वाली सेवाओं में से एक है।

शिक्षा के साथ मनोरंजन कार्यक्रमों के अन्तर्गत संगीत, नृत्य, खेलकूद, धारावाहिक, वृत्तचित्र आदि का प्रसारण होता है। सन् 1993 से सेवाएं मनोरंजन चैनल उपग्रह के माध्यम से अन्य शहरी दर्शकों के लिए उपलब्ध कराई गईं। 'दूरदर्शन इंडिया' नाम का एक अन्तर्राष्ट्रीय चैनल भी सन् 1995 से संचालित है। उपग्रह पी.एस-1 के माध्यम से यह सेवा एशिया, अफ्रीका एवं यूरोप के लगभग 50 देशों में और पी.एस.-4 तथा पी.ए.एस. उपग्रह के माध्यम से संयुक्त

राज्य अमेरिका तथा कनाडा में भी उपलब्ध है। दूरदर्शन के कार्यक्रमों के दर्शक अधिकांश राज्यों के कुल दर्शकों के 70 प्रतिशत से अधिक नगरीय क्षेत्रों के हैं और 90 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण क्षेत्रों के हैं।

जानकर हैरानी होगी कि एक सर्वेक्षण से पता चला है कि मध्यप्रदेश, बिहार एवं उत्तरप्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में 40 प्रतिशत दर्शक दूरदर्शन के विकास कार्यक्रमों में ज़्यादा रुचि लेते हैं। इसी प्रकार यू.जी.सी. के शिक्षाप्रद कार्यक्रमों को देखने वालों की संख्या लगातार बढ़ते हुए करोड़ों में पहुंच गई है।

निजी चैनल्स का उदय

पिछले कुछ वर्षों में दो मुख्य कारणों से टेलीविज़न ने अपनी ओर अधिक ध्यान खींचा है। एक तो टेलीविज़न सेटों की संख्या में चमत्कारिक रूप से वृद्धि, विशेषकर 1982 में भारत के इनसैट उपग्रह के कार्य शुरू करने के बाद से और अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के साथ-साथ वर्ष 1991 के बाद ट्रांसनेशनल टेलीविज़न की शुरूआत से भी अधिक तेजी आई है। केबल टेलीविज़न प्रारंभ में 1984 से गुजरात और महाराष्ट्र के बड़े शहरों के निम्न मध्यम वर्गीय श्रेणी के आवासीय क्षेत्रों में प्रारंभ हुआ था और लोगों में उसका आकर्षण बढ़ता गया, क्योंकि वीडियो प्लेयर और कैसेट की तुलना में यह कम लागत में फ़ीचर फ़िल्में उपलब्ध कराता था।

वर्ष 1991 में हुए खाड़ी युद्ध का आंखों देखा हाल दिखाने के लिए अमरीका की समाचार चैनल सी.एन.एन. द्वारा निजी टेलीविज़न नेटवर्क सेवा प्रारंभ की गई थी। वर्ष 1991 से ही संगीत और खेलकूद कार्यक्रमों के लिए स्टार टी.वी. चैनल की शुरूआत हुई। आज स्टार टी.वी. नेटवर्क में स्टार प्लस, स्टार मूवीज़, स्टार वर्ल्ड चैनल बी, ई.एस.पी.एन., स्टार स्पोर्ट्स, स्टार न्यूज़ और नेशनल ज्योग्राफिक चैनलों का समावेश हुआ है, जिनमें अधिकांश हिंदी का ही प्रयोग होता है। भारत में भाषा के प्रसारण को महत्व देते हुए स्टार प्लस ने दिन-रात हिंदी भाषा में कार्यक्रम प्रसारित करने शुरू किए और 90 के दशक में इन कार्यक्रमों की लोकप्रियता, अंग्रेज़ी कार्यक्रमों की तुलना में कई गुना बढ़ गई। अक्टूबर 1992 से ही 'ज़ी टी.वी.' की शुरुआत हुई थी। हिंदी का पहला निजी चैनल होने के कारण यह पूरे देश में तेज़ी से लोकप्रिय हो गया।

हिंदी के दर्शकों की बढ़ती हुई मांग के कारण डिस्कवरी चैनल को हिंदी भाषा में डब कराने की आवश्यकता पैदा हुई। आज निजी चैनल उपग्रह चैनलों की सामग्री को अनेक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। फ़िल्मी चैनल, संगीत चैनल, खेल जगत, सोप ओपेरा, बच्चों के कार्यक्रम, समाचार एवं सामाजिक विषयों पर चर्चाएं, अर्थजगत, शिक्षा संबंधी कार्य, धार्मिक प्रवचन एवं अन्य श्रेणियां हैं जिनमें हिंदी भाषा का ही प्रयोग किया जाता है। टेलीविज़न पर जो केवल मनोरंजन कार्यक्रम देखना पसंद करते हैं उन्हें यह

इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के अन्तर्गत भारत में समाचार चैनल्स हिंदी की लोकप्रियता और टी.आर.पी. के कारण चौबीसों घंटे अपना प्रसारण हिंदी में करते हैं। यद्यपि टेलीविज़न के प्रारंभिक काल में अंग्रेज़ी समाचार चैनल प्रसारित हुए थे किन्तु कालान्तर में हिंदी समाचार चैनलों ने इन्हें बहुत पीछे छोड़ दिया। लगभग यही स्थिति अंग्रेज़ी धारावाहिकों, फ़िल्मों एवं कार्यक्रमों की भी रही। वर्तमान में भारतीय हिंदी समाचार चैनल एवं धारावाहिक आदि भारत के अतिरिक्त नेपाल, पाकिस्तान, अफ़गानिस्तान, बंगला देश आदि में भी लोकप्रिय हैं।

भारत में कम्प्यूटर के प्रयोग में वृद्धि एवं वर्ष 1997 में चार महानगरों में इंटरनेट सेवा प्रारंभ होने के बाद से मीडिया का परिदृश्य तेजी से बदलता गया है। मोबाइल फोन, स्मार्ट फोन पर इंटरनेट सेवा उपलब्ध हो जाने से एक प्रकार की नई क्रांति हो गई। स्मार्ट फोन में हर रोज़ नए-नए फीचर्स जोड़ने की प्रतियोगिता-सी दिखाई देती है। यदि वर्तमान युग को सूचना का युग कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सम्पूर्ण विश्व एक ग्राम में परिवर्तित हो रहा है। इंटरनेट के माध्यम से मोबाइल फोन पर मिनट-मिनट के समाचार, घटनाएं, कार्यक्रम आदि देखे जा सकते हैं। विश्व की किसी भी गतिविधि का जीवंत प्रसारण घर बैठे देखा जा सकता है।

सोशल मीडिया ने भी अपना बहुत महत्वपूर्ण स्थान बनाया है। मोबाइल के माध्यम से व्यापार-व्यवसाय, लेन-देन, ख़रीद-फ़रोख़्त, बैंकिंग, बुकिंग जैसे अनेक प्रकार के कार्य क्षणों में पूरे किए जा सकते हैं। इनमें भाषा अब कोई बाधा नहीं है। प्रौद्योगिकी की सहायता से एक साथ अनेक भाषाओं की सुविधा उपलब्ध हो सकती है। भाषान्तरण तथा लिप्यन्तरण की सुविधाएं लेखन, श्रवण एवं संवाद आदि में उपलब्ध होना बहुत आसान बात है। इन सभी माध्यमों एवं प्रौद्योगिकी की सहायता से हिंदी का विश्व में निरन्तर प्रचार-प्रसार, विकास एवं विस्तार हो रहा है।

prakash.bartunia@gmail.com

लेखिका आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखपट्नम में हिंदी की आचार्य हैं।

हिंदीतर राज्यों में हिंदी पत्रकारिता

प्रो.के.सीतालक्ष्मी

हिंदी प्रचार के मुख्य उद्देश्य से संचालित दक्षिण की प्रथम पत्रिका 'हिंदी प्रचारक' ही है। हिंदी प्रचार के साथ-साथ इस पत्रिका में साहित्यिक लेख तथा दक्षिण के सांस्कृतिक विषयों पर भी लेख छपते थे। सन् 1937 में यह पत्रिका बंद कर दी गई। सन् 1938 में 'दक्षिण भारत' नामक शुद्ध साहित्यिक एवं सांस्कृतिक मासिक पत्रिका का शुभारंभ हुआ। यही मासिक पत्रिका बाद में जाकर त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित होने लगी। शुद्ध साहित्यिक पत्रिका होने के कारण इस पत्रिका में छपने वाले लेख, कहानी, कविता आदि की भाषा भी उच्च कोटि की थी। शुद्ध हिंदी का प्रयोग इन पत्रिकाओं की सहज विशेषता थी। इसके उपरांत प्रमुख विद्वान एवं साहित्य सेवी श्री रामानन्द शर्मा के संपादन में 'दक्षिण हिन्द' नामक मासिक पत्रिका का संचालन होने लगा। रामानंद शर्मा जी ने अपनी इस पत्रिका के द्वारा अहिंदी क्षेत्र में हिंदी लेखकों को तैयार करने के लिए अविश्रांत परिश्रम किया। शर्मा ही की साहित्यिक एवं आलंकारिक मधुर शैली से नए लेखक अपरिचित थे। इस पत्रिका में नए लेखकों के साहित्यिक लेख, कहानियां आदि प्रकाशित होने थे। यह पत्रिका भी 1953 में बंद हो गई।

सन् 1854 में हिंदी का पहला दैनिक समाचार पत्र 'सुधा वर्षण' कलकत्ता में शुरू हुआ था। राष्ट्रीय चेतना की जागृति के साथ-साथ, हिंदी के महत्व को स्वीकृत करने का यह प्रथम प्रयास था। सन् 1857 की प्रथम क्रांति के समय एक अख़बार निकाला गया था, उसका नाम था 'पैगाम-ए-आज़ादी' इसका अर्थ है 'स्वतंत्रता संदेश'। यह पत्र दिल्ली से हिंदी और फारसी दोनों भाषाओं में निकला। इसके पहले 1845 में 'बनारस अख़बार' 1850 में 'सुधाकर' पत्रिकाएं प्रकाशित हुई। इनके अलावा 1867 में ब्रह्मसमाजी नेता नवीन चन्द्रराव ने 'ज्ञान प्रदायिनी' नामक हिंदी पत्रिका निकाली और हिंदी का खुलकर समर्थन किया। बंगाल के बंकिम चन्द्र चटर्जी ने 'बंगदर्शन' नामक पत्रिका में हिंदी को समुचित स्थान देकर हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी भूमिका निभाई। अमृतलाल चक्रवर्ती जैसे अनेक साहित्यकारों ने हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का संपादन करके हिंदी का प्रचार किया।

'हिंदी मिलाप' नामक दैनिक समाचार पत्र लाहौर और जालंधर से निकलती थी। इस पत्रिका

के संपादक थे महात्मा दयानंद सरस्वती। इस पत्रिका के द्वारा दयानंद सरस्वती जी ने हिंदी भाषा की श्री वृद्धि की। सन 1878 में पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र ने कलकत्ता से 'भारत मित्र' और जम्मू से 'जम्मू प्रकाश' नामक पत्रिकाओं को प्रकाशित कर भारत में हिंदी प्रचार आन्दोलन को आगे बढ़ाया। पंडित मुकुंदराम के संपादन में लाहौर से निकलने वाली 'ज्ञान प्रदायिनी' नामक पत्रिका की भी हिंदी प्रचार आन्दोलन में विशिष्ट भूमिका है। हिंदी प्रचार और प्रसार में बंगाल की इन पत्रिकाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

'हिंदी केसरी' नामक पत्रिका सन् 1903 में निकली। इसके संपादक थे, भारत के महान नेता श्री लोकमान्य बालगंगाधर तिलक। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य था, जनभाषा के माध्यम से अपने विचारों को जन सामान्य तक पहुंचाना। भाषा और विचार की दृष्टि से यह पत्रिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। पं. मदन मोहन मालवीय जैसी महान हस्तियों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दिया। इनके संपादन में 'हिन्दुस्तान', 'अभ्युदय', 'मर्यादा', 'सनातन धर्म' आदि पत्र निकलते थे। एक विदेशी महिला के संपादन में 'न्यू इंडिया' नामक एक अंग्रेज़ी पत्रिका भी निकलती थी। हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए उसमें हिंदी लेखों का भी प्रकाशन किया।

1916 में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में गांधी जी का पदार्पण हुआ। 'यंग इंडिया' पत्रिका के द्वारा उन्होंने कांग्रेस का सारा कार्य हिंदी में करने का निर्देश दिया। हिंदी के गौरवशाली साहित्यकार एवं पत्रकार सेठ गोविन्ददास जी ने अपने संपादन में निकलने वाले 'शारदा', लोकमान्य 'जय हिन्द' आदि पत्रिकाओं के द्वारा हिंदी की रक्षा एवं प्रचार की ज़िम्मेदारी उठाई। भाषा की शुद्धता का आग्रह किया। दक्षिण के सुब्रह्मण्य भारती जी ने भी अपनी पत्रिका 'इंडिया' में हिंदी को समुचित स्थान दिया।

दक्षिण की महान विभूतियां श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, श्रीनिवास अय्यंगर आदि ने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अपने जीवन को ही समर्पित कर दिया। श्री राजगोपालाचारी जी 1939 में मद्रास के मुख्य मंत्री थे। राजगोपालाचारी ने मद्रास प्रांत के विद्यालयों में हिंदी शिक्षण को अनिवार्य घोषित किया। 1939 में 'हरिजन सेवक' नामक पत्रिका में गांधी जी ने इस उद्घोषणा का समर्थन किया।

हिंदी को सशक्त बनाने में हिंदी पत्रिकाएं एक माध्यम थी। कई साहित्यिक विधाओं की शुरूआत 'सरस्वती', 'माधुरी सुधा', 'विशाल भारत', 'धर्मयुग', 'कादंबिनी' हुई। उपरोक्त पत्रिकाओं के माध्यम से अपनी कई साहित्यिक रचनाओं को प्रकाशित करके, इन साहित्यकारों ने हिंदी भाषा का परिष्कार एवं संस्कार किया। हिंदी भाषा को परिष्कृत करके शुद्ध एवं मानक हिंदी के रूप को निखारने वाले लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार पत्रकार भी थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने सन् 1900 में सरस्वती पत्रिका का प्रारंभ किया। सन् 1903 से लगातार पत्रिका का संपादन करके खड़ी बोली हिंदी का रूप संवारा। 'समन्वय', 'मतवाला', 'सुधा' जैसी पत्रिकाओं के संपादकीय लेखों के द्वारा निराला जी ने संस्कृत निष्ठ शुद्ध हिंदी का रूप निखारा। इसी तरह मुंशी प्रेमचंद जी 'मर्यादा', 'जागरण', 'माधुरी' एवं 'हंस' पत्रिकाओं के संपादक रहे। इन पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार किया। आज राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित होने वाली अनेक पत्रिकाएं जैसे 'भाषा', 'अनुवाद', 'आलोचना', 'इन्द्रप्रस्थ भारती', 'वागर्थ', 'साहित्य अमृत', 'समीक्षा', 'समकालीन साहित्य समाचार' हिंदी भाषा के प्रचार और प्रसार को तीव्र गति देने के साथ-साथ विशुद्ध साहित्यिक एवं मानक हिंदी के विकास में अपना सहयोग दे रही हैं। यही नहीं 'अनुवाद' 'वागर्थ' 'आलोचना' और 'भाषा' जैसी पत्रिकाएं हिंदी और भारत की अन्य भाषाओं के बीच भाषाई दीवारों को गिराकर एक राष्ट्रीय एवं वैश्विक हिंदी के रूप को निर्धारित कर रही हैं।

आंध्र की हिंदी पत्र-पत्रिकाएं

आन्ध्र प्रदेश में सबसे पहले श्री विनायकराव विद्यालंकार तथा श्री कृष्णदत्त के संपादन में 'आर्यभानु' और 'साप्ताहिक पत्रिका' प्रकाशित होने लगी थी। 28 अप्रैल 1958 को श्री शिवनंदन शास्त्री के संपादन में 'संगम' पत्रिका की शुरूआत हुई। इन साप्ताहिक पत्रिकाओं में हिंदी की मौलिक रचनाएं प्रकाशित होने लगीं। सुरूचिपूर्ण उत्तम साहित्य का शुद्ध हिंदी में प्रकाशन कर जनता तक पहुंचना इन पत्रिकाओं का उद्देश्य था।

'हिंदी मिलाप' स्वतंत्रता से पूर्व ही हैदराबाद से प्रकाशित होती थी। इसके संपादक थे, श्री युद्धवीर। पं. भीष्मदेव के संपादन में प्रकाशित 'दक्षिण भारती', श्री आर्येन्द्र शर्मा के संपादन में निकलने वाली 'कल्पना', हैदराबाद हिंदी प्रचार सभा की ओर से प्रकाशित

मासिक पत्रिका 'अजन्ता' पत्रिकाएं हिंदी साहित्य तथा भाषा के प्रचार एवं प्रसार में अपने अतुलनीय योगदान के लिए प्रसिद्ध हैं। दिवाकर पाण्डेय जी के संपादन में 'दैनिक विश्ववाणी' का प्रकाशन 'मिलाप' के स्थान पर होने लगा था। श्री दोनेपूडी राजाराव के संपादन में सन् 1950 अक्तूबर से 'शिक्षक' पत्रिका का प्रकाशन होने लगा। यह पत्रिका प्रमुख रूप से विद्यार्थियों के लिए चलाई जाती थी। विजयवाड़ा से ही एक दूसरी हिंदी पत्रिका 'इनसान' नाम से प्रकाशित होती थी। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य नास्तिकतावाद का प्रचार करना, लेकिन भाषा की दृष्टि से इस पत्रिका का महत्व है।

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा आन्ध्र शाखा की ओर से 'पूर्ण कुंभ' नामक मासिक पत्रिका निकलती थी। परिवर्तित काल में इसी पत्रिका के स्थान पर 'श्रावंती' द्विभाषिक मासिक पत्रिका प्रकाशित की जाने लगी। हिंदी प्रचार सभा हैदराबाद की ओर से 'वितरण' मासिक पत्रिका तथा दक्षिण भारत हिंदी प्रतिष्ठान द्वारा 'अग्रतारा' पत्रिकाएं प्रकाशित हुई। इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त साहित्यिक, समीक्षात्मक मासिक पत्रिका 'संकल्य' अहिंदी क्षेत्र के हिंदी पत्रकारिता में एक आलोक स्तंभ है। हैदराबाद से प्रकाशित 'मिलिंद' हिंदी मासिक पत्रिका भी हिंदी भाषा के विकास में स्तुत्य कार्य कर रही है। इसके अलावा आंध्र प्रांत से प्रकाशित 'अभिव्यक्ति' शोध पत्रिका, 'काव्य वार्षिकी', 'मध्यांतर', 'संवाद सूत्र' मासिक पत्रिका 'सार संसार', 'त्रैमासिक' आदि साहित्यिक पत्रिकाओं ने हिंदी भाषा के विकास और साहित्य की श्रीवृद्धि में अपना विशिष्ट योगदान दिया।

इन साहित्यिक पत्रिकाओं के अतिरिक्त हैदराबाद में स्थित विभिन्न सरकारी और ग़ैर सरकारी कार्यालयों के द्वारा वैज्ञानिक, सूचना प्रौद्योगिकी, भौतिक विषयों से संबंधित पत्रिकाओं का भी प्रकाशन निरंतर हो रहा है। इनमें से कुछ हैं, 'जिज्ञासा' वार्षिक वैज्ञानिक पत्रिका, 'वसुंधरा' भौतिकीय अनुसंधान की वैज्ञानिक पत्रिका, 'नाभिकीय भारती' आदि। भाषा के तौर पर सोचा जाए तो इन संस्थाओं के कर्मचारी अनेक वैज्ञानिक विषयों को हिंदी में अभिव्यक्ति देने का सफल प्रयास कर रहे हैं।

इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त राजभाषा अधिकारियों के संपादन में प्रकाशित कुछ पत्रिकाएं राजभाषा हिंदी के प्रचुर मात्रा में प्रयोग के लिए कार्यरत है। 'गोदावरी', 'सागरिका' 'राजभाषा सरिता', 'सह विकास', 'सुगंध', 'विशाखा वाणी', 'विशाखा भारती' आदि पत्रिकाएं कर्मचारियों को शुद्ध हिंदी में लेख लिखने की प्रेरणा दे रही हैं।

इस तरह स्वतंत्रता से पूर्व ग़ैर हिंदी राज्यों की हिंदी पत्रकारिता विशेषकर आंध्र प्रदेश की हिंदी पत्रकारिता का लक्ष्य था। अस्वतंत्र भारत की जनता को विदेशी भाषा अंग्रेज़ी के प्रभाव से बचाकर हिंदी की ओर उन्मुख करना। स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी भाषा का रूपायतन, हिंदी भाषा और साहित्य की श्रीवृद्धि ही पत्रकारिता का लक्ष्य रहा।

kidambi2004@yahoo.com

लेखिका जीवनीकार हैं। कई पुस्तकें प्रकाशित। सोशल मीडिया पर सक्रिय कवयित्री। सम्प्रति अध्यापन में संलग्न।

मंच की कविता और कविता का मंच

डॉ. रश्मि

भारत श्रुतियों का देश है। मंच की वाचिक परंपरा ने भाषा के प्रचार-प्रसार एवं साक्षरता की वृद्धि में अपूर्व योगदान दिया है। जिस प्रकार से लोग देवकीनंदन खत्री की 'चन्द्रकांता' को पढ़ने के लिए हिंदी सीखते थे उसी प्रकार से बच्चन, दिनकर एवं काका हाथरसी की कविताओं को सुनने के लिए भी हिंदी सीखते थे। आज़ादी की लड़ाई में भी इन कविसम्मेलनों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उस दौर में श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे प्रतिष्ठित कवि द्वारा 'कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए, एक हिलोर इधर से आए एक हिलोर उधर से आए' जैसी कविताओं का पाठ सुनकर जनता ओज से भर उठती थी और आज़ादी के आंदोलन से जुड़ जाती थी। कवि और कविसम्मेलन बदलाव के अग्रदूत थे।

क्या है यह वाचिक परम्परा? इसका अतीत क्या था? क्या इसका वर्तमान अतीत से बेहतर है या इसमें कोई क्षरण हुआ? भविष्य में इसका रूप क्या होने वाला है? क्या अंग्रेज़ी के मोह में फंसी युवा पीढ़ी इस परम्परा को जीवित और जीवंत रख पाएगी? सवाल बहुत सारे थे। कवि नरेश सक्सेना से फोन पर बात हुई उन्होंने समझाया 'भाषा हमने बोलकर पाई है, लिखकर नहीं। बोलने में एक संगीत होता है। लय और ध्वन्यात्मकता भी होती है जो कि लिखित भाषा में नहीं होती।'

गीत, ग़ज़ल के सिद्धहस्त शिल्पी डॉ. कुंअर बेचैन ने बताया, 'दरअसल वाचिक परंपरा 'सुनने' और 'सुनाने' की परंपरा है। वह भी वाचिक परंपरा ही थी जब कवि सूरदास चबूतरे पर बैठकर अपने पद गाया करते थे और कबीरदास इकतारा लेकर अपने शिष्यों-अनुयायियों को साखी, सबद सुनाया करते थे। प्राचीन समय में राजा-महाराजा अपने दरबार में विविध प्रतियोगिताएं आयोजित करते थे, जिनमें उनके अपने और दूसरे राज्यों के कवि भी भाग लेते थे। प्रतियोगिता द्वारा जो श्रेष्ठ कवि निकल कर आता था, उसे सम्मानित किया जाता था।'

डॉ. गोविन्द व्यास ने बेचैन जी की बात को आगे बढ़ाया 'कविसम्मेलन की इस वाचिक परंपरा का असली विकास उर्दू के मुशायरों के समानांतर हुआ। पुराने समय में उर्दू के मुशायरे अधिक प्रचलित थे। हिंदी एक समृद्ध होती हुई भाषा थी, इसीलिए कविताओं को जन-जन तक पहुंचाने के लिए मुशायरे की तर्ज पर हिंदी कविता की महफ़िलें सजने लगीं। पहले जो 'समस्या पूर्ति' की तरह होती थीं, बाद में 'कवि-गोष्ठियों' के रूप में आयोजित होने लगीं, और फिर 'कविसम्मेलन' प्रारम्भ हुए।' व्यास जी के कथन का सार यह था कि ब्रजभाषा को सरल करके उसके लालित्य को खड़ीबोली में लाया गया और अवधी की जनप्रियता को भी इसमें समाहित

किया गया। इस प्रकार प्रकारांतर से खड़ी बोली विकसित होती गई।

कविसम्मेलन में कवि और श्रोता एक दूसरे के सम्मुख होते हैं और उनके बीच कड़ी का काम करती है भाषा। कविसम्मेलन कवि का जनता के साथ सीधा संपर्क स्थापित करते हैं और भाषा का विस्तार करने में अपना सहयोग देते हैं। इस पहलू पर प्रकाश डाला डॉ. शेरजंग गर्ग ने और यह कहते हुए कि भाषा का विस्तार करने में कविसम्मेलनों का बहुत योगदान रहा है उन्होंने कुछ कवियों के नाम गिनाए, जैसे— रामधारी सिंह 'दिनकर', गोपालसिंह नेपाली, हरिवंशराय बच्चन, रामावतार त्यागी, मुकुट बिहारी सरोज, राधेश्याम 'प्रगल्भ' और वीरेंद्र मिश्र आदि। उनके अनुसार ये कविताएं लिखते भी थे और मंच पर सुनाते भी थे।

गर्ग साहब की यह बात मेरी समझ में नहीं आई। लिखते भी थे और सुनाते भी थे, इसका क्या मतलब हुआ? क्या बिना लिखे सुनाया जा सकता है? उन्होंने ठहाका लगाया। कहने लगे कि उल्टा होता था। लोग इन्हें सुनकर लिखना सीखते थे। इन्हें सुनते भी थे और इन्हें पढ़ते भी थे। इन कवियों के लिए कविता लिखना ही जीवन था और जीवन जीना भी कविता था। इनके लिए कविता व्यवसाय नहीं थी। यही कारण है कि इन्होंने कविताओं को खूब समृद्ध किया। अच्छे कविसम्मेलन में श्रोताओं को बांधने की क्षमता होती है, वह भाषा के प्रति प्रेम जागृत करती है। अच्छी कविता सुनाने वाले कवि हमेशा भाषा का विकास करते हैं। मुझे डॉ. साहब को सुनना अच्छा लग रहा था।

मैंने और भी फोन मिलाए। मैं अनुमान लगा सकती हूं कि कविसम्मेलनों का भाषा के विकास में किस प्रकार योगदान रहा। आज भी हिंदी भाषा कविसम्मेलनों से निरंतर विस्तार पा रही है। कवि और आकाशवाणी के पूर्व महानिदेशक श्री लक्ष्मीशंकर वाजपेयी का कहना है कि 'ग़ैर हिंदी भाषी क्षेत्रों में भाषा को पहुंचाने का श्रेय कविसम्मेलनों को ही जाता है। विदेशों में भी इन मंचों ने हिंदी को खासी प्रतिष्ठा दिलाई है। कविता मनोरंजन भी करती है किन्तु स्वस्थ मनोरंजन करती है इसलिए उसे सिर्फ हास्य तक ही सीमित होकर नहीं रह जाना चाहिए। हमारी नई पीढ़ी तक अच्छी कविताएं पहुंचे इसके लिए समाज, सरकार, संस्थाएं, वरिष्ठ कवि आदि सभी को आगे आकर इस परंपरा को बढ़ाना चाहिए।

नीरज जी को फोन लग गया तो मैं बहुत ख़ुश हुई। एक कवि जहां अपनी बात छोड़ देते थे वहीं से मैं सूत्र पकड़ कर नए सवाल छेड़ देती थी। भाषा के विकास में उन्होंने फिल्मों के योगदान को भी स्वीकारा। कविसम्मेलनों के साथ-साथ हिंदी फ़िल्मों ने भी जनता के साथ भाषाई तौर पर सीधा संपर्क स्थापित किया। बालकवि बैरागी जी से बात हुई तो उनका भी यही कहना था कि 'भाषा का सबसे अधिक प्रसार कविसम्मेलन, भारतीय रेल और लता मंगेशकर के गीतों ने किया। आज भी कविसम्मेलन में लोग रात रातभर बैठकर अपने प्रिय कवियों को सुनते हैं। कोई वाद्य नहीं होता लेकिन फिर भी लोगों का रुझान बना हुआ है। इसी प्रकार भाषा के प्रचार-प्रसार में रेल के योगदान को समझना पड़ेगा। रेल एक स्थान की भाषा को दूसरे स्थान पर ले जाती है और विस्तार देती है। एक ऐसा दौर आया था जब लता जी के गीतों को सुनने और समझने के लिए लोगों ने हिंदी भाषा को सीखा था। कवि-सम्मेलन की वाचिक परंपरा सदैव से जनता को अपनी ओर आकर्षित करती आई है। आज के दौर में भी एक से एक नए कवि हैं और इन कविसम्मेलनों ने नई छटा दी है।' इस विषय पर प्रो. अशोक चक्रधर ने अपने प्रोफेसरी अंदाज़ में बताना शुरू किया कि देखो, वाचिक परंपरा को समझना इस देश की उस श्रुति परंपरा को जानना है, जिसके सहारे तमाम वेद, मानस समेत तमाम कथाएं और मिथक-मथी

सामाजिक व्यथाएं कंठ दर कंठ, कर्ण दर कर्ण यात्राएं करती हुई हम तक आती हैं। वाचिक परंपरा इस देश के मूल मिजाज़ में है। जब भी हमारे घरों में सुखद कुछ होता था तो मानस पाठ या सत्यनारायण की कथा रखी जाती थी। सामूहिक रूप से लोग बैठते थे, सुनते थे। इस तरह सामूहिकता का एक अनुभव वाचिक परंपरा से जुड़ता है। यह अनुभव ही वाचिक परंपरा की ताकत है।'

मंच पर भिन्न-भिन्न रस के कवि होते हैं। कोई हास्य रस से हंसाता है तो कोई श्रृंगार में कविता सुनाता है, कोई वीर रस बहा देता है तो कोई प्रेरक बात कह जाता है। अलग-अलग रसों की कविताएं अलग-अलग मानसिकता को संतुष्ट करती हैं। साहित्य वही है जो सत्य हो, शिव हो और सुंदर हो। हमारे पूर्वज लाखों वर्ष पूर्व ही कह गए हैं कि साहित्य में वही चीज़ चलेगी जो सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् का आचरण करेगी। यदि इन तत्वों का पालन नहीं होता तो वह भाषा और उसका साहित्य नकार दिया जाता है। विभिन्न प्रतिष्ठित पदों पर रह चुके श्री सोम ठाकुर ने अपने कॉलेज के दिनों को याद करते हुए बताया कि 'हमारे समय में एक यूनियन सप्ताह मनाया जाता था जिसमें कविसम्मेलन, नाटक आदि हुआ करते थे। इस प्रकार के आयोजनों के कारण हर विद्यार्थी अधिकतम विधाओं से परिचित रहता था। पहले-पहल कवि सम्मेलन शिक्षण संस्थाओं से ही शुरू हुए थे। पहला कवि सम्मेलन सन् 1910 में कानपुर में हुआ था, जिसमें हरिऔध जी, रत्नाकर जी आदि के अतिरिक्त कई तत्कालीन बड़े कवि मौजूद थे।'

राजभाषा विशेषज्ञ और नवगीतकार श्री बुद्धिनाथ मिश्र ने भी अपने समय में होने वाली शैक्षणिक गतिविधियों का स्मरण किया। उन्होंने दुःख व्यक्त किया कि अब कॉलेजों में साहित्य परिषद ख़त्म होते जा रहे हैं और नतीजा यह है कि बच्चे साहित्य से जुड़ नहीं पा रहे। उन्होंने अपने उपयोगी सुझाव देते हुए कहा 'पुनः सभी कॉलेजों में अच्छे कवि सम्मेलन आयोजित किए जाने चाहिए। यू.जी.सी. को इस दिशा में कदम उठाने चाहिए। शिक्षण संस्थानों के प्रबंधकों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए। पहले आकाशवाणी और दूरदर्शन भी इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे, आज भी निभाते हैं किन्तु उन्हें और अधिक आगे आना चाहिए। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी अपनी भूमिका निभा सकता है। सभी को मिलकर वातावरण बनाना चाहिए और पुनः एक बार फिर अपनी उसी पुरानी भूमिका में आना चाहिए। कविताओं को सिर्फ मनोरंजन या हास्य तक ही सीमित नहीं करना चाहिए बल्कि अच्छे कवियों को अपना दायित्व निभाते हुए नई पीढ़ी तक अपनी बात पहुंचाने के लिए स्वयं आगे आना चाहिए।'

वरिष्ठ कवि और शायर बेकल उत्साही ने इसे हमारी पारंपरिकता और तहजीब से जोड़ते हुए कहा 'भाषा तो सभी की है, इसे जितना आसान और बोलचाल का बनाओगे उतना ही लोगों तक पहुंचती जाएगी, सभी से जुड़ती जाएगी। साथ-ही-साथ हमें अपनी परंपरा और धाराओं से भी जुड़े रहना चाहिए। पहले के लोगों में अपने बुजुर्गों के प्रति एक तहज़ीब होती थी, वे उनके सामने बैठने से परहेज़ करते थे। यह तहज़ीब अब ख़त्म होती जा रही है। लेकिन मैं अब भी

आशान्वित हूं कि वह तहज़ीब फिर लौटेगी। यदि कवि सम्मेलन के स्तर को ऊंचा उठाकर रखा जाए तो यह वाचिक परंपरा बहुत आगे तक जाएगी क्योंकि यह बहुत उन्नतशील परंपरा है।'

कवि सम्मेलन का आरम्भ हिंदी भाषा और हिंदी कविता को जन-जन और घर-घर तक पहुंचाने के उद्देश्य से हुआ था। यह एक दीर्घकालीन परंपरा है जो कभी नष्ट नहीं हो सकती। एक वह समय भी था जब सुप्रसिद्ध कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' राम की शक्ति पूजा का पाठ कर रहे थे और सारे श्रोता उसे ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। निराला जी अपने पाठ में इतने भाव-विह्वल हो गए कि उन्हें समय का भी पता न चला। जब उनका पाठ समाप्त हुआ तब वहां एक ही श्रोता थे, श्री रामचन्द्र शुक्ल। रामचन्द्र शुक्ल निराला जी के पाठ को आनंदित होकर सुन रहे थे। निराला जी ने कहा कि 'मुझे लाख व्यक्ति नहीं चाहिए बल्कि एक ही चाहिए किन्तु एक व्यक्ति भी ऐसा चाहिए जो मेरी कविता को समझने वाला हो।' इस परंपरा के साथ अनेक संस्मरण जुड़े हुए हैं। नई पीढ़ी को साहित्य की इस परंपरा से जोड़ने के लिए हम सभी को सम्मिलित प्रयास करने होंगे।

सभी अपने-अपने स्तर पर भाषा को समृद्धिशाली बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते आए हैं। चूंकि कविसम्मेलन जनता के साथ सीधा संवाद करते हैं, अतः इनकी भूमिका सर्वविदित और सर्वाधिक है। कविसम्मेलनों को जनता का विशेष स्नेह मिलता रहा है। इसके द्वारा भाषा के साथ-साथ साहित्य भी समृद्ध होता आया है और भविष्य में भी होता रहेगा। कविसम्मेलन के मंच भविष्य में भी यूं ही सजते रहेंगे और उन मंचों पर कविता जगमगाती रहेगी। पिछले एक सप्ताह में आदरणीय कवियों से इतनी बात की हैं कि स्वप्न में भी साहित्यिक-सम्मलेन, गोष्ठियां, कहानी-पाठ, व्यंग्य-पाठ और कवि सम्मेलन होते रहते हैं इन दिनों।

dr.rashmi00@gmail.com

लेखक एक शिक्षाकर्मी और मंच के अत्यंत लोकप्रिय कवि हैं। देश -विदेश में उन्हें अनेक सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

वाचिक कविता क्षितिज के पार

डॉ. प्रवीण शुक्ल

आज हिन्दी की कविता अपने विभिन्न रूपों और प्रस्तुतीकरण की विभिन्न शैलियों के साथ धीरे-धीरे विश्व के अनेक देशों में लोकप्रिय और प्रतिष्ठित हो चुकी है। दुनिया के अनेक देशों की साहित्यिक यात्रा करने के बाद मैं, ज़िम्मेदारीपूर्वक यह बात कह सकता हूं कि आज हमारी वाचिक परम्परा केवल श्रोताओं के बीच लोकप्रिय ही नहीं हुई है वरन उसने अनेक देशों में मरती हुई, विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं को पुनर्जीवित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अमेरिका के मेरे हिन्दी सेवी मित्र श्री आलोक मिश्रा ने मुझे यह बताया कि हम अपनी संस्था अंतरराष्ट्रीय हिन्दी समिति के माध्यम से पूरे वर्ष अमेरिका के विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी भाषा की समृद्धि के लिए भिन्न-भिन्न आयोजन करते हैं। इन आयोजनों के लिए आवश्यक धनराशि यहां आयोजित होने वाले कविसम्मेलनों के माध्यम से एकत्र कर लेते हैं। यह वाचिक परम्परा की ताक़त है कि आज वह स्वयं में तो लोकप्रिय हो ही चुकी है, साथ ही साथ एक प्रतिष्ठित हिन्दी संस्थान की धुरी बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार में भी अपना योगदान दे रही है। देखते ही देखते हिन्दी कविसम्मेलन और मुशायरे अमेरिका, कनाडा, रूस, यू.के. आस्ट्रेलिया, त्रिनिदाद, मस्कट, दुबई, बैंकाक, हांगकांग, सिंगापुर, इंडोनेशिया, बेल्जियम और नेपाल आदि देशों में हिन्दी भाषी जनसमुदाय के बीच, इतने लोकप्रिय हो चुके हैं कि अनेक स्थानों पर, श्रोताओं के आग्रह पर एक ही वर्ष में इनका आयोजन कई-कई बार करवाना पड़ रहा है।

विदेशों में हिंदी कविता की वाचिक परम्परा को ले जाने का श्रेय डॉ. हरिवंशराय बच्चन को है, जब उन्होंने कैम्ब्रिज जाकर 1952-1954 ई. में अंग्रेज़ी कवि यीट्स पर शोध प्रबन्ध लिखा। उस दौरान अपने भारतीय मित्रों के बीच काव्य-गोष्ठियों की उन्होंने शुरुआत की। 1955 ई. में वह विदेश मंत्रालय में हिन्दी विशेषज्ञ होकर दिल्ली आ गए। पं. जवाहरलाल नेहरू ने डॉ. बच्चन को राजभाषा विभाग की प्रमुख ज़िम्मेदारी सौंपी। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए विभिन्न प्रतिनिधि मण्डलों का हिस्सा बनाकर उन्हें विदेश भेजा गया। उस समय तक बच्चन जी की मधुशाला और उनके प्रस्तुतीकरण की शैली भारतवर्ष के साथ-साथ दूसरे देशों तक भी लोकप्रिय होनी शुरू हो गई थी। जब बच्चन जी प्रतिनिधिमण्डल का हिस्सा बनकर विदेशों में गए तो अनेक देशों के दूतावासों

में भारतीय मूल के श्रोताओं ने उनसे मधुशाला सुनाने का आग्रह किया। यह एक तरह से आज़ादी के बाद विदेशी धरती पर हिन्दी कविता के पाठ की शुरुआत थी।

इसके पश्चात काका जी, जो हिन्दी हास्य-व्यंग्य के अपने युग के सर्वाधिक लोकप्रिय रहे, उन्होंने दक्षिण एशिया के विभिन्न देशों सिंगापुर, बैंकॉक, हांगकांग आदि में काव्य पाठ करते हुए, कविसम्मेलन की परम्परा को विदेशों की धरती पर सुदृढ़ आधार प्रदान किया। काका जी 1983-84 में अपने एक कवि मित्र वीरेंद्र तरुण के साथ अमेरिका की काव्य यात्रा पर गए, वहां विभिन्न शहरों में उनकी कविता के कार्यक्रम आयोजित हुए। प्रारम्भ में आयोजित होने वाले इन समारोहों का स्वरूप बहुत व्यवस्थित नहीं था। इनका आयोजन प्रायः अमेरिकावासी संपन्न भारतीयों के घरों में और मंदिरों के सभागारों में होता था। कुछ कार्यक्रम अनायास आयोजित कर लिए जाते थे। कुछ कार्यक्रम अचानक एक शहर से दूसरे शहर में, यह सूचना पहुंचने पर कि काका अमेरिका आए हुए हैं, चाहो तो एक गोष्ठी अपने यहां रखवा लो, इस तर्ज पर आयोजित होते थे।

अमेरिका में बसे हुए भारतीयों का व्यक्तिगत कार्यक्रम इतना व्यस्त होता है कि वह प्रायः सप्ताह के अंतिम दिनों, शुक्रवार, शनिवार और रविवार में ही कार्यक्रम आयोजित करने की मानसिकता में रहते हैं। उसके बाद के दिनों में कवि चार दिन के लिए फ्री हो जाते हैं, इस दौरान वे प्रायः भारतीय घरों में ठहराए जाते हैं। जहां होने वाले वार्तालापों ने, विभिन्न कवियों को विदेशी धरती पर सम्बन्ध बनाने और अन्य कार्यक्रमों के लिए जमीन तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

हिन्दी कविसम्मेलनों की इस परम्परा को विदेशों में ख़्याति दिलवाने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका प्रो. अशोक चक्रधर ने अदा की। 1993 में वे और डॉ. कुंवर बेचैन अमेरिका की यात्रा पर गए। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर आयोजकों को प्रोत्साहित करते हुए इस बात पर बल दिया कि हम इन समारोहों को और व्यवस्थित रूप में विभिन्न सभागारों में आयोजित करके अधिक श्रोताओं को जुटा सकते हैं। अंतरराष्ट्रीय हिन्दी समिति के तत्कालीन सचिव नन्दलाल सिंह ने उनसे कहा, यह अमेरिका है, यहां बॉलीवुड के एक से एक ऊंचे कलाकार आते हैं, शीर्ष के गायक-गायिका आते हैं, उनके प्रोग्राम में लोग तो बहुत आते हैं लेकिन अधिक देर ठहरते नहीं हैं। लेकिन जब उन्होंने यह देखा कि कविसम्मेलन के शुरू होने के बाद श्रोताओं ने अपने मित्रों को फोन करने शुरू किए कि तत्काल आ जाओ, एक अद्भुत कार्यक्रम चल रहा है, तो अचानक ही कार्यक्रमों के मध्य में होने वाले अंतराल के बाद श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी। यह प्रो. अशोक चक्रधर की भाषाई शक्ति और वाचिक परम्परा की समझ का परिणाम था कि आज अंतरराष्ट्रीय हिन्दी समिति अमेरिका और कनाडा के 22 से 25 शहरों में एक साथ सफलतापूर्वक विभिन्न आयोजन कर रही है, जिनसे हिन्दुस्तान के अनेक कवियों को, अपनी रचनाएं सुनाकर श्रोताओं को आनंदित करने के अवसर मिले हैं।

1987 में प्रो. अशोक चक्रधर अपने अग्रज प्रतिष्ठित हास्य कवि ओमप्रकाश आदित्य जी के साथ मॉरीशस की यात्रा पर गए, उस समय माननीय अनिरुद्ध जगन्नाथ जी वहां पहली बार प्रधानमंत्री बने थे, वह स्वयं भी हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में रुचि रखते थे। दोनों कवियों ने एक महीने तक मॉरीशस के गांव-गांव जाकर अनेक स्थानों पर काव्य पाठ किया। उन्हें वहां एक गंभीर साहित्यकार के रूप में स्वीकारोक्ति मिली, अभिमन्यु अनत जैसे वरिष्ठ आप्रवासी हिन्दी साहित्यकार ने उनकी इस यात्रा पर साहित्यिक लेख लिखे और हिन्दी की वाचिक परम्परा के योगदान हास्य-व्यंग्य की ताक़त को हृदय से स्वीकार किया।

विदेशों में वाचिक परम्परा के योगदान को प्रतिष्ठित करने में भारतीय दूरदर्शन की भी एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। दूरदर्शन के

माध्यम से कविसम्मेलन लोकप्रिय हुए। उनकी वीडियो और ऑडियो कैसेट निकले। श्रोताओं ने उन्हें सुना और उनके इन कैसेटों को विदेशों में बसे अपने मित्रों को भी उपहार के रूप में प्रदान किया। ये वह जमाना था जब न यू-ट्यूब थी और न इंटरनेट था, लेकिन ऑडियो, वीडियो कैसेट ने अनेक आप्रवासी भारतीयों के मन में यह इच्छा जागृत की कि ऐसा कार्यक्रम भारतीय कवियों के साथ हमारे देश में भी आयोजित होना चाहिए। इसका प्रभाव यह हुआ कि कुछ आप्रवासी भारतीयों ने अपने पारिवारिक समारोहों में और कुछ उद्योगपतियों ने अपने औद्योगिक संस्थान में कार्य करने वाले कर्मियों के मनोरंजन के लिए भी कविसम्मेलन आयोजित कराने शुरू किए।

यू.के. में हिन्दी कविसम्मेलनों की शुरुआत करवाने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान तत्कालीन उच्चायुक्त, उच्चायोग लन्दन, माननीय डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी का था। उन्होंने अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद के सहयोग से यू.के. के विभिन्न शहरों में कविसम्मेलनों की शुरुआत करवाई। उन्होंने यू.के. की विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं को इन समारोहों के साथ जोड़ा। मैंने अपनी यू.के. यात्रा के दौरान अनेक बार यह महसूस किया कि यू.के. में आयोजित होने वाले इन कविसम्मेलनों में आप अपनी गंभीर से गंभीर कविताओं को भी पूरे मनोयोग के साथ प्रस्तुत कर सकते हैं।

विदेशों में आयोजित होने वाले इन कविसम्मेलनों में प्रायः भारत और भारत की भूमि से जुड़ी हुई संवेदनात्मक कविताओं को अधिक भावुक हृदय के साथ सुना जाता है। अपनी प्रथम अमेरिका यात्रा के दौरान मैं, लोकप्रिय गीतकार डॉ. विष्णु सक्सेना और हास्य व्यंग्य के अनूठे हस्ताक्षर सर्वेश अस्थाना के साथ था। हम तीनों ने मिलकर भारत की गौरव-गरिमा को प्रस्तुत करने वाला एक गीत लिखा था, जब हम कविसम्मेलनों की समाप्ति पर उस गीत का सामूहिक पाठ करते थे तो अनेक श्रोताओं की आंखें अश्रुपूरित हो जाती थीं।

धीरे-धीरे यह वाचिक परम्परा पूरी दुनिया में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुकी है। आज ऑस्ट्रेलिया में हिन्दी समाज और राजस्थान के लोग प्रतिवर्ष कविसम्मेलन करवाते हैं। इंडियन क्लब ऑफ़ मस्कट प्रतिवर्ष, मस्कट में एक बृहद कविसम्मेलन का आयोजन करता है, जिसमें श्रोताओं की संख्या 1500 से 2000 तक होती है। सिंगापुर में चारकुला आर्ट्स के माध्यम से अलका जी के द्वारा संयोजित कविसम्मेलन लोकप्रिय हो रहे है। साथ ही साथ दुबई, इंडोनेशिया, हांगकांग, बैंकॉक आदि में भी मंच की इस वाचिक परम्परा को निरंतर स्वीकार्यता और सम्मान प्राप्त हो रहा है। हाल ही में बेल्जियम में भी इसकी शानदार शुरुआत हुई है। डॉ. सुधा ओम ढींगरा, नन्दलाल सिंह, गुलाब खण्डेलवाल, जया वर्मा, पद्मेश गुप्त, रेणु राजवंशी, अलका शर्मा, शैलजा चन्द्रा, उषाराजे सक्सेना, के. बी. एल. सक्सेना एवं मनरेंद्र जी ने क्षितिज के पार विदेशों में आयोजित होने वाले इन कविसम्मेलनों के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

कुछ कवियों ने अपने आचरण और दुर्व्यवहार से विदेशों में बसे आयोजकों के दिल को ठेस भी पहुंचाई तो कुछ आयोजकों ने विभिन्न अकवियों को बुलाकर हिन्दी की ताक़त और हमारी वाचिक परम्परा की शक्ति को क्षीण करने की कोशिश भी की है।

कविता एक सनातन धारा है, यह किसी भी रूप में हो, इसका हर रूप हमारे जीवन को, हमारी संस्कृति को और हमारे जीवन-मूल्यों को एक सकारात्मक और सार्थक दिशा प्रदान करता है। आइए हम विगत में हुई भूलों को सुधारें और सच्चे मन से आगत का स्वागत करने के लिए तत्पर होकर वाचिक परम्परा को प्रतिष्ठित करने में अपना योगदान प्रदान करें।

hasyakavipraveenshukla@gmail.com

ये आठ तो सदाबहार हैं

डॉ. देवेन्द्र राज अंकुर

लेखक राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक रह चुके वरिष्ठ रंगकर्मी हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम.ए. करने के बाद उन्होंने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से निर्देशन में विशेषज्ञता के साथ नाट्य-कला में डिप्लोमा किया। भारतीय शास्त्रीय नाटक और सौन्दर्यशास्त्र के विशेषज्ञ हैं। वे आधुनिक भारतीय रंगमंच में एक बिलकुल नई विधा कहानी-मंचन के प्रणेता हैं। उन्हें अनेक सम्मानों से नवाज़ा गया है।

बीसवीं शताब्दी के पहले सबसे बड़े कवि, नाटककार जयशंकर प्रसाद ने 1923 में हिंदी साहित्य सम्मेलन कानपुर में एक भाषण दिया था, जो अब एक निबंध के रूप में 'हिंदी में नाटक का स्थान' शीर्षक से रत्नशंकर प्रसाद द्वारा संकलित 'अभिषेक' निबंध संग्रह में संकलित है। यहीं पहली बार नाटक के भाषा की प्रचार-प्रसार क्षमता के संदर्भ में महत्व आंकने का प्रयत्न किया गया। प्रसाद ने यह स्वीकार किया कि जितनी सरलता और सहजता से भाषा और वह भी हिंदी भाषा का विकास नाटक जैसी विधा के माध्यम से किया जा सकता है, किसी और विकल्प से नहीं। इसका एकमात्र कारण यही है कि नाटकों में भाषा केवल अपने लिखित रूप में ही नहीं वरन अपने वाचिक रूप में भी सुरक्षित रहती है।

प्रायः भारतेन्दु और प्रसाद को पारसी नाटक और रंगमंच के विरोध में ही प्रस्तुत किया जाता है। आश्चर्य की बात है कि इसी निबंध में प्रसाद ने पारसी नाटकों के उसी महत्व को खुले हृदय से स्वीकार किया है, जिसके कारण वे जनमानस में इतने लोकप्रिय हुए और वह है, उनमें प्राप्त एक ऐसी भाषा जो सहज ही लोगों की जुबान पर चढ़ जाती है। उनकी यह अपेक्षा बिल्कुल सही जान पड़ती है कि यदि पारसी नाटकों में प्रयुक्त गीत, ग़ज़ल और उर्दू भाषा समाज में इतनी लोकप्रिय हो सकती है तो नाटकों के माध्यम से हिंदी को वह स्थान क्यों नहीं प्राप्त हो सकता?

3 अप्रैल 1868 को बनारस में मंचित पं. शीतला प्रसाद त्रिपाठी के नाटक 'जानकी मंगल' को हिंदी का पहला मंचित नाटक माना जाता है। इस प्रकार हिंदी नाटकों और उनके मंचन का डेढ़ सौ वर्ष का इतिहास हमारे सामने मौजूद है। आइए, हम उन कुछ सदाबहार और कालजयी नाटकों की चर्चा करें जो अपने समय में भी खेले गए, आज भी खेले जाते हैं और आज तक सार्थक, समकालीन और शाश्वत बने हुए हैं।

इनमें पहले नम्बर पर आता है भारतेन्दु का 'अंधेर नगरी'। ऐसा कहा जाता है कि बनारस की किसी नाट्य मंडली के आग्रह पर भारतेन्दु ने एक रात में ही इस नाटक को लिख डाला था और

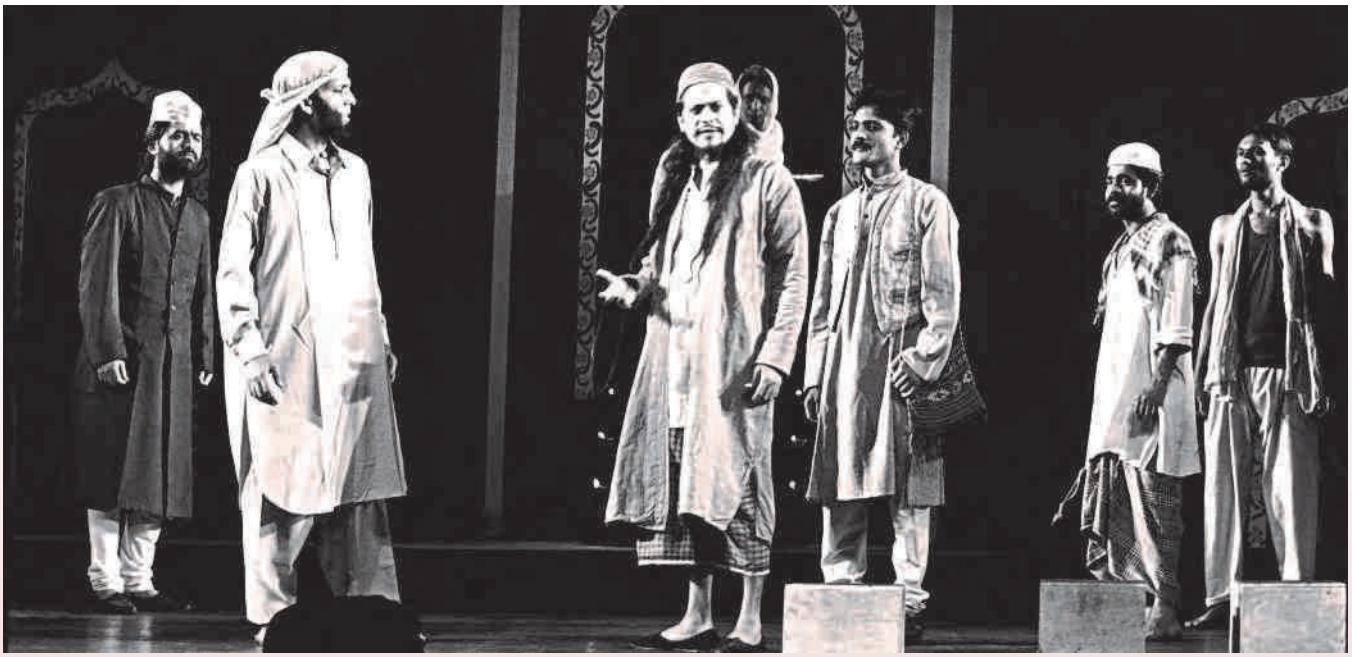

दूसरे दिन दशाश्वमेघ घाट पर उसका मंचन भी हो गया था। हिंदी के आलोचकों, विशेष रूप से डॉ. नगेन्द्र ने कभी इस नाटक को गंभीरता से नहीं लिया। लेकिन 1881 से लेकर आज तक यह नाटक लगातार खेला जाता रहा है। चाहे बच्चों के साथ अथवा बड़ों के साथ, हर रूप में यह नाटक सचमुच में सदाबहार नाटक है। बेशक उस वक़्त भारतेन्दु के सामने अंग्रेज़ों का शासन नाटक के केंद्र में रहा हो, लेकिन अंततः किसी भी भ्रष्ट व्यवस्था के विरुद्ध एक जबरदस्त आवाज़ है। इसे नुक्कड़ पर खेलें अथवा मंच पर, इसका प्रभाव ज्यों का त्यों बना रहता है।

यद्यपि साहित्य में जयशंकर प्रसाद के स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त नाटकों की ज़्यादा चर्चा हुई है, लेकिन प्रदर्शन की दृष्टि से सबसे ज़्यादा बार खेला जाने वाला नाटक है 'ध्रुवस्वामिनी'। अपने आकार-प्रकार और कथ्य की दृष्टि से भी यह नाटक ज़्यादा विस्फोटक है। पुरुष जब चाहे स्त्री का परित्याग कर सकता है, लेकिन पहली बार ऐसा कदम स्त्री की ओर से उठाया गया है और वह भी सुदूर अतीत में धर्म और राजनीति की स्वीकृति के साथ। इस अर्थ में यह नाटक बिल्कुल आधुनिक हो उठता है। कोई आश्चर्य नहीं कि स्कूल-कॉलेजों के साथ-साथ शौकिया, व्यावसायिक हर तरह की नाट्य मंडली द्वारा खेला जाता रहा है।

आज़ादी के बाद छपकर आया 1954 में, लेकिन खेला गया 1963 में, यह रचना है धर्मवीर भारती की 'अंधा युग'। नाटक चूंकि काव्य नाटक के रूप में लिखा गया है तो बहुत दिनों तक कविता के क्षेत्र में ही इस पर विमर्श होता रहा। ज़्यादा से ज़्यादा इसे रेडियो नाटक के रूप में लिया गया और इलाहाबाद रेडियो स्टेशन से इसका 1960 के आसपास प्रसारण भी हुआ। लेकिन 1963 में जब इब्राहिम अल्काज़ी ने फ़िरोज़शाह कोटला के खंडहरों की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के छात्रों के साथ इसका मंचन किया तो देखते ही देखते देशभर की नाट्य मंडलियों ने इसे हाथों-हाथ लिया और आज तक हो रहा है। सिर्फ हिंदी में ही नहीं कई भाषाओं में इसके प्रदर्शन हो चुके हैं। लगभग हर छोटे-बड़े अभिनेता की हार्दिक आकांक्षा रहती है कि उसे भी कभी अश्वत्थामा की भूमिका करने का मौका मिले।

मोहन राकेश भले ही पहले कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में स्थापित हो चुके हों, लेकिन आज वह मात्र एक नाटककार के रूप में जाने जाते हैं और उन्हें यह प्रतिष्ठा दिलाई है उनके पहले नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' ने। शायद ही कोई नाट्य मंडली होगी जिसने इस नाटक को मंचित न किया हो। एक आदर्श नाटक कैसा होना चाहिए, उसका एक प्रतिमान है 'आषाढ़ का एक दिन'। 1962 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा अल्काज़ी के निर्देशन में मंचित, इस प्रस्तुति से ही आधुनिक हिंदी रंगमंच की शुरूआत मानी जाती है। दोहराने की ज़रूरत नहीं कि एक सृजनधर्मी कलाकार के सामने चुनाव का प्रश्न, व्यवस्था अथवा अपनी कला में से किसे चुने? यह एक ऐसा कथ्य है जो हर युग में सार्थक बना रहेगा। स्वयं रंगकर्मियों के साथ तो यह हमेशा से जुड़ा है और यही कारण है कि वे बार-बार इस नाटक की तरफ लौटते रहते हैं।

छठे दशक के अंत में भारतीय रंगमंच में पश्चिमी यथार्थवाद के विरोध में अपनी शास्त्रीय और लोक नाट्य परम्पराओं की तरफ लौटने की शुरुआत हुई। इस काम में हिंदी के नाटककार भी पीछे नहीं रहे। सत्तरवें दशक के आरम्भ में ही हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि

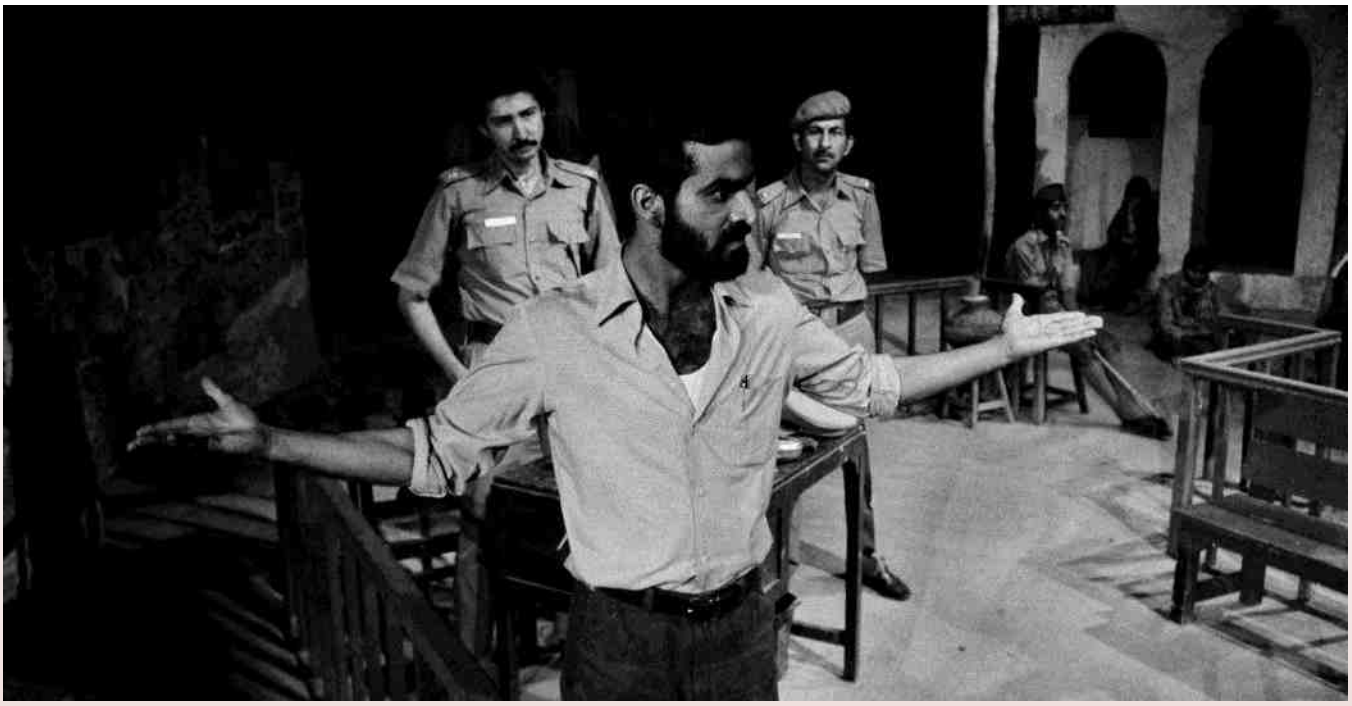

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपना पहला बड़ा नाटक 'बकरी' लेकर आए। नेता लोग जनता को बहलाने, फुसलाने के लिए गांधी जी की बकरी जैसे प्रतीक का किस तरह से प्रयोग करते हैं, सर्वेश्वर जी ने उत्तर प्रदेश के लोक नाट्य नौटंकी की गायकी और दूसरे तत्वों के भीतर से आज के कथ्य को बहुत खूबसूरती से व्यंजित किया है। स्वाभाविक ही था कि गीत, संगीत और शैलीबद्ध संवाद शैली के साथ-साथ आज की भ्रष्ट राजनीति, इन दोनों के मेल ने इस नाटक को बहुत ही लोकप्रिय बना दिया और ये आज तक खेला जाता है।

नौवें दशक अर्थात 1981 से 1990 के बीच हमारे सामने तीन ऐसे नाटक आते हैं जिन्होंने सर्वाधिक बार मंचित नाटकों का रिकॉर्ड बना दिया। इनमें सबसे पहला है मन्नू भंडारी का 'महाभोज'। पहले यह एक उपन्यास के रूप में प्रकाशित हुआ जिसे स्वयं मन्नू जी ने निर्देशक अमाल अलाना के साथ मिलकर एक नाटक का रूप दिया। पहली बार मंचित होते ही 'महाभोज' नाटक इतना ज़्यादा चर्चित हुआ कि लोग मूल उपन्यास को भूल ही गए। देश के कोने-कोने में हर छोटी-बड़ी मंडली ने इसे खेला। कारण फिर वही कि ग़रीब बिसेसर की मृत्यु जैसी घटना का सत्ता पक्ष और विपक्ष किस प्रकार अपने लाभ के लिए इस्तेमाल करते हैं। क्या आज भी इस स्थिति में कोई बदलाव आया है?

इसी दशक के लगभग अंत में स्वदेश दीपक अपना नाटक 'कोर्ट मार्शल' लेकर आए। उस समय साहित्य में भी दलित विमर्श की शुरुआत हो चुकी थी। नाटक और रंगमंच की दुनिया में यह पहल 'कोर्ट मार्शल' ने की। सेना में एक जवान रामचन्दर दलित होने के कारण हमेशा अपने से सीनियर अफसरों द्वारा इस हद तक प्रताड़ित होता रहता है कि अंततः अपने एक अफसर पर गोली चला बैठता है। यह एक ऐसा उत्तेजक और विस्फोटक कथ्य था जिसने सभी दर्शकों को भीतर तक उद्वेलित किया। लगभग तीस साल के बाद भी इस नाटक का असर कम नहीं हुआ है।

ऐसा ही तीसरा नाटक है असग़र वजाहत का 'जिन लाहौर नहीं वेख्या'। भारत-पाकिस्तान विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखा नाटक 1989 में भी एकदम ताज़ा लगा। आज भी देशभर में साम्प्रदायिक दंगों का सिलसिला बदस्तूर जारी है। 1984 के दिल्ली दंगे, 1992-93 के बाबरी मस्जिद, मुंबई बम कांड, 2000 के गुजरात दंगे। इधर के मुजफ्फर नगर में घटी घटनाएं, ये सब कुछ इस नाटक को हमेशा केंद्र में रखेगा। यही कारण है कि यह नाटक भी उन सदाबहार नाटकों की परंपरा को आगे बढ़ाता है, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार ये आठों नाटक एक साथ मिलकर भारतीय रंगमंच के सौ साल से ऊपर के इतिहास को भी प्रस्तुत करते हैं। नाटकों के शिल्प और संरचना को लेकर भी दो विकल्प प्रस्तुत करते हैं, एक गीत-संगीत, नृत्य से भरपूर और दूसरा सीधे-सीधे गद्य के रास्ते से अपने कथ्य को उद्घाटित करना। लेकिन एक बात में ये सभी नाटक एक समान हैं कि इनके कथ्य ऐसे शाश्वत कथ्य हैं जो हर युग में जीवंत रहेंगे। शायद यही वह सूत्र है जिसने हिंदी रंगमंच को तो शिखर तक पहुंचाया ही, साथ-साथ हिंदी भाषा को भी अपने अलग-अलग रूप-रंगों में जन-जन तक पहुंचाया।

drankurnsd@gmail.com

लेखक की गणना भारत के वरिष्ठ और एकनिष्ठ गांधीवादियों में होती है। जोहान्नेसबर्ग में आयोजित हुए पिछले विश्व हिंदी सम्मेलन में आपकी दो पुस्तकों का लोकार्पण हुआ। आप केंद्रीय हिंदी संस्थान, मैसूर केंद्र के पूर्व क्षेत्रीय निदेशक हैं।

हिंदी : कल, आज और कल

प्रो. एम. ज्ञानम

बीता हुआ कल

दक्षिण भारत की भाषाएं एक अन्य भाषा परिवार-द्रविड़ भाषा परिवार की हैं। हिंदी भाषा प्रदेश से दूर भी स्थित हैं, इसलिए सांस्कृतिक दृष्टि से एवं शब्द भंडार की दृष्टि से कई समानाताएं होने पर भी हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं के बीच वह पारस्परिक बोधगम्यता एवं भाषा वैज्ञानिक निकटता नहीं है, जो हिंदी और अन्य भारतीय आर्य भाषाओं के बीच में है। फिर भी यह अकाट्य सत्य है कि कोई भारतीय भाषा भारत की राष्ट्रभाषा/राजभाषा बन सकती है, तो वह हिंदी ही है। इस तथ्य को महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका में ही समझ गए थे और यह भी समझ गए थे कि दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार के लिए विशेष प्रयास करने होंगे।

इसलिए उन्होंने दक्षिण में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा सन् 1918 में स्थापित की और वह निर्मोही नेता जो किसी पद का इच्छुक नहीं था, इस सभा की सेवा की अहमियत को देखते हुए प्रारंभ से आजीवन उसका अध्यक्ष बना रहा। उन्होंने भारत के पुनर्निर्माण के लिए जो 18 रचनात्मक कार्य सुझाए, उनमें हिंदी प्रचार को भी रखा।

गांधी जी से प्रेरित होकर हैदराबाद रियासत (वर्तमान आंध्र प्रदेश), मैसूर रियासत (वर्तमान कर्नाटक) और त्रावणकोर रियासत (वर्तमान केरल) में भी हिंदी प्रचार की संस्थाएं खोली गईं। हिंदी प्रचार-प्रसार राष्ट्रीय आंदोलन का एक अंग था।

आज़ादी के उपरांत छः महीने के अंदर महात्मा गांधी चल बसे। उसके बाद उनके रचनात्मक कार्यों में किसी पर बड़ी तीव्रता से काम हुआ तो वह हिंदी प्रचार ही है। संविधान सभा ने सर्वसम्मति से और काफ़ी सौमनस्य से हिंदी को राजभाषा स्वीकार किया। दक्षिण भारत के हिंदीतर भाषा-भाषियों ने हिंदी प्रचार का बीड़ा उठाया। मोटूरि सत्यनारायण, एम.सुब्रमण्यम, वासुदेवन

पिल्लै, नावडा जी आदि के नाम उनमें अग्रगण्य थे।

उधर सरकार ने भी राजभाषा कार्यान्वयन के लिए काफ़ी कदम उठाए। केंद्रीय निदेशालय, केंद्रीय हिंदी संस्थान, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, अनुवाद ब्यूरो आदि की स्थापना की गई। गृह मंत्रालय के अंदर राजभाषा कार्यान्वयन के लिए प्रकोष्ठ खोला गया। ये सब आज तक प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं।

आज

आज दक्षिण भारत में जो हिंदी प्रचार-प्रसार हो रहा है उसे चार वर्गों में बांट सकते हैं।

- स्कूल/कॉलेजों में हिंदी शिक्षण के माध्यम से हिंदी प्रचार-प्रसार।
- केंद्र सरकार के कार्यालयों में हिंदी शिक्षण एवं प्रयोग के माध्यम से हिंदी प्रचार-प्रसार।
- स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा हिंदी प्रचार-प्रसार।
- स्वयमेव होने वाला अनौपचारिक हिंदी प्रचार-प्रसार।
- स्कूल/कॉलेजों में हिंदी दक्षिण के माध्यम से हिंदी प्रचार-प्रसार।

केरल में 5 वीं कक्षा से, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में छठी कक्षा से दसवीं तक हिंदी अनिवार्य रूप में पढ़ाई जाती है। उसके बाद ऐच्छिक है। ग्यारहवीं और बारहवीं में हिंदी बहुत कम लोग ही पढ़ते हैं। हां, कालेजों में हिंदी एक विषय के रूप में लेने वाले काफी हैं।

तमिलनाडु की स्थिति अलग है। संविधान सभा के निर्णय के अनुसार जब सन् 1965 में हिंदी राजभाषा के रूप में पूर्ण रूपेण अपनाई जाने वाली थी, तब उसका जबरदस्त विरोध उस समय के प्रमुख विपक्षी दल द्रमुक ने किया और 1967 के चुनाव में उस दल के जीतने में हिंदी विरोध की एक अहम भूमिका रही। यह प्रचार किया गया कि हिंदी आई तो तमिल नष्ट हो जाएगी। सत्तारूढ़ होते ही द्रमुक ने स्कूलों में हिंदी शिक्षण को बंद कर दिया और दो भाषा-शिक्षण (मातृभाषा और अंग्रेज़ी) नीति को अपना लिया।

आज आम जनता में हिंदी विरोध नहीं है। प्राय: सभी एक भाषा के रूप में हिंदी पढ़ना चाहते हैं, लेकिन तमिलनाडु सरकार स्कूलों में हिंदी शिक्षण की सुविधा नहीं दे रही है। तमिलनाडु के प्रमुख राजनैतिक दल दो ही हैं, द्रमुक और उसी से अलग हुआ उसका विपक्षी दल अखिल भारतीय अण्णा द्रमुक। ये दो दल ही 1967 से आज तक बदल-बदलकर तमिलनाडु में सरकार बना रहे हैं। इनमें से एक दल अगर हिंदी-विरोध में ढीलापन बरत रहा है, तो उसका फायदा उठाकर उस पर हमला बोलने के लिए दूसरा दल तैयार खड़ा रहता है। इसलिए सरकारी या सरकार से अनुदान प्राप्त स्कूलों में आज तक हिंदी शिक्षण बंद है।

चूंकि जनता में हिंदी सीखने की बड़ी इच्छा है, प्राय: सभी प्राइवेट स्कूलों में हिंदी पढाई जाती है। ज़्यादातर प्राइवेट स्कूल महंगे भी होते हैं। इसलिए ग्रामीण क्षेत्र के बच्चे और गरीब बच्चे हिंदी शिक्षण से वंचित हो जाते हैं।

केंद्र सरकार के कार्यालयों में हिंदी पाक्षिक एवं प्रयोग के माध्यम से हिंदी प्रचार-प्रसार

केंद्र सरकार के कार्यालयों में हिंदी प्रयोग का लक्ष्य दक्षिण भारत के लिए ('ग' क्षेत्र) 53 प्रतिशत है। इसके अलावा हिंदी बैठकों की संख्या भी निर्धारित है। इसकी देखरेख गृह मंत्रालय की क्षेत्रीय कार्यान्वयन समिति करती है। यह समिति राजभाषा कार्यान्वयन में प्रगति की तिमाही रिपार्ट भी संबंधित कार्यालयों से मंगवाती है। केरल, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में स्थित केंद्र सरकार के कार्यालय आसानी से निर्धारित लक्ष्य पूरा कर लेते हैं। उनमें से कई कार्यालय हिंदी दक्षता में 90 का लक्ष्य पूरा कर राजपत्र में अपने नाम अंकित भी कर चुके हैं। लेकिन तमिलनाडु के कार्यालय निर्धारित लक्ष्य को

पूरा करने में कठिनाई महसूस करते हैं। इसके दो कारण हैं—

स्कूलों में हिंदी शिक्षण न होने के कारण तमिलनाडु से भर्ती होनेवाले कर्मचारी प्राय: हिंदी से बिलकुल अनभिज्ञ ही होते हैं और स्कूल/कॉलेज छोड़ चुकने के कई साल बाद हिंदी में 'अ, आ' पढ़ना उनके लिए कठिन हो जाता है। हिंदी शिक्षक पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं, और अगर हैं भी तो, कर्मचारियों की कमी के कारण संबंधित कार्यालय अपने कर्मचारियों को हिंदी कक्षाओं में प्रतिनियुक्त करने में कठिनाई महसूस करते हैं।

स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा हिंदी प्रचार-प्रसार

वर्तमान में पूरे दक्षिण में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' यह कार्य कर रही है। इसके अलावा केरल में केरल हिंदी प्रचार सभा, कर्नाटक में कर्नाटक राज्य हिंदी प्रचार सभा, मैसूर हिंदी प्रचार परिषद और कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति, और आंध्र प्रदेश में आंध्र महिला सभा भी दक्षिण में हिंदी प्रचार-प्रसार कर रही हैं। इनके हिंदी प्रचारक हजारों में हैं और इनसे चलाई जाने वाली हिंदी परीक्षाओं के लिए छात्रों को तैयार करते हैं। इन छात्रों की संख्या हर साल लाखों में होती है। ये सभाएं हिंदी शिक्षक-प्रशिक्षण, हिंदी टंकण, हिंदी आशुलिपि, हिंदी अनुवाद, हिंदी पत्रकारिता आदि रोजगार से संबंधित पाठ्यक्रम भी चलाते हैं। लेकिन इन स्वैच्छिक संस्थाओं का हिंदी ज्ञान बहुत ऊंचे स्तर का हो नहीं पाता। इसके दो कारण हैं :

- शिक्षित हिंदी प्रचारकों/शिक्षकों की कमी।
- एक अतिरिक्त योग्यता के लिए ही हिंदी का अध्ययन करने वाले ज़्यादातर छात्र स्कूल कॉलेज के विषयों की तरह हिंदी की ओर ध्यान अधिक नहीं देते।
- स्वयमेव होनेवाला अनौपचारिक हिंदी प्रचार-प्रसार

हिंदी का यह प्रसार-प्रचार खूब हो रहा है और बढ़ भी रहा है। सिनेमा और टेलिविजन की इसमें प्रमुख भूमिका है। दूसरी ओर शिक्षा और नौकरी भी हिंदी को अप्रत्यक्ष रुप में फैला रही हैं। शिक्षा या नौकरी के लिए लोग उत्तर से दक्षिण या दक्षिण से उत्तर की ओर आते हैं। उनकी संपर्क भाषा हिंदी ही हैं। कर्नाटक के दावणगेरे या तूमकूर के बाज़ार में जब चलेंगे तो आसपास इतने हिंदी वार्तालाप सुनेंगे कि संदेह होने लगता है हम कन्नड़ भाषा प्रदेश में हैं या हिंदी भाषा प्रदेश में। बेंगलूर आई.टी. क्षेत्र का एक ऐसा हब है, जहां किसी अजनबी से वार्तालाप पहले हिंदी से ही शुरू होती है। दक्षिण भारत में कई मज़दूर उड़ीसा, बिहार आदि से हैं। दक्षिण के होटल पूर्वोत्तर भारत के कर्मचारियों को बड़ी मात्रा में नियुक्त करते हैं। इन सबकी संपर्क भाषा हिंदी ही है। इस तरह हिंदी अपने-आप ही फैल रही है।

आने वाला कल

अनौपचारिक रूप में हिंदी अपने आप कल और भी बढ़ेगी। ग्लोबल विलेज के इस युग में भारत के विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच आवाजाही बहुत होगी और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी और फैलेगी। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा ने अपने भारत-व्यापी हिंदी सर्वेक्षण से यह निरूपित किया है कि भारत में जहां बहुभाषिकता 10 प्रतिशत या उससे अधिक होगी वहां संपर्क भाषा के रूप में हिंदी उभरेगी, लेकिन यह बोलचाल की होगी। इसे मानक रूप प्रदान कर राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करना हिंदी शिक्षा-अभिकरणों का काम है।

gandhignanam@yahoo.com

लेखक वरिष्ठ कवि, पत्रकार, संपादक और अनुवादक हैं। वे पूर्व सांसद (राज्य सभा), पूर्व उपाध्यक्ष, संसदीय राजभाषा समिति तथा पूर्व उपाध्यक्ष केंद्रीय हिंदी संस्थान हैं। आपको देश-विदेश के अनेक सम्मानों से अलंकृत किया जा चुका है। इन दिनों वे भारत सरकार की केंद्रीय हिंदी समिति के सदस्य हैं।

महत्वपूर्ण प्रचारक एवं प्रसारक

आचार्य यार्लागड्डा लक्ष्मीप्रसाद

यदि आप विशाखापट्टनम के समुद्र तट पर सैर करने निकलें तो आपके एक ओर समुद्र होगा और दूसरी ओर सड़क के किनारे बहुत दूर तक भव्य मूर्तियों की एक कतार दिखाई देगी। इनमें से अधिकांश मूर्तियां प्राचीन से लेकर समकालीन लेखकों और साहित्यकारों की हैं। आन्ध्र प्रदेश और तेलंगाना राज्यों के आम लोग भी साहित्य और संस्कृति को बहुत आदर से देखते हैं। अपने प्रिय लेखकों को मालाएं पहनाते हैं। वे व्यावहारिक भाषा, संपर्क भाषा एवं साहित्यिक भाषा के रूप में हिंदी को अपनाने तथा उसके माध्यम से राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता को पुष्ट बनाने की दिशा में अपने समर्थन को व्यक्त करने में भी रुचि दिखाते आए हैं।

आन्ध्र प्रदेश और तेलंगाना में हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में कई संस्थाओं और व्यक्तियों का योगदान निश्चय ही महत्वपूर्ण रहा है। सर्वश्री जंध्याला शिवन्ना शास्त्री, पीसपाटि वेंकट सुब्बाराव, बी. वेंकट सुब्बम्मा, डी. रामकृष्णा शास्त्री, उन्नव राज गोपालकृष्णय्या व मोटूरि सत्यनारायण जैसे धुरंधर हिंदी प्रचारकों ने आन्ध्र प्रदेश में हिंदी प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठाया। ईमनि लक्ष्मण स्वामी का नाम आन्ध्र प्रांत में हिंदी का प्रचार करने वालों में विशेष आदर के साथ लिया जाता है। श्री लक्ष्मण स्वामी नाटकों के द्वारा आन्ध्र प्रदेश में हिंदी का प्रचार करना चाहते थे। पंडित रामानंद शर्मा, प्रताप नारायण वाजपेयी, पंडित रघुवर दयाल मिश्र, पंडित रामनरेश त्रिपाठी, पं. अवधनंदन जमुना प्रसाद श्रीवास्तव, रामभरोसे श्रीवास्तव, पं. सिद्धगोपाल, पं. नागेश्वर मिश्र आदि आंध्रप्रदेश में हिंदी का प्रचार करने उत्तर भारत से आए।

राजमहेंद्री में सन् 1922 में हिंदी शिक्षक विद्यालय की स्थापना हुई। आन्ध्र प्रान्त के बीस छात्रों ने इसमें प्रशिक्षण पाया। पं. रामानंद शर्मा और पं. हृषिकेश शर्मा ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान दिया है। पं. देवदूत विद्यार्थी के नेतृत्व में जो अभियान चलाया गया उसकी ओर आकर्षित छात्रों की संख्या बढ़ी। आन्ध्र जातीय कलाशाला, मछलीपट्टणम का संचालन हृषिकेश शर्मा ने किया था। देशभक्त कोंडा वेंकटप्पय्या, मल्लादि आंजनेयुलु, उन्नव राजगोपाल

कृष्णय्या, रामगोपाल वर्मा, बंगा वेंकटेश्वर राव और लक्ष्मीनारायण शास्त्री उन दिनों हिंदी प्रचार का कार्य देखते थे। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में देशभक्त कोंडा वेंकटप्पय्या के भाषण को सुनकर महात्मा गांधी अभिभूत हो गए थे।

सन् 1923 में 'हिंदी कुटीर' और कस्तूरी देवी बालिका पाठशाला में हिंदी का प्रचार होने लगा। हिंदी के प्रचार कार्यों में श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख का बड़ा हाथ था। आन्ध्र प्रदेश के कई नगरों में सन् 1918 व 1930 के बीच हिंदी का प्रचार शुरू हो गया। नेल्लूरू में सन् 1920 में ही आन्ध्र का शाखा कार्यालय खुला। श्री अद्देपल्लि राम शेषय्या ने सन् 1932 में विजयवाड़ा में सभा के कार्यालय का उद्घाटन किया। पी. सीताराम शर्मा, यलमंच्चि शेषगिरि राव, मोटूरि सत्यनारायण, उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या, चेभोट्ल हनुमंतराव आदि का सहयोग इस कार्यालय को खोलने में विशिष्ट था। सन् 1933 में काका कालेलकर की अध्यक्षता में एक स्थाई संस्था की स्थापना पर बल दिया गया। सन् 1936 में विजयवाड़ा में आन्ध्र राष्ट्र हिंदी प्रचार संस्था की स्थापना हुई। विभिन्न प्रांतों में हिंदी महासभाओं का आयोजन हुआ। सन् 1933 में हिंदी प्रेमी मंडली और हिंदी प्रचारक मंडली शुरू हुई। कृष्णा जिले के हिंदी प्रचारकों में यलमंचिलि वेंकटप्पय्या, यलमंचिलि वेंकटेश्वरराव, कोच्चेर्ल वेंकट सुब्बाराव, बंड्लमूडि आंजनेयुलु, काजा वेंकटेश्वरराव आदि उल्लेखनीय हैं। नाटकों के प्रदर्शन द्वारा हिंदी भाषा को सीखने की ओर छात्रों को आकर्षित करने के सफल प्रयास करने वालों में सर्वश्री गाडेपल्लि सूर्यनारायण राव, गोविंद राजुलु नायुडु, वारणासी रामाराव, सोमंचि लिंगय्या, उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या, वेमूरि आंजनेय शर्मा, पसल सूर्यचन्द्रराव, शीर्ल ब्रह्मय्या व वेमूरि राधाकृष्ण मूर्ति प्रमुख थे। सर्वश्री मोटूरि सत्यनारायण, उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या, वेमूरि आंजनेय शर्मा, चिट्टूरि लक्ष्मीनारायण शर्मा, चन्द्रभट्ल, अप्पन्न शास्त्री, नंडूरि शोभनाद्रि आचार्युलु आदि के नाम आन्ध्र प्रान्त में विशेष रूप से हिंदी का प्रचार करने वालों में उल्लेखनीय हैं।

आन्ध्र में हिंदी शिक्षण कई स्तरों का होता है। आरंभिक शिक्षा के दौरान भाषा शिक्षण की विधियों का उपयोग किया जाता है तो बाद के स्तरों पर हिंदी शिक्षण, हिंदी भाषा एवं साहित्य के अध्ययन के रूप में किया जाता है। इस रूप में आन्ध्र प्रांत में स्कूली शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय स्तरीय शिक्षा तक हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है। कई सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा हिंदी सीखने की सुविधा उपलब्ध होने के कारण आन्ध्र प्रदेश के छात्र बड़ी संख्या में हिंदी सीखने लगे हैं। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद हिंदी प्रचार सभा तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग आदि संस्थाओं की ओर से इस राज्य के अनेक प्रांतों में हिंदी शिक्षण कार्य शुरू किया गया है। काकिनाडा, राजमुंद्री, एलूरू, विजयवाडा, विशाखपट्टनम, हैदराबाद जैसे कई नगरों में राष्ट्रीय एकता और अखंडता के समर्थक नेता वैयक्तिक स्तर पर भी हिंदी सिखाना राष्ट्रीय कार्य समझते थे। इनके प्रयासों के फलस्वरूप साधारण जनता भी हिंदी की ओर उन्मुख हुई थी।

पूर्वी गोदावरी जिले में हिंदी शिक्षण का कार्य सन् 1921 से ही शुरू हो गया। हिंदी प्रचार के विद्यालय की स्थापना कर सर्वप्रथम हिंदी के प्रचार का शुभारंभ श्री दामोदर राव ने किया था। उन्नव राजगोपाल कृष्णय्या, एस. वी. शिवराम शर्मा, भक्ताराम वेंकट

सुब्बाय्या आदि ने आन्ध्र प्रदेश में हिंदी के प्रचार को बढ़ावा देने में विशेष सहयोग दिया। पूर्वी गोदावरी जिले में हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में प्रचारक मंडली का योगदान विशिष्ट रहा है। हिंदी प्रेमी मंडली और महिला विद्यालय के माध्यम से ही इस जिले में हिंदी के प्रचार-प्रसार को प्रोत्साहन दिया गया है। साहित्य कलामंदिर के द्वारा राजमहेन्द्री में भी सन् 1974 में हिंदी प्रशिक्षण संस्था की स्थापना हुई। कई छात्र इस संस्था के माध्यम से हिंदी सीखने की ओर आकर्षित हुए।

हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य आन्ध्र के विभिन्न जिलों में कई रूपों में हुआ। हिंदी नाटकों के मंचन के द्वारा पश्चिम गोदावरी जिले में हिंदी प्रचार का कार्य शुरू हुआ है। श्री कोमांडूरि अप्पलाचारि ने सन् 1938 से इस जिले में हिंदी–प्रचार का कार्य शुरू किया। पेंड्याला परब्रह्मम शास्त्री, उप्पलपाटि बापन्ना, बाल सुंदर राव, मंडव राधाकृष्णा राव, मुनुकुट्ल लक्ष्मी नरासिंह मूर्ति, कांडूरि मल्लिकार्जुन, पेद्दिंटि नरसिंहाचार्य, मूटपत्ति लक्ष्मीनारायण आदि ने इस जिले में हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने में विशेष सहयोग दिया। श्री बोयपाटि नागेश्वरराव आन्ध्र के हिंदी प्रचारकों में अग्रणी हैं। गुंटूरु जिले के तेनाली में श्री नागेश्वरराव जी ने हिंदी प्रेमी मंडली महाविद्यालय की स्थापना की। इस विद्यालय में अब तक लगभग साठ हजार छात्रों ने हिंदी सीखी और पांच हजार छात्रों ने पंडित–प्रशिक्षण पाया। केंद्रीय हिंदी संस्थान और दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की समितियों के सदस्य के रूप में इन्होंने हिंदी–प्रचार को बढ़ावा दिया। 'पूर्ण कुंभ' और 'स्रवंती' के वे संपादक रहे। महात्मा गांधी और हिंदी इनकी दो आंखें हैं। दक्षिण में हिंदी के प्रचार और प्रसार के क्षेत्र में श्री नागेश्वरराव की उपलब्धियों को दृष्टि में रखकर भारत सरकार ने इन्हें गंगाशरण सिंह पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

रायलसीमा प्रदेश का भी हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में विशेष योगदान रहा है। श्री गाडिचर्ला हरिसर्वोत्तम राव ने हिंदी के प्रचार एवं प्रसार को अपना जीवन समर्पित किया। चित्तूरु, नंद्याला और गुंटूरु मे आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलनों की इन्होंने अध्यक्षता की। हिंदी को वे राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे। वे मानते थे कि देश की एकता के लिए हिंदी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है। सन् 1926 से इन्होंने नंद्याला में हिंदी कक्षाएं चलाने में विशेष योगदान दिया। श्री गरिमेल्ल कृष्णमूर्ति और सुब्बा रेड्डी जी ने द्रोणाचलम में हिंदी के प्रचार का कार्य आरंभ किया। आदोनी, कर्नूलु और मार्कापुरम में हिंदी कक्षाएं चलाना शुरू हो गया। रायलसीमा में हिंदी के प्रचार-प्रसार में श्री के.वी. नरसिंहम, कृष्णमूर्ति शास्त्री, महालक्ष्मी देवी और चेन्नकेशव राव ने विशेष योगदान दिया।

सन् 1923 में कुर्नूल जिले में प्रथम प्रेमी मंडली की स्थापना हुई। श्री वेंकोबाराव, मादिराजु, विश्वनाथम, एल. सरस्वती देवी, बालशौरी रेड्डी आदि ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान दिया। सन् 1934 में चित्तूर शहर में हिंदी प्रेमी मंडली की स्थापना हुई। हिंदी को लोकप्रिय बनाने के लिए इस प्रांत में उन दिनों हिंदी नाटकों का प्रदर्शन किया गया। टी. कन्नय्या और टी. अंजना देवी, चित्तूरु, पाकाला और तिरुपति में हिंदी नाटकों का प्रदर्शन किया करते थे। प्रचार प्रशिक्षण महाविद्यालय में वार्षिक समारोह के संदर्भ में कई ऐतिहासिक नाटकों का प्रदर्शन हुआ। श्री श्रीनिवास अय्यंगार चित्तूरु जिले में प्रथम हिंदी प्रचारक थे। श्री मोटूरि सत्यनारायण जी के आग्रह से चित्तूरु में उन्होंने हिंदी का प्रचार शुरू किया था।

डॉ. एम. संगमेशम और के. के. आचार्य जैसे विद्वानों ने तिरुपति में हिंदी का प्रचार-प्रसार किया है। सन् 1954 में तिरूपति में श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय की स्थापना की गई है। सन् 1959 में इसमें हिंदी विभाग खोला गया। इसी विभाग ने पूरे दक्षिण में अपनी विशिष्ट पहचान बना ली। तिरुपति मे श्री वेंकटेश्वर प्रचार कलाशाला में बहुत पहले से ही हिंदी शिक्षण शुरू किया गया था। सन् 1976 में श्री उमाशंकर द्वारा अनंतपुरम जिले में हिंदी प्रचार मंडली की स्थापना हुई। सन् 1968 में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा में हिंदी प्रचार के प्रशिक्षण महाविद्यालय द्वारा हिंदी के प्रचार एवं प्रसार को बढ़ावा दिया गया। श्री गंगि रेड्डी जी ने गुंतकल में हिंदी प्रचार प्रशिक्षण संस्था की स्थापना की। श्री वी. केशवय्या ने सन् 1973 में रायलसीमा हिंदी प्रचार समिति की स्थापना की। कई सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं से भी अनंतपुरम जिले में हिंदी के प्रचार को महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त हुआ है। मैं मानता हूं कि हिंदी की सेवा में लगी सभी दिवंगत एवं जीवंत मानव-मूर्तियां प्रणम्य हैं।

ylp1953@gmail.com

साहित्य-वाहित्य पढ़ते-पढ़ाते हैं वही कीजिए

प्रो. महेन्द्रपाल शर्मा

लेखक जामिआ मिल्लिआ इस्लामिया के हिंदी विभाग में प्रोफ़ेसर हैं। भारतीय सांस्कृतिक संबध परिषद की ओर से वे अनेक देशों में हिंदी शिक्षण कर चुके हैं।

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी बीच राष्ट्रभाषा के रूप में उसकी स्वीकार्यता बढ़ी। इसका एक प्रमुख यह कारण था कि स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान महात्मा गाँधी ने हिंदी को संपर्क के माध्यम के रूप में न केवल स्वयं अपनाया बल्कि अन्य लोगों को भी हिंदी को अपनाने के लिए प्रेरित किया ताकि देश के एक बहुत बड़े वर्ग को राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से जोड़ा जा सके। महात्मा गाँधी हिंदी भाषी नहीं थे। उनकी मातृभाषा गुजराती थी। फिर भी उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया। कारण स्पष्ट था। गांधी जी हिंदी की शक्ति को पहचानते थे और मानते थे कि अन्य सभी भारतीय भाषाओं में हिंदी ही ऐसी भाषा है जो क्षेत्रफल की दृष्टि से ही नहीं जनसंख्या की दृष्टि से भी देश में सर्वाधिक बोली और समझी जाती है।

हिंदी को अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय प्रशासन में राजकाज की भाषा न बनाने के लिए तर्क दिया गया कि 'हिंदी पिछड़ी हुई भाषा है अतः विकास के लिए उसे और अवसर दिया जाना चाहिए।' इसके लिए 15 वर्ष की समय सीमा रखी गयी। इस तरह कभी राजनीतिक कारणों से तो कभी व्यावहारिक कारणों से हिंदी को पूर्ण राजभाषा बनाने की बात टलती गयी। परिणामस्वरूप जैसे-जैसे समय बीतता गया प्रशासनिक हिंदी का प्रश्न और भी संवेदनशील बनता गया। जनसंचार माध्यमों – समाचार पत्र, टेलीविजन, फिल्म, कंप्यूटर और इंटरनेट आदि को छोड़ दिया जाये तो सरकारी स्तर पर आज भी स्थिति बहुत तेजी से नहीं बदली है। इसी तरह दूसरा तर्क दिया जाता रहा है कि यदि भारत को ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ाना है तो अंग्रेजी माध्यम की पढ़ाई परम आवश्यक है। सम्बद्ध क्षेत्रों में इसका असर भी दिखने लगा है। प्रमाण के रूप में हम देख सकते हैं कि किस प्रकार आज़ादी के बाद अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की संख्या निरंतर बढ़ती गयी है।

विभिन्न कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों की भाषा को जनमानस द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा के निकट लाया जाए। आधुनिक प्रौद्योगिकी की भाषा यानी कंप्यूटर, इंटरनेट आदि की भाषा को भी जीवन के निकट लाया जाए। आज हिंदी भाषा की स्थिति पहले की भाषा से बिलकुल भिन्न है। आज हिंदी में आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग बहुतायत में हो रहा है। भाषा के नए रूप का निर्माण भी हो रहा है। मोबाइल सन्देश की तो नयी भाषा ही बनती जा रही है। पर क्या यह संभव है कि प्रशासनिक हिंदी का स्वरुप भी ऐसा बने जो देश के अधिकांश भागों में सहज रूप से स्वीकार्य हो। आज भी शिक्षित

समुदाय का एक ऐसा बड़ा वर्ग है जो हिंदी को नितांत पिछड़ी और अंग्रेजी की तुलना में उसे अक्षम भाषा मानता है। वह यह स्वीकार करने को तैयार नहीं कि हिंदी भाषा के प्रयोग से जुड़े लोगों के लिए भी कंप्यूटर का प्रयोग उतना ही लाभदायक और आवश्यक है जितना कि अंग्रेजी और अन्य दूसरी भाषाओं के प्रयोगकर्ताओं के लिए। यहाँ एक प्रकरण का उल्लेख भर करना उपर्युक्त मत की पुष्टि के लिए नितांत प्रासंगिक होगा। जामिया मिल्लिया इस्लामिया के हिंदी विभाग में जामिया के लगभग प्रारंभ काल से ही हिंदी अध्ययन और अध्यापन का कार्य होता रहा है। लेकिन जब 1983 में एम.ए. की पढाई आरंभ हुई तो हिंदी के छात्रों के भाषा और साहित्य के ज्ञान की वृद्धि हेतु उर्दू साहित्य का एक वैकल्पिक पाठ्यक्रम भी शुरू किया गया।

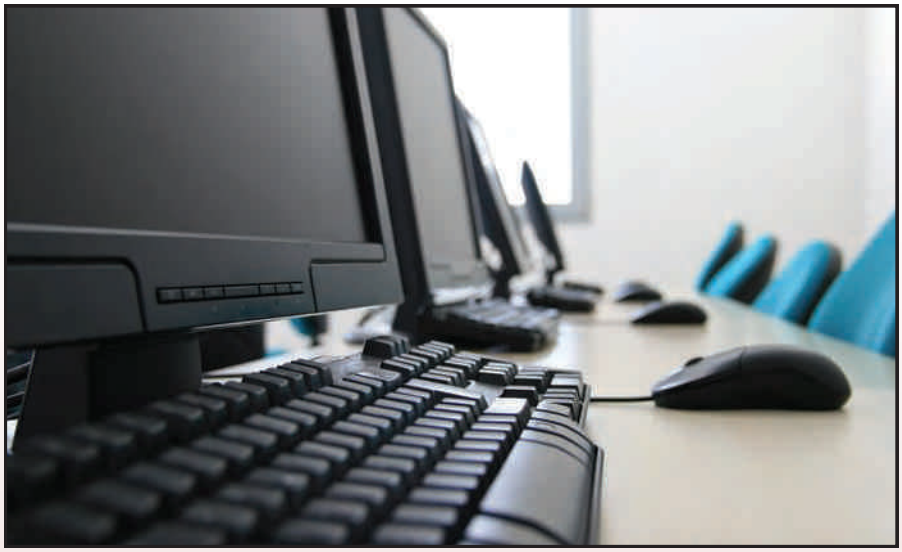

प्रो. अशोक चक्रधर संभवतः हिंदी भाषा और साहित्य से जुड़े उन एक दो शिक्षकों में से हैं जिन्होंने हिंदी में सूचना प्रौद्योगिकी को लागू किया। जब मोबाइल फोन का आरंभ नहीं हुआ था तो उनके पास एक पेजर हुआ करता था। पहला मोबाइल फोन मैंने उन्हीं के हाथ में देखा था। जब कंप्यूटर नहीं था तो अशोक जी के पास एक उन्नत किस्म का ऑर्गनाइज़र हुआ करता था। लैपटाप-कंप्यूटर उन दिनों भारत में आया ही था और बाज़ार में आते ही अशोक जी ने एक लैपटाप भी ले लिया। ओवरहेड प्रोजेक्टर का चलन हुआ तो अशोकजी ने वह भी खरीद लिया। मैं हिंदी भाषा और साहित्य के अध्यापन से सम्बद्ध एक प्रसिद्ध प्रोफ़ेसर के इस प्रौद्योगिकी प्रेम को लगातार देखता रहा। आधुनिक तकनीक के प्रति इस तरह का प्रेम उनका कोई दिखावा मात्र नहीं था। कारण कि अशोक जी अपना व्यक्तिगत कार्य तो इन उपकरणों पर करते ही थे, विभागीय कार्यों के लिए भी इनके उपयोग में कोई कंजूसी नहीं बरतते थे। चाहे कक्षाओं में हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन के लिए कंप्यूटर का उपयोग करते हुए पावर-पाइंट प्रस्तुतियां तैयार करना हो अथवा जामिया और हिंदी विभाग की गतिविधियों पर केन्द्रित अन्य कार्यक्रम बनाने हों, वे इन उपकरणों का बखूबी इस्तेमाल किया करते थे।

वस्तुतः हुआ यह कि जब मैं विभागाध्यक्ष प्रो. अशोक चक्रधर के साथ तत्कालीन कुलपति प्रो. बशीरुद्दीन अहमद के पास कंप्यूटर, प्रिंटर आदि उपकरणों की खरीद के लिए अनुमति लेने पहुंचा, तो वह अनुमति देने के लिए तैयार ही नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि हिंदी का इन कंप्यूटर आदि उपकरणों से क्या लेना देना? आप लोग साहित्य -वाहित्य पढ़ते-पढ़ाते हैं, वही कीजिये। इससे पहले मैं उक्त प्रसंग में कुछ कहूँ अशोक जी ने साथ लाए अपने लैपटॉप बैग में से नया लैपटॉप निकाला और कुलपति महोदय को दिखाया और कहा कि वे छात्रों को पढ़ाते समय लैपटॉप कंप्यूटर का उपयोग करते रहे हैं। कंप्यूटर पर केवल विज्ञान अथवा गणित पढ़ने-पढ़ाने वालों का ही अधिकार नहीं है। अशोक जी ने लैपटॉप पर बनाया हुआ एक प्रोग्राम भी तत्कालीन कुलपति महोदय को दिखाया। लैपटॉप तो स्वयं कुलपति जी के पास भी नहीं था। अतः अशोक जी की प्रस्तुति का असर इतना हुआ कि प्रो. बशीर अहमद ने तुरंत पूरा प्रस्ताव मान लिया और इतना ही नहीं प्रशासनिक हिंदी से सम्बद्ध नवीन पाठ्यक्रमों की आवश्यकता के लिए अपेक्षित अन्य वस्तुओं के लिए भी भविष्य में ख़रीद हेतु आश्वासन दे दिया।

प्रस्तुत प्रसंग का महत्व इसलिए और भी है कि जहां लोग प्रशासनिक हिंदी को भारी भरकम शब्दों के निरंतर प्रयोग से बोझिल बना रहे हैं वहीं उसमें नयी प्रौद्योगिकी के उपयोग से परहेज़ भी करते रहे हैं। यानी, किसी संकोचवश या अपने अन्दर किसी प्रकार के विश्वास की कमी के कारण आधुनिक तकनीक से हिंदी जगत के लोग प्रायः अलग ही रहना चाहते हैं। वस्तुतः आज समझने की आवश्यकता है कि हिंदी विश्व की अन्य आधुनिक भाषाओं से नवीन प्रौद्योगिकी के उपयोग की दृष्टि से किसी भी प्रकार पीछे नहीं है। यदि हम प्रशासनिक हिंदी को कार्यालयों में प्रयोग के लिए सक्षम बनना चाहते हैं तो पहल करनी होगी कि शब्द-भंडार और नवीनता की दृष्टि से उसे पीछे न रहने दें। पिछड़ेपन की मानसिकता से बाहर आएं और अपनी भाषा के प्रति पूर्ण सम्मान दिखाएं। इस दिशा में केवल सरकारी प्रयास ही पर्याप्त नहीं है। भाषा के प्रचार-प्रसार में जनमानस की भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

prof.sharmamp@gmail.com

लेखक गृह मंत्रालय, भारत सरकार में अपर सचिव हैं। विभिन्न उच्च सरकारी पदों पर रहते हुए उन्होंने कामकाज में हिंदी के व्यवहार को प्रोत्साहित किया है। उनका मानना है कि जब तक हम पहल नहीं करते तब तक आगे नहीं बढ़ते। सरकारी कामकाज में हिंदी की दशा और दिशा पर चर्चा करते हुए उन्होंने अत्यंत महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं।

जलाए रखें राजभाषा की लौ

अनन्त कुमार सिंह

भारतीय संविधान में राजभाषा का दर्जा पाने के 65 वर्ष बाद भी हिंदी भारत सरकार के दैनिक कामकाज में अपना वह स्थान नहीं बना पाई है जैसा कि संविधान बनाने वालों की अपेक्षा थी। संविधान सभा में हिंदी के राजभाषा होने पर कोई खास विवाद नहीं था क्योंकि सब लोग यह मानते थे कि राजभाषा वही भारतीय भाषा हो सकती है, जिसे देश के ज्यादातर लोग समझते, बोलते और दैनिक कामकाज में प्रयोग करते हों। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक मसलों पर व्यवहार में लाते हों तथा जिसे सीखना सरल हो। इस कसौटी पर हिंदी ही खरी उतरती थी। विवाद इस बात का था कि इसे तत्काल लागू किया जाए या उतने समय बाद जितने में हिंदी न जानने वाले लोग कामकाज की हिंदी सीख लें। इसके स्वरूप को लेकर भी विवाद था कि यह शुद्ध, संस्कृतनिष्ठ, क्लिष्ट एवं साहित्यिक हो या सरल एवं सुबोध, जिसे गाँधी जी 'हिंदुस्तानी' कहा करते थे।

हिंदी की संवैधानिक स्थिति

मुद्दा भावनात्मक था, अत: संविधान सभा में सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद यह निर्णय हुआ कि देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी संघ सरकार की राजभाषा होगी, लेकिन संविधान लागू होने के 15 वर्ष तक अंग्रेज़ी का प्रयोग शासकीय कार्यों में जारी रहेगा। राज्यों को अपने क्षेत्र में राजकाज की भाषा चुनने का अधिकार दिया गया। इस व्यवस्था के पीछे मंशा यह थी कि किसी गैर हिंदी भाषी को यह न लगे कि बहुमत के आधार पर उस पर हिंदी थोप दी गई। भाषा को संस्कृति का प्रवेशद्वार एवं पोषक माना जाता है इसलिए भारतीय संविधान ने संघ सरकार पर यह दायित्व भी डाला है कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह (हिंदी) भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और विभिन्न भारतीय भाषाओं की शैली और शब्दों को आत्मसात करते हुए निरंतर अपना संपोषण एवं संवर्द्धन करती रहे।

राजभाषा के प्रयोग-प्रसार की व्यवस्था

शासकीय कार्यों में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए प्रशासनिक, वैज्ञानिक, तकनीकी एवं विधि शब्दावलियों का निर्माण किया गया। प्रशासनिक अनुवाद कार्य के लिए प्रत्येक विभाग में अनुवादकर्मी मौजूद हैं। कार्यालयों में प्रयोग में आने वाले कोड, मैनुअल, प्रक्रिया-साहित्य एवं प्रशिक्षण-सामग्री के अनुवाद हेतु राजभाषा विभाग के अधीन केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो की स्थापना की गई। हिंदी टंककों एवं आशुलिपिकों को कम्प्यूटर पर हिंदी में काम करने की दक्षता बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान नहीं रखने वाले कार्मिकों के लिए क्लास रूम प्रशिक्षण के अलावा 'लीला' सॉफ्टवेयर के माध्यम से घर बैठे हिंदी प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ पाठ्यक्रमों के लिए 15 भारतीय भाषाओं में प्रशिक्षण प्रदान करने तथा ऑनलाइन परीक्षा की व्यवस्था की गई है। यह सॉफ्टवेयर राजभाषा विभाग और केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान की वेबसाइट पर उपलब्ध है।

शासकीय कार्यों में हिंदी का प्रयोग बढ़ाने के लिए प्रत्येक वर्ष प्रत्येक विभाग की कार्य योजना बनती है। विभागाध्यक्ष के स्तर पर उपलब्धियों की नियमित रूप से समीक्षा की जाती है। प्रत्येक मंत्रालय में सलाहकार समिति बनायी गई है जिसमें हिंदी प्रेमी विद्वान एवं सांसदगण भी रखे गए हैं। इसके अलावा संसदीय समिति भी राजभाषा के क्रियान्वयन की स्थिति की समीक्षा करती है। जिन कार्मिकों को हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान है, वे यदि हिंदी में कार्य नहीं करते हैं, तो उनके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही के प्रावधान हैं। इन सब के बावजूद शासकीय कार्यों में हिंदी का प्रयोग अपेक्षित गति से बढ़ता नहीं दिख रहा है। हमारा रोज़मर्रा का अनुभव यह बताता है कि देश के गैर हिंदीभाषी प्रदेशों में हिंदी समझने वालों की संख्या लगातार बढ़ रही है। केन्द्रीय हिंदी संस्थान के माध्यम से हिंदी सीखने वालों में सबसे बड़ा तबका तमिलभाषियों का है।

ज़मीनी हकीक़त

संवैधानिक अपेक्षाओं को अमली जामा पहनाने के लिए जो विधान एवं नीति बनाई गई या आदेश निर्गत किए गए, वे अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु न सिर्फ पर्याप्त बल्कि पूर्ण लगते हैं। इसके बावजूद संविधान निर्माताओं द्वारा राजभाषा के रूप में हिंदी को स्थापित करने तथा शासकीय कामकाज में अंग्रेज़ी से मुक्ति पाने के लिए जो समयावधि निर्धारित की गई थी, उससे चौगुनी से भी अधिक अवधि बीत जाने के बाद भी केन्द्र सरकार में धड़ल्ले से अंग्रेज़ी में कामकाज हो रहा है और हिंदी के प्रयोग की स्थिति प्राय: जस की तस बनी हुई है। हमारी इस विफलता का मूल कारण मुझे डॉ. अम्बेडकर के उस कथन में दिखता है, जो उन्होंने भारतीय संविधान को देश को समर्पित करते वक्त किया था कि इन संवैधानिक व्यवस्थाओं का उतना ही लाभ देश की जनता को मिल पाएगा जितना इसे क्रियान्वित करने के लिए जिम्मेदार शासक वर्ग जनता को देना चाहेंगे। हिंदी के मामले में भी ऐसा ही हो रहा है। परिणाम है कि राष्ट्रभाषा का भावनात्मक दावा रखने वाली हिंदी आज भी व्यवहार में राजभाषा का अपना दर्जा स्थापित करने के लिए तरस रही है।

केन्द्रीय सचिवालय में काम करने वाले कार्मिकों में काफी बड़ा प्रतिशत उनका है, जो हिंदी भाषी प्रदेश से आते हैं, जिनकी मातृभाषा हिंदी है, जिनका दसवीं कक्षा में हिंदी अनिवार्य विषय रहा है। संक्षेप में कहा जाए, तो उन्हें अच्छी तरह से हिंदी आती है। वे अपने व्यक्तिगत जीवन में पूर्ण रूप से हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। लेकिन, कार्यालय में वे फाइलों में हिंदी में नोट नहीं लिखते, बैठकें हिंदी में नहीं लेते। यह जानते हुए भी कि ऐसा करना राजभाषा नीति एवं उसके अन्तर्गत निर्गत आदेश का खुला उल्लंघन है जिसके कारण उनके विरुद्ध सख्त कार्रवाई हो सकती है, वे उल्लंघन करते जा रहे हैं। मुझे लगता है कि इसका प्रमुख कारण यह है कि जिन पर शासकीय हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने की जिम्मेदारी है, वे इसे गंभीरता से नहीं लेते हैं। फलस्वरूप, उनके नीचे भी कोई इसे गंभीरता से नहीं ले रहा है। इसके अतिरिक्त, शासक वर्ग के लिए अंग्रेज़ी में काम करना आसान होता है। हम आज भी उस गुलाम-मानसिकता-जनित 'हीन भावना' से आजाद नहीं हो पाये हैं जो अंग्रेज़ी बोलने और लिखने वालों को 'श्रेष्ठ' मानता है, भले ही उसका विषय ज्ञान 'निम्न' स्तर का ही क्यों न हो? यदि शीर्ष पर बैठे लोग हिंदी में काम करने से उत्पन्न होने वाली अपनी 'हीन भावना' त्याग कर अपने राजभाषायी दायित्व को ठीक से निभाना आरम्भ कर दें तो इसका सकारात्मक असर तुरंत दिखने लगेगा। हिंदी जानने वाले कार्मिक तो तत्काल हिंदी में काम शुरू करने की स्थिति में होंगे। शेष भी, जो लम्बे समय से दिल्ली में रहने के कारण बोलचाल की हिंदी जानते हैं तथा प्रशिक्षण के द्वारा कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर उसे प्रयोग में न लाने के कारण भूलने लगे हैं, देखा-देखी हिंदी में काम करने लगेंगे। राजभाषा नीति की अवहेलना करने वालों के विरुद्ध 'भय' और 'प्रीति' की नीति अपनायी जाए। अब और देर उचित नहीं है।

एक सुखद एवं सकारात्मक शुरुआत

इस दिशा में ऊपर से पहल इसलिए जरूरी है कि इसका 'मल्टीप्लायर इफेक्ट' होता है। पहले केन्द्रीय सचिवालय में अंग्रेज़ीमय माहौल होता था। अच्छी अंग्रेज़ी न बोल पाने वालों के अच्छे विचार और सुझाव उनके संकोच में दफन होकर रह जाते थे। जब से प्रधानमंत्री जी और उनके सहयोगी मंत्रीगण सहजता के साथ बैठकों में हिंदी का प्रयोग करने लगे हैं, तब से काफी बदलाव आया है। अब सभी लोग

बैठकों में अपने विचार बिना किसी संकोच के हिंदी में रखने लगे हैं। यह एक सुखद एवं सकारात्मक शुरुआत है जिसे हमें बैठकों के लेखे जोखे (मिनट्स) तथा टिप्पणी लेखन तक ले जाना होगा। यह कठिन नहीं है। हमारे पास साधन और सामर्थ्य है, केवल संकल्प एवं इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। केन्द्रीय सचिवालय के सभी कार्मिक किसी न किसी प्रतियोगिता परीक्षा के माध्यम से सेवा में आए हैं, अत: उनका 'संकल्प' और उनकी 'शक्ति' भी प्रमाणित है। तो शेष क्या रह गई? मात्र 'इच्छा'! अर्थात् केन्द्रीय कर्मी जिस दिन चाह लेंगे कि हिंदी राजभाषा बन जाए, उसी दिन यह सच्चाई जमीन पर उतर आएगी। कहते हैं न - जहां चाह, वहाँ राह।

राजभाषा हिंदी का स्वरूप

हिंदी के सामने एक और बड़ी समस्या है- हिंदी जानने वालों की हिंदी की 'शुद्धता' अर्थात् 'दुरूह वाक्य रचना तथा कठिन एवं कम ज्ञात शब्दों का प्रयोग' के प्रति आग्रह। यह कामचलाऊ हिंदी जानने वालों को हिंदी लिखने से हतोत्साहित करता है। ऐसे हिंदी प्रेमियों को यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय संस्कृति की तरह हिंदी भाषा की प्रकृति भी उदार एवं समावेशी है। इसलिए इसके शब्दकोश में इसकी जननी संस्कृत के शब्दों (तत्सम) के साथ-साथ इसके अपभ्रंश (तद्भव), अन्य भारतीय भाषाओं के (देशज) एवं विदेश भाषाओं के (विदेशज) शब्द प्रचुरता में हैं और निरन्तर शामिल होते चले जा रहे हैं। यही तो हिंदी को समृद्ध और सर्वग्राह्य बनाते हैं। शासकीय कार्यों की भाषा और साहित्यिक भाषा के अन्तर को हिंदीप्रेमियों को देश के बहुभाषायी स्वरूप के संदर्भ में समझना होगा। जो हिंदी-प्रेमी भाषा के विकास एवं उसकी समृद्धि (शोध) तथा अध्ययन-अध्यापन (प्रसार) में लगे हैं, वे यदि अपनी रचनाओं में हिंदी के मूल एवं शुद्ध स्वरूप के विषय में चिंता करें, तो वह जायज है क्योंकि उनका पाठक वर्ग शिक्षित एवं प्रबुद्ध होने के साथ-साथ स्वयं भाषा का अच्छा जानकार होता है। पाण्डित्य एवं लालित्यपूर्ण भाषा उन्हें भाती है। लेकिन जो लोग रोजमर्रे का काम चलाने के लिए हिंदी का प्रयोग करना चाहते हैं, उनके लिए तो वह हिंदी पर्याप्त है, जो उनकी भावनाओं को सुनने और पढ़ने वालों तक पहुँचा दे।

राजभाषा के प्रति लचीला रुख

राजभाषा आम जनता के प्रति उत्तरदायी सरकारी तंत्र और जनता के बीच संवाद की भाषा होती है। अत: राजभाषा हिंदी को 'सरल' एवं 'सुबोध' ही होना चाहिए। यानी कि वाक्य छोटे हों और शब्द आम बोलचाल में प्रयोग होने वाले हों। यदि अंग्रेज़ी के शब्द के स्थान पर हिंदी के शब्द तत्काल याद न आ रहे हों, तो उसे ही देवनागरी लिपि में लिख दिया जाए। यदि देवनागरी में लिखने में दिक्कत हो, तो उसे

रोमन में ही लिख दिया जाए। यदि ऐसा लगे कि हिंदी की तुलना में अंग्रेज़ी का शब्द अधिक प्रचलित है, तो जानते हुए भी हिंदी के स्थान पर अंग्रेज़ी के शब्द को ही प्रयोग में लाया जाए। उदाहरण के लिए, यदि हम 'दिल्ली हाई कोर्ट में एक Habeas Corpus Writ दाखिल हुई है' - इस प्रकार की हिंदी लिखनी प्रोत्साहित करेंगे, तो कुछ दिनों बाद लिखने वाला स्वयं ही उत्सुकतावश Habeas Corpus की हिंदी सीख लेगा और लिखने भी लगेगा। और एक दिन ऐसा भी आएगा जब वह बड़ी ही सहजता के साथ लिखेगा 'दिल्ली उच्च न्यायालय में बंदी-प्रत्यक्षीकरण याचिका प्रस्तुत हुई है' क्योंकि अपने में प्रति क्षण उत्तरोत्तर सुधार करते रहना मानव स्वभाव है। तभी तो हम गुफाओं से निकलकर मंगल ग्रह तक पहुँच गए और आगे की यात्रा जारी है। राजभाषा के प्रति इस लचीले रुख का तात्कालिक लाभ यह होगा कि हमें बड़ी संख्या में हिंदी में काम करने वाले मिल जाएंगे।

'शब्दानुवाद' के स्थान पर 'भावानुवाद'

कार्मिकों के मन में हिंदी का भय पैदा करने में अनुवाद की भी बड़ी अहम भूमिका दिखती है। विशेषज्ञों द्वारा अंग्रेज़ी से हिंदी में जो

अनुवाद किया जाता है, वह इतना शाब्दिक एवं जटिल होता है कि हिंदी जानने वालों को भी समझ में नहीं आता है। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि उन्हें हिंदी समझने के लिए अंग्रेज़ी का मूलपाठ पढ़ना पड़ता है! कुछ अनुवाद तो बिल्कुल अर्थ का अनर्थ करने वाले होते हैं, तो कुछ हास्यास्पद। 'शब्दानुवाद' के स्थान पर 'भावानुवाद' को महत्व देना चाहिए तथा इसके मूल्यांकन के लिए व्यावहारिक मानदंड तय किए जाने चाहिए। सचिवालय में हिंदी आशुलिपिकों का अभाव भी कुछ लोगों के हिंदी में कामकाज करने के प्रयास में बाधक बनता है।

संसदीय समीक्षा

आम तौर पर संविधान एवं देश के विधान को लागू करने का पूरा दायित्व कार्यपालिका का होता है। देश में एक राजभाषा होने की आवश्यकता, महत्ता एवं इसकी संवेदनशीलता को देखते हुए भारतीय संसद ने इसके क्रियान्वयन की सतत समीक्षा के लिए 30 सदस्यीय संसदीय समिति का गठन किया है। यह समिति अपनी तीन उपसमितियों में बँटकर समीक्षा करती है। समीक्षा के क्रम में ये उपसमितियां अब तक दस हजार से भी अधिक बैठकें कर चुकी हैं। ये बैठकें संबंधित कार्यालयों में न होकर इतर स्थानों पर विवरण पुस्तिका के आधार पर होती हैं। यदि ये बैठकें निरीक्षण के रूप में संबंधित कार्यालयों में की जाएं, तो इससे हिंदी में काम करनेवाले कार्मिकों को उचित प्रोत्साहन मिलेगा और जो काम नहीं कर रहे हैं, उन्हें काम करने की प्रेरणा मिलेगी। इससे कर्त्तव्यनिष्ठ हिंदी सेवियों एवं कार्यालय प्रमुखों को भी राजभाषा नीति के क्रियान्वयन में अतिरिक्त संबल मिलेगा।

अंग्रेज़ी, हिंदी और मातृभाषा

जनता द्वारा चुनी हुई सरकार के कामकाज उस भाषा में हों, जिसे एक प्रतिशत से भी कम लोग समझ सकें, यह वास्तव में एक बहुत बड़ी विडम्बना है। आजादी से पूर्व एवं उसके बाद भी अंग्रेज़ी ने देश की काफी सेवा की है। लेकिन, अब इसका सरकारी दफ़्तरों से विदाई का समय आ गया है। जनता किस प्रकार अपने द्वारा चुनी गई सरकार एवं उसके सहयोगी शासन तंत्र को अपने प्रति उत्तरदायी बना सकेगी यदि वह उसके कामकाज की पद्धति को समझ ही न सके। हमें तत्काल हर संभव प्रयास करने चाहिए ताकि राजभाषा के रूप में अंग्रेज़ी के प्रयोग से शासक वर्ग और आम जनता के बीच जो खाई उत्पन्न हुई है वह शीघ्रातिशीघ्र दूर हो जाए। ऐसा नहीं होने का दूसरा दुष्परिणाम यह दिख रहा है कि माता-पिता अपने बच्चों को मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने के बजाय अंग्रेज़ी माध्यम स्कूलों में उन्हें भेज रहे हैं। मातृभाषा से भिन्न भाषा के शिक्षालयों में पढ़ रहे छात्रों की अधिकांश ऊर्जा भाषा सीखने में खप जाती है, और विषयगत तात्विक ज्ञान में वे पिछड़ जाते हैं। उनकी खोज एवं विचार करने की क्षमता क्षीण हो जाती है। वे विद्यालयों से निरे नकलची बनकर निकलते हैं। शायद इसी कारण आजादी प्राप्ति के बाद गाँधी जी ने एक पत्रकार से कहा था कि वह दुनिया को बता दे कि गाँधी अंग्रेज़ी भूल गया। ऐसा कहकर वे लोगों को 'हिन्दुस्तानी' एवं अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को अपने कामकाज की भाषा बनाकर अपना पूर्ण विकास करने के लिए प्रेरित करना चाहते थे। इसका आशय यह कदापि नहीं था कि जिनमें क्षमता है अथवा जिनको जरूरत है, वे अंग्रेज़ी न पढ़ें।

हीनभावना एवं जड़ता की आहुति

इस लेख को लिखने के पीछे मेरा एकमात्र उद्देश्य केन्द्र सरकार के अधीन कार्यरत उन सभी हनुमानों को अपनी शक्ति की याद दिलाना है, जिसका एहसास न होने के कारण वे शासकीय कार्य राजभाषा में नहीं कर रहे हैं। राजभाषा में काम करने से हिंदी का कोई विशेष भला नहीं होना है। वह तो लोगों की जरूरत के अनुसार पूरे देश में स्वत: फैल रही है और फैलती रहेगी। सोचने की बात है कि हिंदी जब सड़कों पर सरपट दौड़ रही है, तो केंद्र सरकार के दफ़्तरों में यह क्यों सोई हुई है? हिंदी में शासकीय कार्य कर हम अपनी संस्कृति एवं अपने राष्ट्र को सम्मान और एक राष्ट्रीय पहचान देंगे। राष्ट्रीय अस्मिता के पोषण में अपना योगदान देंगे। जनतंत्र के उपासक जनभाषा में जनोपयोगी (अर्थात् शासकीय) कार्य करें, इससे बेहतर बात क्या हो सकती है? फिर देर किस बात की? आइए! इस राष्ट्र यज्ञ में हम सब 'अपनी हीनभावना' एवं 'जड़ता' की आहुति डालें ताकि अपनी राजभाषा की लौ दिग्दिगंत तक दिखाई दे। स्वामी विवेकानन्द की प्रिय शैली में मैं सभी केन्द्रीय कर्मचारियों से अपील करना चाहता हूं— 'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत' अर्थात् उठो, जागो और अपने ध्येय की प्राप्ति में लग जाओ! मैं इस अपील में इतना-सा जोड़ना चाहता हूं— और लगे रहो।

anant.edu@nic.in

व्यावहारिक समस्याओं पर पुनर्विचार

शालिनी श्रीवास्तव

लेखिका केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के अंतरराष्ट्रीय हिंदी शिक्षण विभाग में अनुवाद विज्ञान की प्रवक्ता हैं।

समय-रेखा पर हमारा गणतंत्र तो आगे बढ़ा पर गण और तंत्र की भाषाएं एक-दूसरे से विमुख होती गईं। हिंदी जो हमारी आज़ादी की पहचान है, अस्मिता है, गौरव है, उसके इस्तेमाल के लिए कोई सहज कर्तव्यबोध न होकर नियमों की मजबूरी हो तो यह स्थिति निश्चित रूप से नीति या नियति के उन छलावों की ओर संकेत करती है जो इस शासन-व्यवस्था में जड़ जमाते चले गए हैं।

कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग और व्यवहार की दयनीय स्थिति के पीछे कारणों और तर्कों की लंबी सूची है। कहीं शब्दकोश और अभिव्यक्तियों के अपर्याप्त होने की मजबूरी है तो कहीं उनकी कठिनाई, जटिलता और संदिग्धता का हवाला। अपनी भाषा के कुछ शब्द कभी हमें असहज लगते हैं तो कभी अटपटे। फिर कहा जाता है कि 'छोड़िए साहब, जैसा चलता है चलने दीजिए।' इससे बड़ी विडंबना और क्या होगी कि देश के संविधान ने जिस भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया, उसे संविधान के संरक्षक न्यायालय ही अपने काम-काज की भाषा के रूप में अपनाने को तैयार नहीं। आज भी देश के सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्ट की कार्यवाही अंग्रेज़ी में होती है। हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं में लिखे दस्तावेजों, आरोप-पत्रों, प्रार्थना-पत्रों और सबूतों पर सीधे कोई कार्यवाही नहीं की जाती। न्यायालय तमाम सूचनाओं को 'वर्नाकुलर्स' से पहले अंग्रेज़ी में प्रोसेस करते हैं, फिर सारी बहस, दलीलें अंग्रेज़ी में सुनते हैं और अंततः फैसले भी अंग्रेज़ी में ही सुनाते हैं। हिंदी के प्रयोग को लेकर हीनता और उदासीनता का ऐसा भाव यदि देश के न्याय मंदिरों में भी पैर पसारे हुए हो तो फिर मातृभाषा के न्याय की गुहार और कहां लगाई जाएगी?

राजभाषा हिंदी के विकास के लिए केंद्र सरकार द्वारा करोड़ों रुपए खर्च किए गए। कई विभागों की स्थापना की गई। उन विभागों के तहत सरकारी कार्यालयों के उपयोग हेतु तरह-तरह की सामग्री और प्रदर्श तैयार किए गए। कर्मचारियों के शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की गई लेकिन इस दिशा में अपेक्षित सफलता अभी तक नहीं मिली। हो सकता है कि राजभाषा के कार्यान्वयन की नियोजित प्रक्रिया के तहत निर्मित या उत्पादित सामग्री कुछ मात्रा में बनावटी, दुरूह या अपूर्ण हो जिसकी वजह से कर्मचारियों को हिंदी में 'टिप्पण-आलेखन' के बजाय अंग्रेज़ी में 'नोटिंग-ड्राफ्टिंग' करना ज़्यादा सुविधाजनक लगता है लेकिन 'सारी सामग्री बेकार है', 'सारी

प्रक्रियाएं निरर्थक हैं' और 'सारे नियम जबरदस्ती हैं' यह मानकर बैठे रहना भी अतिवादिता ही कही जाएगी।

कोई भी काम कठिन लगने के दो कारण होते हैं। पहला यह कि तमाम प्रयास करने के बावजूद वह काम सचमुच कठिन है। दूसरा यह कि उसको पूर्वधारणा के तौर पर ही कठिन मान लिया गया और उसे आसान बनाने की कोशिश नहीं की गई। सरकारी दफ़्तरों में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को लेकर यदि गहराई से विचार करें तो दूसरा कारण ही ज़्यादा सही जान पड़ता है। आज कार्यालयी हिंदी में कामकाज इसलिए कठिन है क्योंकि इसको वास्तविक व्यवहार में नहीं लाया जाता है। इसका प्रयोग केवल राजभाषा-नियमों के डंडे से बचने के लिए या फिर राजभाषा-पुरस्कार पाने के लिए ही किया जाता है।

यह तथ्य सर्वविदित और स्वतःप्रमाणित है कि भाषा व्यवहार से सीखी जाती है और वास्तविक व्यवहार के ज़रिए ही चलती और बढ़ती है। राजधानी दिल्ली में मैट्रो ट्रेन सेवा शुरू होने के बाद 'विश्वविद्यालय', 'केंद्रीय सचिवालय', 'आदर्श नगर' जैसे तमाम शब्द एक बार फिर से व्यवहार में आकर उसकी रफ़्तार से कदम मिलाते हुए दौड़ रहे हैं इसके पीछे मूल कारण रोजमर्रा की ज़िंदगी में होने वाला इनका वास्तविक व्यवहार है। इनको देखने, सुनने, पढ़ने की फ्रिक्वेंसी में हुई बढ़ोतरी है। यही बात राजभाषा हिंदी के संदर्भ में भी लागू होती है।

राजभाषा हिंदी और जनभाषा हिंदी में आपस में तालमेल और बोधगम्यता होना एक गुणात्मक स्थिति अवश्य है लेकिन हमेशा और हर जगह ये एकरूप हो जाएं, ऐसा हो पाना न तो सिद्धांत रूप में अनिवार्य है और न व्यावहारिक तौर पर संभव। राज-काज और शासन-संचालन में व्यवस्था और प्रयोक्ता दो पक्ष होते हैं और दोनों पक्षों की कुछ भाषागत अपेक्षाएं एवं मर्यादाएं रहती हैं। राजभाषा हिंदी के विशिष्ट स्वरूप को भी इसी संदर्भ में देखना और पहचानना चाहिए। सुस्पष्टता, संक्षिप्तता, संप्रेषणीयता आदि बातों का ध्यान रखते हुए जिस प्रकार की शैली का प्रयोग सरकारी कामकाज में किया जाता है वह निश्चित तौर पर कुछ प्रशिक्षण और अभ्यास की मांग करती है लेकिन यह बात किसी भी भाषा और प्रशिक्षण पर समान रूप से लागू होती है। राजभाषा हिंदी के प्रयोग में दक्षता हासिल करने के लिए कुछ हद तक आरंभिक प्रशिक्षण की ज़रूरत होती है पर उसके आगे का रास्ता तो वास्तविक स्थितियों में किए गए प्रयोग और व्यवहार से ही खुलता है। इसलिए कर्मचारियों का यह तर्क बिलकुल भी स्वीकार्य नहीं हो सकता कि सरकारी कामकाज हिंदी में करना बहुत कठिन है क्योंकि इसकी शब्दावली, शैली, विन्यास आदि कठिन हैं। वास्तव में इस कठिनाई का बड़ा कारण भाषा की कठिनाई न होकर उसका प्रयोग न किया जाना ही है।

एक सबसे बड़ी समस्या सत्ता और प्रशासन के प्रतिष्ठानों में बैठे अधिकारियों और कार्मिकों की पद-प्रतिष्ठा और इससे जुड़ी मनो-सामाजिक दृष्टि की है। अनेक अधिकारियों-कर्मचारियों को कार्यालय या समाज में हिंदी प्रयोग करने पर अपने अंग्रेज़ी ज्ञान पर प्रश्नचिह्न सा लगता नजर आता है और यह स्थिति उन्हें हरगिज़ बर्दाश्त नहीं।

सरकारी कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग के नाम पर केवल कुछ चीज़ें ही दिखाई पड़ती हैं जैसे कार्यालयों ने अपने यहां द्विभाषी नामपट्ट, रबड़ की मोहरें, कुछ हिंदी सॉफ्टवेयर ख़रीद रखे हैं और दीवारों पर यहां-वहां हिंदी भाषा प्रेम दर्शाते महापुरुषों के उद्धरण चिपकाकर हिंदी के प्रयोग का निर्धारित कोटा पूरा कर लिया जाता है। कार्यालयी हिंदी का न तो उनको ज्ञान होता है और न ही उसका इस्तेमाल करने की इच्छा रखते हैं।

यह सच है कि कार्यालयी हिंदी का मौजूदा स्वरूप जिस रूप में अब विकसित हो गया है, वह हमें उसके प्रयोग और व्यवहार के प्रति आश्वस्त होने का मौका नहीं देता। लेकिन यह भी सच है कि राजभाषा हिंदी का यह रूप उसकी मौलिक प्रकृति में बहुत रचा-बसा नहीं है। पहले कामकाज की भाषा अंग्रेज़ी थी लेकिन जब हिंदी के प्रयोग की बात आई तो पारिभाषिक शब्दावली निर्माण की प्रक्रिया में बहुत से शब्दों, पदों, अभिव्यक्तियों के ऐसे जटिल हिंदी समतुल्य शब्द निर्धारित कर दिए गए जो या तो हिंदी की प्रकृति के अनुकूल नहीं थे या अंग्रेज़ी भाषा से लिटरली अनूदित होने कारण अटपटे और असामान्य लगते थे।

उदाहरण के लिए, कुछ पद जैसेः 'हस्ताक्षरार्थ', 'अनुमोदनार्थ', 'प्रति अग्रेषित करें' के बजाय 'हस्ताक्षर के लिए', 'अनुमोदन के लिए', 'प्रति आगे भेजें' जैसे सामान्य विकल्पों के चयन से इस तरह की भाषागत कठिनाई से निपटा जा सकता है। इसके लिए न तो तकनीकी शब्दावली आयोग का कोई दुराग्रह होता न राजभाषा की बाध्यता, बल्कि सच तो यह है कि हिंदी के लिए विविध क्षेत्रों में कार्य कर रही कई संस्थाओं और स्वयंसेवी विद्वानों द्वारा इस तरह के प्रयोग पहले भी किए गए हैं। भारत सरकार के राजभाषा के विभाग के मौजूदा निर्देशों के तहत जहां तक संभव हो हिंदी के सरल शब्दों और अभिव्यक्तियों को अपनाने की सलाह दी गई है। हिंदीतर एवं विदेशी भाषाओं के शब्द जो हिंदी भाषा में घुल-मिल गए हैं उन्हें शामिल करते हुए व्यावहारिक हिंदी के प्रयोग पर बल दिया गया है लेकिन अगर अब भी हिंदी के प्रयोग को लेकर कोई अभाव-कुभाव दिखाई पड़ता है तो यह राजभाषा हिंदी की कठिनाई या मजबूरी नहीं बल्कि उसके प्रति हमारी बेवफाई ही होगी।

अंत में सवाल यही है कि क्या हम राजभाषा की 'जहां है, जैसी है' वाली अब तक चली आ रही नियति और अपनी नीयत को चुपचाप स्वीकार कर 'दिन काटने' और 'नौकरी गुजारने' के लिए तैयार हैं या अपने छोटे-छोटे प्रयासों से इन हालात को बदलने की कोशिश करना चाहेंगे!

Rush2shalini@gmail.com

लेखक सुपरिचित तकनीकविद् और 'प्रभासाक्षी' नामक पोर्टल के संपादक हैं। आपको अनेक राष्ट्रीय सम्मानों से नवाज़ा गया है।

हिंदी की विशुद्ध ख़ुश्बू

बालेन्दु दाधीच

तकनीक की दुनिया में हिंदी की स्थिति उतनी दयनीय नहीं है, जितनी कि दूसरे कारोबारी क्षेत्रों में। खासकर पिछला एक दशक हिंदी के तकनीकी विकास की दिशा में अहम सिद्ध हुआ है। दस साल पहले हिंदी में डिजिटल युक्तियों पर काम करने के इच्छुक लोगों को जिस किस्म की उलझन और बेचारगी के अनिवार्य अहसास से गुजरना पड़ता था, वैसा अब नहीं रहा। थोड़ी-बहुत कोशिश कीजिए तो आप अधिकांश तकनीकी माध्यमों पर हिंदी में काम कर ही लेंगे। हालांकि हिंदी आज भी अंग्रेज़ी, यूरोपीय भाषाओं, जापानी, रूसी और अरबी जितनी सबल, सक्षम और सशक्त नहीं हुई है, लेकिन उसने तरक्की निस्संदेह की है।

यह तरक्की नज़र भी आती है। हर नए कंप्यूटर ऑपरेटिंग सिस्टम (विंडोज, मैकिन्टोश, लिनक्स आदि) में यूनिकोड की कृपा से हिंदी-देवनागरी पहले से ही विद्यमान हैं। हाथ में रखी जाने वाली अधिकांश हैंडहेल्ड डिवाइसेज (टैबलेट, स्मार्टफोन आदि) में भी हिंदी लिखना नहीं तो कम से कम पढ़ना और हिंदी की वेबसाइटों को देखना बहुत आसान हो गया है। थोड़ी सी कोशिश करेंगे तो लिखना भी सुगम हो जाएगा। गूगल हिंदी इनपुट के रूप में अच्छा आईएमई वहां मौजूद है जो रोमन पद्धति से हिंदी में लिखना संभव बनाता है। दूसरी तरफ सीडैक ने हिंदी के मानक तरीके (इनस्क्रिप्ट) से हिंदी टंकण के लिए ऐप जारी किया है।

हिंदी समर्थित वेब सर्विसेज (ईमेल, अनुवाद, टेक्स्ट टू स्पीच, ई-कॉमर्स, क्लाउड आधारित सर्विसेज) का उपयोग करना बहुत जटिल नहीं रहा। अपने आसपास की तकनीकी सेवाओं में भी यदा-कदा हिंदी दिखने लगी है, जैसे एटीएम मशीनों पर। देवनागरी में टाइप करने के ऑफलाइन, ऑनलाइन जरियों (टूल) की कोई कमी नहीं रही और करीब-करीब हर आधुनिक सॉफ्टवेयर पर, चाहे वह माइक्रोसॉफ्ट परिवार से आया हो या फिर एडोबी परिवार से, यूनिकोड हिंदी में पूरा या थोड़ा काम किया जा सकता है। हालांकि पेजमेकिंग, ग्राफिक्स, एनीमेशन आदि से जुड़े सॉफ्टवेयरों में हिंदी का शत-प्रतिशत समर्थन न होना कुछ निराश करता है, खासकर उन संस्करणों में जिन्हें दो-तीन साल पहले तक खरीदा गया था। इस श्रेणी के अधिकांश सॉफ्टवेयर अब यूनिकोड हिंदी का समर्थन करने लगे हैं लेकिन ज़रूरत है ऐसे टूल निर्मित करने की, जो पहले खरीदे गए संस्करणों को भी यूनिकोड समर्थित बना दें। क्वार्क एक्सप्रेस, इन-डिजाइन, कोरल ड्रॉ, फोटोशॉप आदि इस श्रेणी

में आते हैं। अलबत्ता माइक्रोसॉफ्ट के पेजमेकिंग अनुप्रयोग पब्लिशर में अरसे से हिंदी यूनिकोड समर्थन मौजूद है। वह अलग बात है कि पेशेवर दुनिया में उसका इस्तेमाल कम होता है, खासकर भारत में।

तकनीकी विश्व में हिंदी की बहार दिखाई देती है- सोशल नेटवर्किंग और ब्लॉगिंग में। इनमें से पहला माध्यम चढ़ाव पर तो दूसरे में ठहराव है। जिस अंदाज में हिंदी विश्व ने फेसबुक को अपनाया है, वह अद्भुत है। दिल्ली और मुंबई जैसे महानगरों को भूल जाइए, लखनऊ, पटना और जयपुर जैसी राजधानियों को भी भूल जाइए, छोटे-छोटे गांवों और कस्बों तक के युवा, बुजुर्ग, बच्चे फेसबुक पर आ जमे हैं और खूब सारी बातें कर रहे हैं- हिंदी में। व्हाट्सऐप ने पिछले एक-डेढ़ साल में तेजी से लोकप्रियता हासिल की है। सुखद है कि वहां भी हिंदी को लेकर कोई बाधा नहीं है।

सोशल नेटवर्कों की हिंदी भी अपने आप में विलक्षण है- हिंदी, अंग्रेजी, देशज, तकनीकी, चित्रात्मक और अनौचपारिक शब्दावली से भरी हुई, लेकिन है बहुत दिलचस्प। आप चाहें तो इस हिंदी का छिद्रान्वेषण कर उसकी भाषाई सीमाओं, त्रुटियों और विसंगतियों पर थीसिस लिख सकते हैं लेकिन यदि आप हिंदी के प्रसार में दिलचस्पी रखते हैं तो यह तथ्य अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि वह है तो हिंदी ही। शायद हिंदी की एक अलग खुशबू। कौन जाने आगे चलकर सोशल नेटवर्किंग और ब्लॉगिंग से उपजी शब्दावली, वाक्य-विन्यास और भाषिक प्रवृत्तियां मुख्यधारा की हिंदी पर भी कोई न कोई असर डालें।

हजारों लोग जो हिंदी में टाइपिंग करना नहीं जानते थे, वे सिर्फ इसलिए टाइपिंग के टूल्स की तलाश में लगे हैं ताकि वे हिंदी में संदेश भेज सकें। दूसरे हजारों लोग ऐसा सफलतापूर्वक कर भी चुके हैं। बहुतों ने खास तौर पर इसीलिए हिंदी में टाइपिंग सीखी है। उनकी छोटी-छोटी टिप्पणियां हिंदी की समन्वित शक्ति में इजाफ़ा कर रही हैं। अच्छी बात यह है कि अब मोबाइल पर हिंदी में बोलकर लिखना भी संभव हो गया है। खासकर एंड्रोइड आधारित मोबाइल फोन में, जहां गूगल वॉयस इनपुट में हिंदी को सक्रिय करना आसान है। परिणाम भी अच्छा है। नई-नई सुविधा है सो कुछ त्रुटियां तो रहेंगी। आखिरकार दशकों से विकसित हो रहे सीडैक के श्रुतलेखन में भी अब तक त्रुटियां हैं।

बात सोशल नेटवर्किंग की चल रही थी। क्या वह हमारी भाषा को विकृत भी कर रही है? हां, यकीनन। क्योंकि जिस अंदाज में वह हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बनती जा रही है, उसमें प्रयुक्त भाषा का बहाव दैनिक जीवन तक भी होना स्वाभाविक है। बहुत से लोग धीरे-धीरे उन शब्दों को अपना लेंगे जिनकी रचना फेसबुक की उर्वर भूमि पर हुई है। किंतु यह भाषा पर है कि वह किस समझदारी के साथ अपने आपको विकृतियों से मुक्त रखते हुए नए शब्दों को अपनाती है। आवश्यक नहीं कि ये शब्द परिनिष्ठित हिंदी का हिस्सा बनें लेकिन हमारी समग्र शब्दावली का हिस्सा वे जरूर बन सकते हैं क्योंकि भाषा वही आगे बढ़ती है जो तरल और बहती हुई है, जो नए तत्वों से वितृष्णा नहीं रखती बल्कि 'सार सार को गहि रहे, थोथा देहि उड़ाय' वाली प्रवृत्ति से युक्त है।

हिंदी में अभिव्यक्ति की उत्कंठा सिर्फ यहीं नहीं है। जहां कहीं भी संचार की आवश्यकता है, वहां-वहां यह उत्कंठा, यह आकांक्षा, यह बेचैनी दिखाई देती है। इंटरनेट के संदर्भ में मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं कि कन्टेन्ट या विषय वस्तु ने हिंदी का जितना प्रसार किया है, उससे कहीं अधिक उसका प्रसार संचार के तकनीकी साधनों ने किया है। आज टैबलेट और स्मार्टफोन के युग में भी हम उसी परिघटना को अनुभव कर रहे हैं जो कुछ साल से सोशल नेटवर्किंग और ब्लॉगिंग के संदर्भ में देखते आए थे।

भारत में प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी हुई है, शिक्षा का भी प्रसार हुआ है और तकनीकी चीज़ों के प्रति संदेह का भाव कम हुआ है। ये चीजें आर्थिक दृष्टि से भी लोगों की पहुंच में आ रही हैं। उसी के साथ -साथ संवाद की जरूरत भी बढ़ रही है और वहां अपनी भाषा की जरूरत पड़ ही जाती है। लोग लंबे समय तक रोमन में एसएमएस मोबाइल संदेश भेजते रहे सिर्फ इसलिए कि उनके मोबाइल फोन में हिंदी टाइप करने का कोई जरिया नहीं था और बिना हिंदी में अपनी बात कहे संतुष्टि नहीं होती। इस बीच मोबाइल फोन, खासकर स्मार्टफोन की क्षमता बढ़ी है तो उनमें एक से अधिक भाषाओं की सुविधाएं समाहित करना अपेक्षाकृत आसान हो गया है। कोई तकनीकी रुकावट नहीं है। अगर रुकावट है तो कंपनियों के स्तर पर, जो अलग-अलग उत्पाद को अलग-अलग वर्ग को ध्यान में रखकर बाजार में उतारती हैं। उन्हें लगता है कि किसी खास मोबाइल फोन में हिंदी होनी जरूरी है क्योंकि यह आम लोगों तक पहुंचने वाला है। दूसरी ओर कुछ महंगे, आधुनिक और स्मार्ट किस्म के फोन्स में हिंदी टेक्स्ट इनपुट की अनिवार्यता उन्हें महसूस नहीं होती क्योंकि उन्हें लगता है कि जो वर्ग इन्हें खरीदने वाला है वह तो पहले ही अंग्रेज़ीदां बन चुका है, उसे हिंदी में संदेश भेजने की क्या ज़रूरत पड़ेगी? जैसे-जैसे हम खांटी हिंदी प्रेमियों की आर्थिक क्षमता बढ़ रही है, उनकी यह धारणा टूटेगी और एक-एक कर सब हिंदी की शरण में आ जाएंगे। हिंदी के पास संख्या बल और बाजार जो है।

इस बीच, दूरसंचार जगत में एंड्रोइड ऑपरेटिंग सिस्टम काफी लोकप्रिय हो गया है। यह गूगल की तरफ से शुरू की गई मुक्त स्रोत (ओपन सोर्स) परियोजना है जिसमें दुनियाभर के लाखों विकासक (डेवलपर्स) हाथ बंटाते हैं लेकिन इसके विकास को सही दिशा में सुसंगठित ढंग से आगे बढ़ाने का दायित्व गूगल का है। निःशुल्क और मुक्त स्रोत होने के नाते इसे कोई भी मोबाइल युक्ति (डिवाइस) निर्माता अपने उत्पाद में निःशुल्क इस्तेमाल कर सकता है। अच्छी बात यह है कि यह बेहद शक्ति-संपन्न भी है, लगभग एपल के

आईओएस जितना ही, जो एपल की निजी संपदा (प्रोपराइटरी ऑपरेटिंग सिस्टम) है। एपल के उत्पादों का सुंदर-सुघड़ चेहरा-मोहरा, कामकाज की तेजी व सहजता, और सबसे अहम टच-स्क्रीन आधारित कमांड इसी आईओएस ऑपरेटिंग सिस्टम की बदौलत हैं। लेकिन एपल का ऑपरेटिंग सिस्टम सिर्फ उसी के उत्पादों (आईफोन, आईपैड) आदि में इस्तेमाल हो सकता है। अच्छी बात यह है कि आईओएस और एंड्रोइड दोनों के नए संस्करणों में हिंदी-देवनागरी समर्थन मौजूद है। इस बीच माइक्रोसॉफ्ट परिवार की ओर से भी विंडोज 10 के रूप में नया ऑपरेटिंग सिस्टम जारी किया गया है जो डेस्कटॉप के साथ-साथ टैबलेट्स और स्मार्टफोन्स के भी अनुकूल है। अपने उत्पादों में हिंदी समर्थन देने के मामले में माइक्रोसॉफ्ट दूसरी कंपनियों से आगे है और विंडोज़ 10 में भी यही स्थिति है। विंडोज़ के पिछले संस्करण विंडोज़ 8 में भी यह समर्थन मौजूद था।

विंडोज 10 और आईओएस तो ठीक है, लेकिन एंड्रोइड में हिंदी की मौजूदगी की खास अहमियत है। निःशुल्क होने के कारण आज ज़्यादातर टैबलेट्स और स्मार्टफोन्स में, भले ही उन्हें नोकिया-सैमसंग जैसी बड़ी कंपनियों ने निर्मित किया हो या फिर कार्बन मोबाइल जैसी छोटी कंपनियों ने, एंड्रोइड का खूब इस्तेमाल हो रहा है। उसमें हिंदी की मौजूदगी का अर्थ है, इन सभी मोबाइल डिवाइसेज़ में हिंदी का समर्थन। कंप्यूटरों में लिनक्स ऑपरेटिंग सिस्टम भी निःशुल्क और मुक्त स्रोत मॉडल को लेकर आया था, लेकिन नाकाम हो गया था। सौभाग्य से उसी लिनक्स पर आधारित एंड्रोइड मोबाइल युक्तियों में कुछ यूं छा गया है कि जिस स्मार्टफोन या टैबलेट में देखो एंड्रोइड ही नजर आता है।

मोबाइल और टैबलेट्स के क्षेत्र में एप्लीकेशनों (ऐप्स) ने भी अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज कराई है और जिन मोबाइल युक्तियों में ऑपरेटिंग सिस्टम के स्तर पर हिंदी का समर्थन मौजूद नहीं है उनमें एप्लीकेशनों और इंटरनेट ब्राउज़र के जरिए हिंदी का इस्तेमाल संभव हो गया है। हालांकि अभी तक दूरसंचार उपकरणों में उस किस्म का सार्वत्रिक यूनिकोड हिंदी समर्थन मौजूद नहीं है जैसा कि डेस्कटॉप, लैपटॉप, अल्ट्राबुक और नेटबुक्स (जिन्हें छोटे-बड़े कंप्यूटर की श्रेणी में गिना जाता है) में है। अलबत्ता, जैसे-जैसे प्रयोक्ताओं की संख्या बढ़ेगी, उसका आना तय है। इस लिहाज से अगले दो-तीन साल महत्वपूर्ण रहेंगे।

ब्लॉगिंग पर इन दिनों नए पाठकों को आकर्षित करने, अपने कन्टेन्ट की ताजगी बनाए रखने और मोटीवेशन बनाए रखने का दबाव है। सोशल नेटवर्किंग के लोकप्रिय होने का प्रभाव ब्लॉगिंग पर पड़ा है और उसमें जिस तेजी के साथ विस्तार आ रहा था, वह गति मंद पड़ी है। कारण, सोशल नेटवर्किंग अपने दोस्तों के साथ जुड़े रहते हुए अपनी बात कहने का मौका देता है और अपेक्षाकृत अधिक सुलभ तथा आसान है। वहां आप जो टिप्पणी कर रहे हैं, वह छोटी सी, अनौपचारिक भी हो सकती है और दूसरों की टिप्पणियां भी इस्तेमाल और शेयर की जा सकती हैं इसलिए अच्छा लिखने का दबाव नहीं है। इस वजह से हर कोई सोशल नेटवर्किंग में कुछ न कुछ कह देता है। ब्लॉगिंग के साथ ऐसा नहीं है। वह अधिक गंभीर और अधिक रचनात्मक माध्यम है। दूसरे, जो लोग सोशल नेटवर्किंग पर सक्रिय हैं, उनके लिए फिर ब्लॉगिंग पर भी सक्रिय बने रहना ज्यादा समय-साध्य हो जाता है जिससे ब्लॉगिंग की विकास दर के साथ-साथ ब्लॉगों के अपडेशन की स्थिति प्रभावित हो रही है।

देखते ही देखते ब्लॉगिंग समुदाय की बदौलत हिंदी में विविधताओं से भरी सामग्री की धारा बह निकली है जो बहुत सजीव, जीवंत और हिंदी की विशुद्ध खुशबू लिए हुए है। हिंदी जगत में जिस किस्म के विवाद, धमाल, उठापटक, हंगामे और बहसें यहां पर भी हैं और शायद इसीलिए इन सबको पढ़ना खांटी हिंदी पाठक के लिए अधिक रुचिकर भी है। अगर किसी घटना को कई कोणों से देखना पढ़ना और समझना चाहते हैं तो हिंदी के युवाओं के उल्लास

और रचनाकर्म से भरी इन वेबसाइटों पर एक नज़र जरूर डालिए।

लेकिन आर्थिक समस्या इन सबको प्रभावित कर रही है। छोटी-मझौली वेबसाइटों, ब्लॉगिंग आदि से आय के बहुत सीमित जरिए उपलब्ध हैं और वे भी हिंदी में उतने प्रभावी नहीं हैं। कारण है, आम हिंदी पाठक का ई-कॉमर्स संस्कृति के साथ अधिक जुड़ाव न होना। विज्ञापनदाता भी अंग्रेजी को अधिक वरीयता देते हैं। टेलीविजन विज्ञापनों में जिस तरह हिंदी चैनलों का दबदबा है, उसकी तुलना में ऑनलाइन मीडिया की स्थिति एकदम विपरीत है। इसका कारण है कि हम विज्ञापनदाताओं को हिंदी ऑनलाइन मीडिया की शक्ति के बारे में शिक्षित नहीं कर पा रहे। मेरा अनुमान है कि लगभग पांच साल बाद स्थिति उलट जाएगी क्योंकि टेलीविजन और प्रिंट के रुझानों का प्रभाव अंततः इंटरनेट पर भी दिखाई देना तय है। हालांकि कुछ ई-पत्रिकाएं, वेबसाइटें और ब्लॉग निजी तथा सरकारी संस्थाओं के सहयोग से विज्ञापन हासिल कर पा रहे हैं लेकिन फिर भी इस माध्यम से होने वाली आय बहुत कम है और ऐसे प्रकाशनों की संख्या भी गिनी-चुनी है।

जहां तक बड़े हिंदी पोर्टलों (विशाल वेबसाइटें) का सवाल है, वे अब पूरी तरह स्थापित हो चुके हैं और किसी अच्छे बिजनेस मॉडल की तलाश में जुटे हैं। ऐसे अधिकांश वेब पोर्टल या तो बहुराष्ट्रीय पोर्टलों के हिंदी संस्करणों के रूप में चल रहे हैं या फिर उन्हें किसी न किसी समाचार पत्र समूह की ऑनलाइन शाखा के रूप में पेश किया गया है। प्रभासाक्षी इस मामले में एक अपवाद है जो पूरी तरह वेब माध्यम को समर्पित परियोजना है। वेबदुनिया भी इसी तर्ज पर शुरू हुआ था लेकिन मोटे तौर पर वह नई दुनिया समूह से ही निकला था। हालांकि नई दुनिया अखबार समूह के अधिग्रहण के बाद स्थिति बदल गई है।

हिंदी वेब पोर्टलों में कुछ चिंताजनक ट्रेंड भी दिखाई दे रहे हैं। उनमें से एक भाषा से संबंधित है, जिसमें अंग्रेज़ी भाषा और यहां तक कि रोमन लिपि का भी सीमा से अधिक इस्तेमाल किया जा रहा है। दूसरी चिंता इन पोर्टलों पर फोकस किए जाने वाले कन्टेन्ट को लेकर है। मुख्य धारा के कुछ पोर्टल चटपटी, यौन विषयों से जुड़ी और हल्की-फुल्की खबरों को मुख्य खबरों के रूप में प्रोजेक्ट कर रहे हैं। इन पर ऐसी तस्वीरें, खबरें, लेख और सवाल-जवाब खास तौर पर उभारकर दिखाए जाते हैं, जिन्हें मुख्य धारा के मीडिया में दिखाना ठीक नहीं समझा जाता। न जाने क्यों, उन्हें यह लगता है कि न्यू मीडिया पर इसी किस्म का कंटैण्ट बिकता है। मेरा अनुभव तो इसके अनुरूप नहीं है। मुझे आशंका है कि फिलहाल दो-तीन पोर्टलों तक सीमित यह ट्रेंड कहीं दूसरे पोर्टलों तक भी न पहुंचे और धीरे-धीरे पाठकों की रुचियों, पसंद-नापसंद और अपेक्षाओं को प्रभावित करना शुरू कर दे। हिंदी न्यू मीडिया की सफलता की कहानी सस्ते हथकंडों के आधार पर नहीं लिखनी चाहिए।

balendu@gmail.com

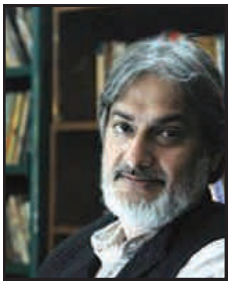

लेखक भारतकोश.ऑर्ग के संस्थापक संपादक हैं। स्नातक तक शिक्षा लेने के बाद, उन्होंने विश्व और भारत के साहित्य, इतिहास, दर्शन और संस्कृति का अध्ययन किया। सूचना प्रौद्योगिकी की अत्याधुनिक तकनीकों से विशेष लगाव होने के कारण वे भारत से संबंधित ज्ञान को कंप्यूटर और इंटरनेट पर लाने के लिए प्रयासरत हैं।

बहुत कुछ किया बहुत कुछ बाकी

आदित्य चौधरी

'भारत के गांव-गांव तक हिंदी को पहुंचा कर ही हम विश्व में हिंदी को सम्मान दिला पाएंगे'

—स्वामी विवेकानंद

पहले देखिए आंकड़े क्या कहते हैं—भारतकोश (www.bharatkosh.org) पर दिनांक 10.07.2015 तक 30 हज़ार लेख, 12 हज़ार 8 सौ चित्र, 1 लाख 40 हज़ार वेब पन्ने हैं, जिन्हें 10 लाख से अधिक पाठक प्रति माह पढ़ रहे हैं और पाठकों की संख्या 15 करोड़ से ज़्यादा हो चुकी है। भारतकोश हिंदी यूआरएल 'भारतकोश.org' पर भी उपलब्ध है।

भारतकोश, आख़िर बनाया क्यों?

जहां तक इंटरनेट पर हिंदी में सूचनाओं का प्रश्न है तो ये हिंदी में बहुत ही कम न के बराबर उपलब्ध थीं। यूरोप के हर देश की जानकारी उनकी अपनी भाषा में उपलब्ध थी, यहां तक कि चीन का भी सब कुछ उन्हीं की भाषा में उपलब्ध था। बस भारतीय ही अपने देश की जानकारी को किसी भारतीय भाषा में नहीं पाते थे। हम आपस में अक्सर यह चर्चा किया करते थे।

एक बार वृन्दावन में इसी विषय पर चर्चा करते हुए कुछ अंग्रेज़ भी इसमें शामिल हो गए, जैसा कि सभी जानते हैं, वृन्दावन में अंग्रेज़ और विदेशी बहुत आते हैं। एक अंग्रेज़ ने ताना देते हुए कहा कि भारत का इतिहास तो अंग्रेज़ों ने लिखा है और इंटरनेट पर हिंदी भाषा में भी अंग्रेज़ ही उपलब्ध कराएंगे। बस यही बात मुझे तीर की तरह चुभ गई और बिना किसी विशेष साधन-सुविधा के युद्ध स्तर पर काम प्रारम्भ कर दिया। ये बात सन 2006 की है।

लेकिन यह सब इतना आसान नहीं था

सबसे पहले www.brajdiscovery.org बनाई जो 'ब्रज का समग्र ज्ञानकोश' है। इसके बाद मेरी जीवन संगिनी आशा चौधरी ने मुझे आत्मविश्वास के कई पाठ पढ़ाए और एक शाम को साथ-साथ टहलते हुए यह घोषणा कर दी कि भारतकोश हर हाल में बनाया जाएगा चाहे हमारी क्षमता हो या न हो। साथ ही यह भी निश्चित किया कि आशा भी मेरे साथ भारतकोश बनाने में बराबर की

भागीदार रहेंगी। उन्होंने अपने शयनकक्ष को ही भारतकोश कार्यालय में बदल डाला जो आज भी है, फिर तो बस जैसे हिम्मत आ गई, www.bharatkosh.org बनाने की।

यही सब चल रहा था कि प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो. अशोक चक्रधर को भारतकोश के बारे में पता चला। पता चलते ही वे भारतकोश के कार्यालय में चले आए और भारतकोश की टीम को पहली बार पता चला कि यहां कितना बड़ा काम हो रहा है। हिंदी भाषाविद डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा ने भी भारतकोश का प्रचार-प्रसार शुरू कर दिया। वे भारतकोश के लेखों को ई-मेल द्वारा हज़ारों लोगों को निरंतर भेजते रहते हैं।

भारतकोश का ख़र्चा चलाने में मेरी धर्मपत्नी आशा की अपनी पूरी जमा-पूंजी समाप्त हो गई और सभी आभूषण बिक गए। जिस दिन अम्माजी के दिए हुए ख़ानदानी गहने भी बेचने पड़े उस दिन हमसे खाना नहीं खाया गया। ख़ैर, अब गूगल के विज्ञापन लगा कर भारतकोश का ख़र्चा चलाने का विचार किया है, देखते हैं, क्या होता है। जो होगा अच्छा होगा।

भारतकोश चल कैसे रहा है?

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा: ऋग्वेद (4.33.11) (देवता उसी के सखा बनते हैं जो परिश्रम करता है।)

आज भारतकोश पर भारत का इतिहास, भूगोल, साहित्य, दर्शन, धर्म, संस्कृति, जीवनी, समाज, रहन सहन, खान-पान, त्योहार आदि की जानकारी उपलब्ध है। भारतकोश को, भारत सरकार, विश्वविद्यालयों, अन्य शिक्षण संस्थानों, हिंदी विद्वानों, समाचारपत्रों, पत्रिकाओं एवं छात्राओं-छात्रों द्वारा पढ़ा और सराहा जा रहा है। प्रवासी भारतीयों के बच्चों के लिए तो भारतकोश जैसे वरदान के रूप में साबित हुआ है। भारतकोश पर उपलब्ध जानकारी हिंदी में है। हिंदी के प्रति उनका रुझान तेज़ी से बढ़ता जा रहा है।

रहस्य भारतकोश की लोकप्रियता का

भारतकोश की गुणवत्ता का मुख्य कारण है भारतकोश पर काम करने वालों की नेक नीयत, सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता और प्रतिबद्धता। हमारी योग्यता, हमारी कार्यक्षमता, हमारे भाषा ज्ञान और हमारी विद्वत्ता पर अनेक प्रश्न चिह्न लगाए जा सकते हैं, लेकिन हमारी निष्ठा, हमारे श्रम और हमारी नीयत पर कोई प्रश्न चिह्न लगा पाना सम्भव नहीं है।

हिंदी एक अंतरराष्ट्रीय भाषा!

हिंदी भाषी क्षेत्र में 90% लोग किसी दुकानदार से हिंदी में या अपने क्षेत्र की किसी बोली में ही बात करते हैं, यह सही है। लेकिन बात करने का मतलब है कि हम 'बोली' के बारे में बात कर रहे हैं, देवनागरी लिपि की नहीं। हमें हिंदी बोलना और सुनना तो पसंद है लेकिन लिखने में संकोच करते हैं। सभी उत्पादों के नाम देवनागरी और किसी भी भारतीय मूल की लिपि में होने चाहिए और साथ ही अंग्रेज़ी में भी। इसके बाद ही हम देवनागरी लिपि के रक्षा के संबंध में गम्भीरता से सोच सकते हैं।

हिंदी की मुक्ति!

अंग्रेज़ी का शब्दकोश दुनिया के सभी शब्दकोशों की तुलना में अधिक विशाल है। इसलिए नहीं कि इसमें सभी अंग्रेज़ी के शब्द हैं,

बल्कि इसलिए कि वे सभी भाषाओं के शब्दों को ज्यों का त्यों अपनाकर अपने शब्दकोश में जोड़ देते हैं। हिंदी में जब 'कार', पार्किंग, रेल, प्लेटफ़ार्म, कैमरा आदि शब्द अपना लिए गए तो कंप्यूटर को 'संगणक' कहने की या ब्राउज़र को 'विचरक' कहने की क्या ज़रूरत है। हिंदी को संकुचित सोच की अंधेरी दुनिया से निकाल कर सुग्राह्य बनाना होगा, इसे उदारता के भव्य आकाश में मुक्त विचरण करने देना होगा।

भारतकोश का भविष्य

भारतकोश की भावी योजनाओं, या कहें कि 'सपनों' में से कुछ ये हैं-

भारत की सभी भाषाओं में 'भारतकोश' उपलब्ध हो (यूनीकोड UTF-8 समर्थ भाषाओं में)

भारत के 6 लाख अड़तीस हज़ार 5 सौ 96 गांवों का अपना एक पोर्टल हो जिसमें प्रत्येक गांव का अपना एक पन्ना हो जो एक तरह से उस गांव की अपनी वेबसाइट हो जिसमें उनकी भाषा-बोली, त्योहार, उत्सव, नृत्य, गायन, घरेलू नुस्ख़े आदि सभी सूचनाओं को वीडियो, ऑडियो, चित्रों और पाठ के रूप में उपलब्ध कराया जाए। साथ ही सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई, राजस्व ग्राम की सूचनाओं से इतर संस्कृति संबंधी सूचनाएं भी हों।

एक ऐसा CMS (Web portal Content management system) जिस पर भारत की सभी सरकारी वेबसाइट बनाई जाएं, जिससे एक सामान्य जानकारी रखने वाला सरकारी कर्मचारी भी वेबसाइट बना सके और उसे अपडेट कर सके।

एक 99% तक नतीजे देने वाला OCR (Optical Character Recognition software) यदि हिंदी में कहें तो 'यांत्रिक दृश्याक्षर पाठक'।

देवनागरी लिपि की सुरक्षा के लिए 'की बोर्ड' (संगणक कुंजीपटल)।

वास्तव में कार्य करने वाला संभाषण स्व-टंकक (Speech to text or voice recognition)।

कंप्यूटर और मोबाइल के लिए, हिंदी भाषा में अनेक शिक्षाप्रद और मनोरंजक खेल, प्रश्नोत्तरी, ऐप, ई-बुक आदि तैयार करना।

भारत में, सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में तो एक तहलका जैसा मचा हुआ है, जिसे देखो वही आईटी-आईटी का गाना गा रहा है। इस आईटी में हिंदी का चलन कितना सक्रिय रहे, यह हम सभी की ज़िम्मेदारी है। हिंदी को इंटरनेट के माध्यम के लिए सहज-सरल बनाने का प्रयास चल रहा है। C-DAC, माइक्रोसॉफ़्ट, मैकिंटोश आदि सक्रिय हैं, लेकिन देवनागरी लिपि को बचाने के प्रयास अभी पर्याप्त नहीं हैं। हमने भी अपनी क्षमताओं से, भारतकोश के द्वारा कुछ किया, सतत कर रहे हैं, लेकिन फिर भी बहुत-बहुत कुछ होना बाक़ी है, जितना हुआ है वह अपर्याप्त है और अभी बहुत कुछ होना है।

adityapost@gmail.com

इंडिक लिपियों में अंतर्निहित समानता

विजय कुमार मल्होत्रा

लेखक रेल मंत्रालय, भारत सरकार के पूर्व निदेशक (राजभाषा) हैं। विगत दो दशक से वे भाषाई कम्प्यूटिंग के एक महत्वपूर्ण विद्वान हैं। देश-विदेश के अनेक हिंदी सम्मेलनों में उन्होंने यूनिकोड पर्यावरण में आने की भरपूर वकालत की है। उन्हें अनेक सम्मानों से नवाज़ा जा चुका है।

भारत की अनेक भाषाओं की लिपियां तो एक-दूसरे से इतनी भिन्न दिखती हैं कि उनमें समानता के अंतर्निहित सूत्र को खोजना भी सरल नहीं है। उदाहरण के लिए आर्यभाषाओं और द्रविड़ भाषाओं में इतना अंतर दिखाई पड़ता है कि यह विश्वास करना कठिन हो जाता है कि सभी भारतीय भाषाओं की लिपियों (उर्दू को छोड़कर) का उद्गम ब्राह्मी लिपि के समान स्रोत से हुआ है। यद्यपि इन भाषाओं के अक्षर ऊपरी तौर पर भिन्न -भिन्न दिखाई पड़ते हैं, लेकिन इनकी वर्णमाला और लिपि समान उच्चारण पद्धति पर आधारित है। उर्दू इसका अपवाद है, क्योंकि इसकी लिपि फ़ारसी-अरबी लिपि पर आधारित है।

यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो अशोक काल से ही हमें उत्तर और दक्षिण भारत में ब्राह्मी लिपि का व्यापक उपयोग मिलने लगता है। चौथी शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्राह्मी दो शैलियों में विभक्त हो गई, उत्तरी शैली और दक्षिणी शैली। उत्तर भारत की सभी परवर्ती लिपियां ब्राह्मी की उत्तरी शैली से और दक्षिणी भारत की सभी परवर्ती लिपियां ब्राह्मी की दक्षिणी शैली से विकसित हुईं। कालांतर में इन लिपियों में इतना अंतर आ गया कि बिना सीखे उत्तर वालों के लिए दक्षिण की किसी लिपि को पढ़ना संभव न रहा और इसी प्रकार बिना सीखे दक्षिण वालों के लिए उत्तर भारत की किसी लिपि को पढ़ना संभव न रहा।

भारतीय लिपियां अपने स्वरूप में अक्षरात्मक हैं, लेकिन उनकी वर्णमाला का क्रम ध्वन्यात्मक है और ब्राह्मी लिपि से उद्भव के कारण उनकी विरासत भी एक ही है। कुछ लिपियों में मामूली-सा अंतर होने के कारण कुछ अक्षर अतिरिक्त हैं और कुछ लिपियों में कुछ अक्षर कम हैं। 1986-88 में विकसित ISCII (Indian Standard Code for Information Interchange) कोड में परिवर्धित देवनागरी के अंतर्गत इस पक्ष का भी ध्यान रखा गया और इसे भारतीय मानक ब्यूरो ने मानक के रूप में स्वीकार कर लिया था, लेकिन जब कंप्यूटर के उपयोग का सवाल आया तो भारतीय भाषाओं में डेटा प्रविष्टि के अनेक विकल्प सामने थे और यही चिंता की बात थी। भारतीय भाषाओं में डेटा प्रविष्टि के लिए डिफ़ॉल्ट विकल्प INSCRIPT (INdian SCRIPT) लेआउट है। इस लेआउट में मानक 101 कुंजीपटल का उपयोग किया जाता है। वर्णों की मैपिंग

इस प्रकार से की गई है कि यह सभी भारतीय भाषाओं (बाएँ से दाईं ओर लिखी जाने वाली भाषाओं) के लिए समान कुंजीपटल बन जाता है। इसका प्रमुख कारण यही है कि भारतीय भाषाओं के वर्णों का समुच्चय समान है। हम भारतीय भाषाओं की वर्णमाला के वर्णों को व्यंजन, स्वर, अनुनासिक और संयुक्ताक्षरों में विभाजित कर सकते हैं। प्रत्येक व्यंजन विशिष्ट ध्वनि और स्वर का संयोजन होता है। स्वर शुद्ध ध्वनियों को दर्शाता है। अनुनासिक वे नासिक्य ध्वनियाँ होती हैं, जिनका उच्चारण स्वर के साथ किया जाता है। संयुक्ताक्षर दो या अधिक वर्णों का संयोजन होता है। भारतीय भाषाओं की वर्णमाला की तालिका को स्वर और व्यंजन में विभाजित किया जाता है। स्वर दो प्रकार के होते हैं, दीर्घ और लघु। व्यंजनों को अनेक वर्गों में विभाजित किया जाता है।

INSCRIPT लेआउट में यह व्यवस्था प्रतिबिंबित होती है। इसीलिए इसकी व्यवस्था बहुत सरल होती है। इन्स्क्रिप्ट ले आउट में सभी स्वरों को कुंजीपटल के बाईं ओर रखा गया है और व्यंजनों को दाईं ओर। यह व्यवस्था इस प्रकार से की गई है कि प्रत्येक वर्ग को दो कुंजियों में विभाजित कर दिया गया है। इस प्रकार इन भाषाओं के समान अकारादि क्रम के कारण ही सभी भारतीय भाषाओं के लिए समान कुंजीपटल और समान कोड विकसित किया जा सका है और सभी भारतीय भाषाओं के लिए समान कोडिंग के कारण ही भारतीय लिपियों में परस्पर लिप्यंतरण की सुविधा भी सहज ही उपलब्ध हो जाती है। चूँकि ISCII में रोमन लिपि को भी समाहित किया गया है, इसलिए इंडिक लिपियों अर्थात् भारतीय भाषाओं की लिपियों से रोमन लिपि में भी लिप्यंतरण किया जा सकता है।

वर्तमान परिदृश्य में, इंडिक अर्थात् भारतीय भाषाओं के अधिकांश उपयोगकर्ता सिस्टम और फ़ॉन्ट की असंगतता के कारण आज भी अमानक फ़ॉन्ट का उपयोग कर रहे हैं और ई-मेल, गपशप (चैट), टैम्पलेट, ऑटो टेक्स्ट, थिसॉरस, स्पेलचैक जैसे अनुप्रयोगों का इंडिक भाषाओं में उपयोग करने में हिचकिचाते हैं। यही कारण है कि कंप्यूटर पर हिंदी के उपयोगकर्ता आज भी शब्दसंसाधन तक ही सीमित हैं। शब्दसंसाधन के अंतर्गत भी वे कंप्यूटर पर हिंदी में टाइप करने मात्र को ही हिंदी कंप्यूटिंग समझने लगते हैं। बहुत ही कम उपयोगकर्ता ऐसे हैं जो हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में, पावर पॉइंट, ऐक्सेल और ऐक्सेस आदि का उपयोग करते हैं।

हिंदी के व्यापक प्रचार-प्रसार में युनिकोड की सुविधा क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती है। आज विश्व की सभी लिखित भाषाओं के लिए युनिकोड नामक विश्वव्यापी कोड का उपयोग, माइक्रोसॉफ़्ट, आई.बी.एम., लाइनेक्स, ओरेकल जैसी विश्व की लगभग सभी कंप्यूटर कंपनियों द्वारा किया जा रहा है। यह कोडिंग सिस्टम फ़ॉन्ट्समुक्त , प्लेटफ़ॉर्ममुक्त और ब्राउज़रमुक्त है। विंडोज़ 2000 या उससे ऊपर के सभी पी सी युनिकोड को सपोर्ट करते हैं, इसलिए युनिकोड आधारित फ़ॉन्ट का उपयोग करने से न केवल हिंदी को आज विश्व की उन्नत भाषाओं के समकक्ष रखा जा सकता है, बल्कि इसकी सहायता से निर्मित वेबसाइट में खोज आदि अधुनातन सुविधाएँ भी सहजता से ही उपलब्ध हो सकती हैं।

सन् 2008 में भारत सरकार ने सरकारी कार्यालयों में सूचनाओं/फ़ाइलों/दस्तावेजों के निर्बाध विनिमय के लिए युनिकोड-आधारित फ़ॉन्ट को मानक के रूप में स्वीकार कर लिया। इसका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि अब भारत सरकार के दफ़्तरों में सूचनाओं को न केवल अकारादि क्रम से व्यवस्थित (सॉर्ट) किया जा सकेगा, बल्कि खोज (सर्च) की अतिरिक्त सुविधा होने के कारण मात्र से मूल शब्द (कीवर्ड) टाइप करके तत्संबंधी सूचनाओं तक पहुँचा जा सकेगा। साथ ही ये सभी सूचनाएँ इंटरनेट पर भी ऑन-लाइन उपलब्ध होने लगेंगी और आम नागरिक उन्हें अंग्रेज़ी के साथ-साथ हिंदी में भी देख सकेगा।

युनिकोड की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें विश्व की

सभी आधुनिक और प्राचीन भाषाओं की लिपियाँ, विराम चिह्न और तकनीकी प्रतीक समाहित हो जाते हैं। साथ ही इसे सभी ऑपरेटिंग सिस्टम सपोर्ट करते हैं। जैसे, विंडोज़, ऐप्पल मैक OS X, IBM, GNU/Linux , जावा, सन सोलरिस, बैल लैब्स आदि। इसी प्रकार सभी वर्तमान ब्राउज़र भी युनिकोड को सपोर्ट करते हैं। जैसे, क्रोम, IE, AOL, फ़ायरफॉक्स, नैटस्केप, मोज़िला, सफ़ारी, फ़ायरफ़ॉक्स और ऑपेरा।

इतनी तमाम सुविधाओं के बावजूद क्या यह विडंबना नहीं है कि प्रकाशन के क्षेत्र में हम अभी-भी युनिकोड का कोई उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। यह सही है कि डैस्कटॉप प्रकाशन से संबंधित अधिकांश सॉफ्टवेयर आज भी युनिकोड का समर्थन नहीं करते। अगर आप अपनी पांडुलिपि युनिकोड-आधारित फ़ॉन्ट में टाइप करके किसी हिंदी प्रकाशक को दे दें तो वह पहले तो उसे चाणक्य, कृतिदेव जैसे किसी गैर-युनिकोड फ़ॉन्ट में परिवर्तित करेगा और फिर पेजमेकर आदि की सहायता से उसे मुद्रित करेगा। इसका परिणाम यह होगा कि आप आज भी हिंदी प्रकाशन के क्षेत्र में स्पैलचैकर, थिसॉरस या ग्रामर चैकर आदि सुविधाओं का उपयोग नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, अगर आप पेजमेकर आदि में तैयार की गई किसी पुस्तक का ई-बुक संस्करण निकालना चाहें तो एक बार फिर से आपको सारी सामग्री को युनिकोड में परिवर्तित करना होगा।

कुछ प्रकाशक तो गैर-युनिकोड फ़ॉन्ट में तैयार की गई सामग्री को ही पीडीएफ़ में परिवर्तित करके उसका ई-बुक संस्करण निकालने लगे हैं, जिसके फलस्वरूप उनकी ई-बुक में खोज (सर्च) की सुविधा ही नहीं होती। यह वस्तुतः ई-बुक का प्राण तत्व है। साथ ही ई-बुक की दूसरी विशेषता है, रनिंग टैक्स्ट। पुस्तक के रूप में तैयार की गई सामग्री को ई-बुक संस्करण में लाने के लिए उसका संयोजन लंबवत् करना होगा, क्षैतिज रूप में नहीं, ताकि ई-बुक की पाठ्यसामग्री को रनिंग टैक्स्ट को कंप्यूटर, लैपटॉप, टैबलेट, किंडल और मोबाइल में समान रूप में पढ़ा जा सके। यह तभी संभव है जब हिंदी प्रकाशक आगे बढ़कर केवल उन्हीं सॉफ्टवेयरों का उपयोग करें जो युनिकोड को सपोर्ट करते हों।

हिंदी में इंटरनेट के लिए विषयवस्तु निर्माण (Content creation) भी आज के युग की प्रबल आवश्यकता है। आज भी 81 प्रतिशत से अधिक सामग्री इंटरनेट पर अंग्रेज़ी में उपलब्ध है। यदि हम 10 वें विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर यह संकल्प करें कि हम हर क्षेत्र में अधिक से अधिक सामग्री इंटरनेट पर हिंदी में निर्मित करेंगे और उसे निरंतर अद्यतन करते रहेंगे तो मात्र आंकड़ों के आधार पर नहीं बल्कि विषयवस्तु के आधार पर भी हम हिंदी को विश्वभाषा बनाने की दिशा में अग्रसर हो सकेंगे। इस क्षेत्र में भारतकोश का अनुकरणीय उदाहरण सामने रखा जा सकता है। आदित्य चौधरी के संपादन में विकसित भारतकोश भारत से संबंधित जानकारी का ऐसा कोश है, जिसमें गागर में सागर भरने का सफल प्रयास किया गया है। इसी प्रकार अरविंद कुमार जी द्वारा संपादित अरविंद लैक्सिकॉन भी अब इंटरनेट पर उपलब्ध है। इसका एक लाभ यह भी है कि इसे निरंतर अद्यतन किया जा सकता है।

इससे यह स्पष्ट है कि युनिकोड को अपनाकर हम कंप्यूटर के विश्वव्यापी बहुभाषी मंच पर हिंदी को विश्वभाषा के रूप में न केवल प्रतिष्ठित कर सकते हैं, बल्कि उसके माध्यम से हर तरह के अनुप्रयोग के लिए उसका व्यापक और गहन रूप में उपयोग भी कर सकते हैं।

malhotravk@gmail.com

ई-बुक्स का संसार

प्रो॰ वशिनी शर्मा

लेखिका केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा की पूर्व प्रोफेसर हैं। वे निरंतर हिंदी को सूचना प्रौद्योगिकी से जोड़ने वाले कार्यक्रमों से जुड़ी रहती हैं। आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में वे आलेख-पाठ कर चुकी हैं।

भारत को डिजिटल भारत बनाने का हमारा सपना अब साकार होता नज़र आ रहा है। ग्रामीण और शहरी भारत तथा डिजिटल उपकरणों का इस्तेमाल करने वाले और न करने वालों के बीच की चौड़ी खाई को देखते हुए डिजिटल इंडिया कार्यक्रम भारत के नागरिकों को विश्व के अन्य विकसित देशों के लोगों के समकक्ष लाने में एक अहम पड़ाव साबित होगा। इस कार्यक्रम की घोषणा हाल ही में प्रधानमंत्री ने की जिसका मूल लक्ष्य बेहतर सुविधाएं मुहैया कराना, नवाचार को बढ़ावा देना और अधिक से अधिक रोजगारों का अवसर देना है। इस योजना के अनुसार—

ई-क्रांति, सेवाओं की इलेक्ट्रॉनिक डिलीवरी : इसमें अनेक बिंदुओं पर फोकस किया गया है।

ई-एजुकेशन : इसके तहत सभी स्कूलों (ढाई लाख) को ब्रॉडबैंड से जोड़ने, मुफ्त वाई-फाई की सुविधा मुहैया कराने और डिजिटल लिटरेसी कार्यक्रम की योजना है। सभी शैक्षिक पाठ्य सामग्री ऑनलाइन होती जाएगी और किताबों/बस्ते का बोझ कम हो जाएगा।

ऑनलाइन बाजार में हिंदी किताबें

अमेजन की सफलता ने कभी फ्लिपकार्ट को प्रेरित किया था और फ्लिपकार्ट की सफलता को देखकर अमेजन ने भी भारत में अपना व्यापार 'अमेजन डॉट इन' नाम से 2012 में जोर-शोर से शुरू किया। फ्लिपकार्ट की वेबसाइट पर रैंडम सर्च करने पर पता चलता है कि उस पर कुल 1,25,72,442 किताबों को सूचीबद्ध किया गया है, जिनमें 93,67,851 किताबें स्टॉक में बिक्री के लिए उपलब्ध हैं। गौरतलब है कि इन संख्याओं में एक ही किताब के अलग-अलग संस्करणों को अलग किताब मानकर सूचीबद्ध किया गया है। इस तरह से रैंडम सर्च करने पर और भी कई दिलचस्प जानकारियां मिलती हैं, मसलन फ्लिपकार्ट पर अंग्रेजी की 66,94,303 और हिंदी की 27,930 किताबें बिक्री के लिए उपलब्ध हैं। फ्लिपकार्ट पर इन अंग्रेज़ी और हिंदी के अलावा बांग्ला, तमिल, मराठी, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, गुजराती, पंजाबी, संस्कृत, उर्दू, ओड़िया, नेपाली, भोजपुरी और असमी भाषाओं में किताबें उपलब्ध हैं। फ्लिपकार्ट की तरह अमेजन डॉट इन पर कुल 1,87,26,047 किताबें हैं, जिनमें अंग्रेज़ी की 1,35,18,269 और हिंदी की 34,573 किताबें बिक्री के लिए उपलब्ध हैं। इनके अलावा दुनिया भर की कई दूसरी भाषाओं के साथ-साथ

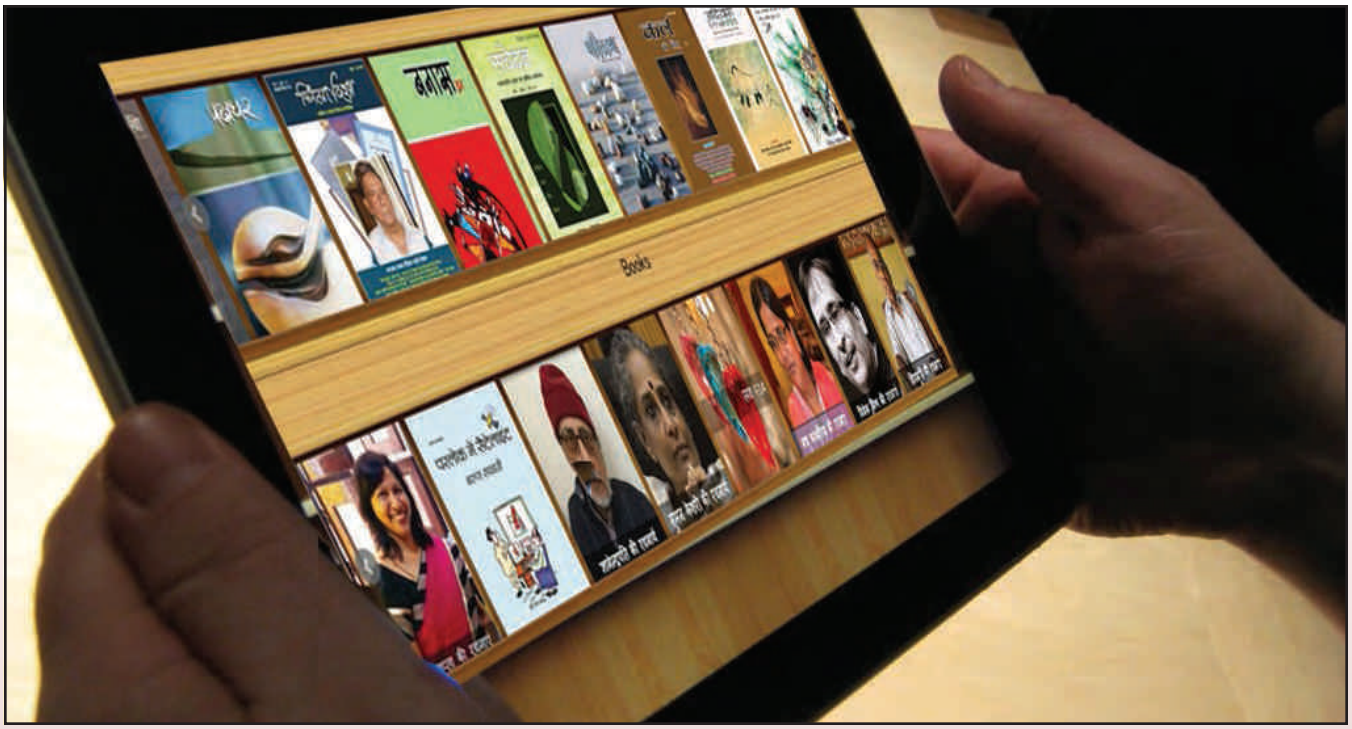

अमेजन पर अन्य भारतीय भाषाओं की किताबें भी उपलब्ध हैं।

आज फ्लिपकार्ट और अमेजन भारतीय प्रकाशकों के ऑनलाइन कारोबार का बड़ा ज़रिया है। हिंदी किताबों के रैंडम सर्च से पता चलता है कि राजकमल प्रकाशन की फ्लिपकार्ट पर 1934 और अमेजन पर 1515 किताबें सूचीबद्ध हैं। इसी प्रकाशन समूह के लोकभारती प्रकाशन की 516 किताबें फ्लिपकार्ट पर 310 किताबें अमेजन पर उपलब्ध हैं। वाणी प्रकाशन की फ्लिपकार्ट पर 1730 और अमेजन पर 1542 किताबें मौजूद हैं। प्रभात प्रकाशन की फ्लिपकार्ट पर 1979 और अमेजन पर 1391 किताबें बिकने के लिए सजी हुई हैं। फ्लिपकार्ट पर राजपाल एण्ड सन्स की 614 किताबें और हिन्द पॉकेट बुक्स की 356 किताबें उपलब्ध हैं। इनके अलावा, हिंदी के दूसरे छोटे -बड़े प्रकाशक अपनी किताबों के साथ मिलकर इन वेबसाइट्स के जरिए पाठकों को हिंदी की किताबों का बड़ा संसार मुहैया कराते हैं।

ई-बुक्स का अनूठा संसार

फ्लिपकार्ट किताबों के पेपरबैक और हार्डबाउंड संस्करणों के साथ-साथ पाठकों को ई-बुक्स की सुविधा भी प्रदान करता है। फ्लिपकार्ट पर हिंदी की कुल 604 ई-बुक्स, सेल्फ हेल्प की 29 ई-बुक्स, जीवनियों, आत्मकथाओं व सत्यकथाओं की 70 ई-बुक्स मौजूद हैं। अमेजन ने किंडल के नाम से एक गैजेट बाज़ार में उतारा है, जो ई-रीडिंग या ई-बुक्स का अमेजन संस्करण है। अमेजन की वेबसाइट पर 103 किताबें किंडल फॉरमेट में उपलब्ध हैं, जिनमें 11 जीवनियों, 20 व्यक्तित्व विकास और 44 साहित्य व कथा कहानियों पर केन्द्रित हैं।

ई-बुक पोर्टल लेखक, पाठक और प्रकाशक के बीच संवाद स्थापित करने और प्रतिक्रिया व्यक्त करने का एक ऐसा मंच है जहां किताब पढ़कर बेझिझक अपनी बात कही जा सकती है। सार-संक्षेप पढ़ कर किताब डाउनलोड की जा सकती है या बुकमार्क करके रखी जा सकती है। किताब के प्रचार-प्रसार और खरीद में इसकी अहम भूमिका है।

ग्राहक की सुविधा -असुविधा

इंटरनेट एंड मीडिया एसोसिएशन ऑफ इंडिया की ओर से जारी रिपोर्ट के अनुसार पिछले वर्ष भारत में इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या में सालाना 32 फीसदी का इज़ाफा हुआ है। इस साल के अंत तक भारत इंटरनेट के इस्तेमाल में यू॰एस॰ए॰ को पीछे छोड़ देगा। असर साफ है कि किताबों के मुद्रित और ई-संस्करणों की बिक्री जिस तरह से ऑनलाइन माध्यमों से बढ़ती जा रही है, लगता है किताबों का पूरा बाज़ार ऑनलाइन माध्यम पर शिफ्ट कर जाएगा। दिसम्बर 2014 तक देश में 17 करोड़ से अधिक लोग मोबाइल के ज़रिए इंटरनेट से जुड़े हुए थे और जानकारों का मानना है कि इस साल जून तक मोबाइल इंटरनेट धारकों की संख्या 21 करोड़ के पार हो जाएगी। इसी को देखते हुए अब ऑनलाइन मार्केटिंग की सारी वेबसाइट्स मोबाइल ऐप्स के ज़रिए होने वाली ख़रीदारी को प्रोत्साहित कर रही हैं।

vashinisharma@gmail.com

लेखिका गार्गी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएं निरंतर प्रकाशित होती रहती हैं।

हर तरफ की हिंदी

डा. स्वाति श्वेता

हिंदी जगत का विस्तार बैंकिंग क्षेत्र में हुआ है। बैंकों में प्रयोग में आनेवाली सामग्री (फार्म तथा रजिस्टर, अनुदेशात्मक सामग्री, विज्ञापन तथा प्रचार सामग्री, पत्राचार) में हिंदी का चारित्रिक स्वरूप अलग-अलग तरह का हो जाता है। इन सभी प्रकार के हिंदी स्वरूप की एक सामान्य विषेशता यह है कि इसका कोई भी स्वरूप साहित्य न होकर वैधानिक, औपचारिक तथा व्यावसायिक ही रहता है। टिप्पण और प्रारूप में प्रयुक्त हिंदी का स्वरूप उर्दू एवं मारवाड़ी व्यापारियों द्वारा प्रयुक्त रूप से प्रभावित है। इतना ही नहीं बैंकिग क्षेत्र में विज्ञापन और प्रचार सामग्री का महत्व तेज़ी से बढ़ता जा रहा है। बैंक अपने परम्परागत कार्यकलाप के अतिरिक्त कई नए तरह के काम भी कर रहे हैं और इनके कार्यों को जनता तक पहुंचाने के लिए हिंदी का प्रयोग किया जा रहा है। ग्राहक सेवाएं, निवेश बैंकिंग आदि ऐसे ही कार्य हैं। उदाहरण 'आपकी समृद्धि, हमारा लक्ष्य'।

बैंकों द्वारा ग्राहकों के लिए जारी नियमावली में हिंदी का प्रयोग किया जा रहा है 'जमाकर्ता से निवेदन है कि वे पासबुक को सुरक्षित स्थान में रखें। जमाकर्ता की असावधानी से पासबुक के खो जाने पर या हुई क्षति या धोखे से निकासी के लिए बैंक जिम्मेदार नहीं होगा।'

प्रशासकीय कार्यों में हिंदी भाषा का प्रयोग हिंदी भाषा की समृद्धि का एक मुख्य कारण रहा है। बहुत से ऐसे शब्दों की जानकारी आम जनता को स्वयमेव हो जाती है, जिन्हें वह अपने नित्य के व्यवहार में प्रयोग नहीं करता। इसका कारण है प्रयोजन संघ सरकार के पत्र-व्यवहार, विधान परिषद और संसद को सभी कार्यवाही, न्यायपालिका का व्यवहार, कार्य, कार्यालयी पत्राचार, संस्थान, उपक्रम, बैंक अभिकरण आदि के दैनिक कामकाज, व्यवसाय, विज्ञापन, विचार-विमर्श आदि में हिंदी का प्रयोग उसके विस्तार में बहुत सहायक हुआ है। कार्यालयी हिंदी में संस्कृत, अरबी-फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के पर्याय भी यदा-कदा प्रयुक्त होते हैं। इससे इसकी शब्द-संपदा में वृद्धि हुई है। प्रशासनिक हिंदी के संबंध में सरल या कठिन भाषा की बात उठाई जाती है और यह तर्क दिया जाता है कि कठिन शब्दावली के प्रयोग से भाषा बोझिल होगी और जनसाधारण से दूर हो जाएगी।

कहना न होगा कि हिंदी की प्रयोजनीयता ने जैसे कई जीवनोपयोगी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज की, हिंदी व्यवसाय और उससे संबंधित आर्थिक क्षेत्रों में व्यवहृत हो रही है। भाषिक प्रयुक्ति के निष्कर्ष पर यह व्यावसायिक हिंदी है, जिसने वाणिज्य और आर्थिक विनियोग के तमाम प्रक्षेपों में अपनी प्रयुक्ति की विशेषता को इंगित किया है। व्यवसाय के साधन के रूप में उद्योग, प्रतिष्ठान, दुकान, ग्राहक, व्यापार, बैंक, बीमा, परिवहन आदि सभी व्यावसायिक हिंदी के प्रयोग क्षेत्र हैं। वस्तुत: अर्थतंत्र के समस्त क्षेत्रों में भाषा-प्रयुक्ति द्वारा जिन प्रविधियों में वाणिज्य और विभिन्न आर्थिक कार्य सम्पन्न होते हैं, वही व्यावसायिक हिंदी है। सोना उछला, चांदी लुढ़की, दाल नरम, जीरा गरम, मिर्च तेज, काजू गिरा जैसे शब्दों का प्रयोग केवल व्यावसायिक क्षेत्र में ही विशेष अर्थ में स्वीकृत हैं। थोक, खुदरा, फुटकर, माल नग, चुंगी, दलाल, रोकड़, मांग, गद्दी, बही, हुंडी, दावा, नकद, हर्जाना, मंदड़िया, बिकवाली, खाता, लाभांश, निवेश, बीजक, बट्टा, चुकता जैसे अनगिनत शब्द इसी व्यावसायिक हिंदी के अंग हैं। व्यावसायिक हिंदी भाषा प्रयुक्ति का ऐसा विशिष्ट क्षेत्र है, जो वाणिज्य-व्यवसाय के साथ हिंदी के अन्त: संबंधों को उजागर करता है।

सन 1983 में आयोजित तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर हिंदी कम्प्यूटर का प्रदर्शन किया गया। हिंदी कम्प्यूटर ने बड़ी तेजी के साथ हिंदी के भावी तकनीकी स्वरूप को सुसंगठित करना आरंभ किया। क्योंकि इसमें अंग्रेज़ी के साथ-साथ नागरी अक्षरों का भी बड़ी खूबी के साथ संगठन किया गया है। हिंदी कम्प्यूटर के प्रादुर्भाव ने वैज्ञानिक, अनुसंधानकर्ताओं, मुद्रकों और अन्य तकनीकी विशेषज्ञों को हिंदी की विज्ञान-विषयक क्षमता के बारे में आश्वस्त करना प्रारम्भ किया है।

विश्व के फलक पर वेब दुनिया के प्रवेश से देवनागरी लिपि भी स्थापित हो चुकी है। कहना न होगा कि इस प्रकार हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि को विश्व के मानचित्र पर इंटरनेट तथा वेबसाइट के माध्यम से स्थापित किया गया।

कंप्यूटर, इंटरनेट और वेबसाइट में देवनागरी के प्रयोग से नई-नई संभावनाएं उभर रही हैं, कम्प्यूटर में देवनागरी का प्रवेश इलेक्ट्रॉनिक कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया, हैदराबाद ने कराया। जापान की एक कंपनी देवनागरी में तीव्रगति से मुद्रण की प्रणाली को विकसित कर चुकी है। भारत सरकार के राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय के अन्तर्गत) ने पुणे विश्वविद्यालय परिसर में स्थित सी-डैक की सहायता से 'लीला हिंदी प्रबोध' नाम का सॉफ्टवेयर तैयार करवाया है। डॉ. हेमंत दरबारी तथा डॉ. सूरजभान सिंह के परिश्रम से यह कार्यक्रम तैयार हुआ है। इस सॉफ्टवेयर की सहायता से देवनागरी वर्ण की लेखन विधि ग्राफिक्स के रूप में चित्रित होती है देवनागरी के वर्णों की रचना विधि और उसके उच्चारण के बारे में आवश्यक ज्ञान प्राप्त होता है। हिंदी के विकास में 'अनुवादक' सॉफ्टवेयर भी महत्वपूर्ण है। यह सॉफ्टवेयर अंग्रेज़ी के मूलपाठ को हिंदी में अनुवाद कर व्याकरण के मूलभूत नियमों का पालन करता है। माइक्रोसॉफ्ट का 'ऑफिस एक्स-पी' अधुनातन तकनीक लेकर आ गया जिसके फलस्वरूप हिंदी भी सम्मिलित हो गई है, कहा जा सकता है कि 'सूचना-प्रौद्योगिकी' की दिशा में 'राजभाषा-हिंदी के बढ़ते कदम' भविष्य में 'वामन के चरणों' की तरह प्रमाणित होंगे।

अब हम बात करते है विज्ञापनों की, भाषा के बिना विज्ञापन संभव नहीं क्योंकि हर प्रतीकात्मक संकेत को हर दर्शक नहीं समझ सकता। ऐसे में विज्ञापनों की हिंदी की सृजनात्मक संप्रेषणीयता और सक्षमता को अनदेखा नहीं कर सकते। कहना न होगा कि आज सब संचार माध्यमों के विस्तृत फलक पर आज हिंदी अपनी विजय-ध्वजा फहरा रही है। परिस्थितियों और परिवेशगत परिवर्तन के चलते हिंदी आज साहित्य के दायरे तक सीमित न रहकर अपने प्रयोजनमूलक रुप में मानव-जीवन के विस्तृत-विविध क्षेत्रों में पदार्पण कर जनमानस के होठों पर थिरकने लगी है और इसी के फलस्वरूप आज हिंदी का बहुमुखी और बहुआयामी अस्तित्व और वर्चस्व विपुल परिणाम में परिव्याप्त है। एक बात और यहां स्मरण रखने की है कि सहज भाषा 'जनता की, जनता द्वारा और जनता के लिए' होती है और आज बाज़ारवाद के दबाव के कारण 'हिंदी' उसी सहजता-स्वाभाविकता के सांचे में ढली है, लोकप्रिय हुई है। सक्रिय विज्ञापनों की हिंदी का यह लचीलापन उसकी जीवन्तता और सशक्तता का परिचायक है।

swati.shweta@gmail.com

देवनागरी के प्रवाह की राह

एम. एल. गुप्ता 'आदित्य'

लेखक मुंबई से संचालित 'वैश्विक हिंदी सम्मेलन' नामक पोर्टल के निदेशक हैं तथा हिंदी के चहुंमुखी विकास के लिए अपनी टीम के साथ सक्रिय हैं।

आज भाषाएँ कलम के दौर से निकलकर कंप्यूटर के दौर में प्रवेश कर चुकी हैं और इंटरनेट के पंख लगा कर ऊँची उड़ान भर रही हैं। भारत भी कंप्यूटर और इंटरनेट की दुनिया में एक महत्वपूर्ण स्थान बना चुका है। जब से मोबाइल पर इंटरनेट आया है तब से भारत का निर्धन और कम शिक्षित वर्ग भी सोशल मीडिया के मंच से इंटरनेट पर अपनी महत्वपूर्ण उपस्थित दर्ज करा रहा है। कंप्यूटर और इंटरनेट के क्षेत्र में इस तेज प्रगति के बावजूद भारतीय भाषाएँ इंटरनेट पर बुरी तरह पिछड़ रही हैं। अनजान से नाम वाली भाषाएं भी हिंदी से बहुत आगे हैं। कोई भी भारतीय भाषा इंटरनेट पर उपयोग की जाने वाली 20 शीर्षस्थ भाषाओं में सम्मिलित नहीं है। फिलहाल कोई संभावना न दिखने का एक कारण तो यह है ही कि अंग्रेजी माध्यम के चलते अपनी भाषा के शिक्षण के प्रति रुझान कम हुआ है और हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि में लिखने का अभ्यास नहीं है।

समस्या केवल इतने तक सीमित नहीं है। चिंता तो यह है कि ऐसे अनेक लोग जो हिंदी में लेखन, हिंदी के मीडिया, हिंदी सिनेमा, हिंदी शिक्षण या राजभाषा हिंदी के कार्यों से जुड़े हैं और हिंदी के माध्यम से अपना जीवनयापन भी कर रहे हैं वे भी कंप्यूटर या मोबाइल आदि उपकरणों पर हिंदी को रोमन लिपि में लिखते हैं।

सोशल मीडिया यानी, फेसबुक, ट्विटर, गूगल-समूह, फ़ेसबुक-समूह आदि पर सक्रिय रहने के कारण प्रतिदिन ऐसे अनेक लोगों से पाला पड़ता है जो हिंदी या भारतीय भाषाओं के कार्य से जुड़े हैं लेकिन फिर भी हिंदी को रोमन में लिखते हैं। उन्हें पता ही नहीं कि कंप्यूटर और मोबाइल आदि उपकरणों पर देवनागरी में काम कैसे किया जाए। इसी का परिणाम है कि जिस परिमाण में इंटरनेट पर हिंदी प्रयोग में आ रही है उसके मुकाबले वह बहुत कम दिखती है। इसी विवशता के चलते अब नई पीढ़ी ने हिंदी के लिए रोमन लिपि को अपनाना शुरू कर दिया है और चाहे-अनचाहे, जाने-अनजाने इसके कारण हिंदी और देवनागरी लिपि को खासा नुकसान हुआ है और हो रहा है। ऐसी ही स्थिति भारत की लगभग सभी भाषाओं की है।

कुछ वर्ष पूर्व तक निश्चय ही हमारे सामने कुछ कठिनाइयाँ थीं क्योंकि तब भारतीय भाषाओं के लिए यूनिकोड मंच और यूनिकोड फॉन्ट उपलब्ध नहीं थे। देसी कंपनियों ने अपनी ख़ुद की-एनकोडिंग कर आकृति, एपीएस, सुलिपि, जैसे सॉफ्टवेयर बनाए थे लेकिन उनकी पहुंच वहीं तक थी जहां वे सॉफ्टवेयर होते थे।

अब हिंदी और भारतीय भाषाओं में यूनिकोड को उपलब्ध हुए काफी समय हो चुका है। माइक्रोसोफ्ट, मैकिण्टोश, लिनेक्स आदि विश्व के लगभग सभी कंप्यूटर ऑपरेटिंग सिस्टम इसे स्वीकार कर चुके हैं। विश्व में सभी कंप्यूटरों पर हिंदी के फॉन्ट और इन्स्क्रिप्ट कुंजीपटल यानी कीबोर्ड की उपलब्धता है। 2008 के करीब भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने भी यूनिकोड फॉन्ट और इन्स्क्रिप्ट के प्रयोग को स्वीकार कर लिया था और आज कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य और टंकण-प्रशिक्षण के लिए यूनिकोड फॉन्ट्स और इन्स्क्रिप्ट कुंजीपटल का प्रयोग अधिकृत है। अनेक स्मार्ट मोबाइल फोन पर भी इन्स्क्रिप्ट कुंजीपटल उपलब्ध है। इसके चलते अब कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य के लिए किसी प्रकार का कोई सॉफ्टवेयर खरीदने की आवश्यकता भी नहीं रह गई है।

लेकिन इतना सब होने पर भी हम हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए इन तमाम सुविधाओं का उपयोग नहीं कर सके। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि हमारे देश में स्कूल-कॉलेजों में कंप्यूटर पर काम करना केवल रोमन लिपि में ही सिखाया जाता है। पूरे देश में शायद ही किसी स्कूल-कॉलेज में किसी भारतीय भाषा की लिपि में कंप्यूटर पर काम करना सिखाया जाता हो। कंप्यूटर, मोबाइल आदि पर हर समय लगे रहनेवाले ज्यादातर युवाओं को यह तक नहीं पता होता कि उनके कंप्यूटर, मोबाइल आदि पर उनकी भाषा पहले से उपलब्ध है और आसानी से अपनी भाषा में काम संभव है। जब कहीं कोई सिखाने, बताने या अभ्यास करवाने की व्यवस्था ही नहीं तो ऐसा होना स्वाभाविक है।

चूँकि यह वैज्ञानिक इन्स्क्रिप्ट कुंजीपटल सभी भारतीय भाषाओं के लिए है इसलिए यदि किसी राज्य में इन्स्क्रिप्ट कुंजीपटल पर कार्य का प्रशिक्षण किसी अन्य भारतीय भाषा में भी दिया जाता है तो भी हिंदी जानने वाला विद्यार्थी अपने राज्य की भाषा के साथ-साथ कंप्यूटर पर हिंदी में भी काम कर सकेगा। भारत सरकार के अनुसार तो मात्र 18-19 घंटे के अभ्यास से अंग्रेजी टंकण जानने वाला व्यक्ति इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल के माध्यम से हिंदी टंकण में पारंगत हो सकता है। स्कूल-कॉलेज में यदि कुछ दिनों तक घंटा भर इस वैज्ञानिक इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल का प्रशिक्षण दिया जाए और इसे स्कूल स्तर पर आईटी शिक्षा के पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए तो देश के बच्चे देश की किसी भी भाषा में कंप्यूटर पर कार्य करने में सक्षम होंगे, चाहे फिर हिंदी हो, या किसी हिंदीतर राज्य की भाषा या राजभाषा।

हिंदी व भारतीय भाषाओं के समर्थक काफी समय से इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाए जाने की माँग करते रहे हैं। अनेक हिंदी-सेवियों द्वारा भी हिंदी भाषी राज्यों के मुख्य मंत्रियों तथा संघ सरकार के सामने यह माँग रखी गई है। प्रौद्योगिकीविद् डॉ. ओम विकास जिन्होंने हिंदी व भारतीय भाषाओं के लिए कंप्यूटर पर विकास के लिए काफी कार्य किया है उन्होंने बताया कि जब वे केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (CBSE) की आईटी शिक्षा पाठ्यक्रम समिति के अध्यक्ष थे तो समिति ने स्कूलों में इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल का प्रशिक्षण आईटी शिक्षा के पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाने की सिफारिश की थी, लेकिन कुछ हुआ नहीं। दुःखी स्वर में वे कहते हैं, 'इस समस्या का समाधान सम्मेलनों के प्रस्तावों से नहीं निकलेगा। पिछले दशक में हिन्दी के कई मंचों पर आवाज़ उठाई है, लेख भी लिखे। हिन्दी के सभी मठ सम्मेलन समापन के साथ समस्या को भूल जाते हैं।'

हिंदी और भारतीय भाषाओं के प्रवाह को जिस छोटे से पेंच ने रोक कर रखा है उसे दूर करने की जरूरत सबसे अधिक है। यदि '10वें विश्व हिंदी सम्मेलन' में भारत सरकार तथा सभी हिंदी-भाषी राज्यों द्वारा सभी (सरकारी व गैरसरकारी) स्कूलों में माध्यमिक स्तर पर हिंदी में कार्य के लिए कंप्यूटर आदि पर इन्स्क्रिप्ट की-बोर्ड के प्रशिक्षण को पाठ्यक्रम में (परीक्षा सहित) शामिल करने का निर्णय लिया जाता है तो इससे राज्य के लोगों की ही नहीं देश के हिंदी व भारतीय-भाषा प्रेमियों की आकांक्षा पूरी होगी और हिंदी व भारतीय भाषाओं के बंद रास्ते खुले जाएंगे। यदि ऐसा होता है तो '10वां विश्व हिंदी सम्मेलन' इस ऐतिहासिक पहल के लिए याद किया जाएगा।

अब जबकि भारत ई-गवर्नेंस के रास्ते पर चलकर 'डिजिटल इंडिया' के माध्यम से तमाम सूचनाओं-सुविधाओं को ऑनलाइन करने की दिशा पकड़ कर तेजी से आगे बढ़ने के लिए कृत संकल्प है। ऐसे में देश की अधिकांश आबादी को प्रगति का सहभागी बनाने के लिए इनमें हिंदी व भारतीय भाषाओं के समावेश के साथ-साथ इनके प्रयोग के लिए देश की जनता को देश की भाषा व लिपि में कार्य हेतु इन्स्क्रिप्ट कुंजी पटल का प्रशिक्षण देना भी आवश्यक है।

vaishwikhindisammelan@gmail.com

परीकथाएं भी हों और विज्ञानकथाएं भी

डॉ. श्याम सिंह शशि

लेखक चार सौ से अधिक पुस्तकों के रचयिता तथा भारत सरकार में पूर्व महानिदेशक हैं। वे अंतरराष्ट्रीय रोमा सांस्कृतिक विश्वविद्यालय, बेलग्रेड, सर्बिया के कुलाधिपति हैं। वे भारत के राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री से अलंकृत हैं तथा उन्हें देश-विदेश में अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।)

कभी हरलोक की `चाइल्ड साइकोलॉजी' पुस्तक इस विषय की विश्व-विख्यात कृति मानी जाती थी। बाल मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि स्वस्थ बाल-साहित्य पढ़ने से बच्चों का विकास अधिक तीव्रता से होता है। पढ़ना केवल भौतिक अनुभव ही नहीं बल्कि उसके द्वारा भावनात्मक अनुभव की उपलब्धि भी होती है। बाल-साहित्य बच्चों की रुचि, हास्य, उत्सुकता तथा महत्वाकांक्षा को परिष्कृत रूप प्रदान करता है। उन्हें देश-प्रेम, विश्व-प्रेम, एकता, शौर्य, त्याग, स्वाभिमान तथा, मानव-मूल्यों के प्रति प्रेरित करता है। श्रेष्ठ बाल-साहित्य निश्चय ही बालक के सर्वांगीण विकास में सहायक सिद्ध होता है।

भारतीय बाल-साहित्य में विष्णु शर्मा द्वारा विरचित पंचतंत्र की कहानियां तथा जातक कथाएं हैमिंग्वे की तरह हिंदी के अतिरिक्त चीनी, जापानी, रूसी आदि अनेक भाषाओं में उपलब्ध हैं। हैरी पॉटर के जादुई रहस्य रोमांच की अपेक्षा भारतीय लेखकों का साहित्य किसी भी रूप में कम नहीं रहा।

आजकल विश्व बाल-साहित्य में हैरी पॉटर की चर्चा जोरों पर है। भारत तथा विश्व की चौंसठ भाषाओं में उसके अनुवाद छप चुके हैं। करोड़ों बाल पाठकों ने उन्हें पढ़ा है।

हैरी पॉटर श्रृंखला का सातवां एवं अंतिम बाल उपन्यास 'हैरी पॉटर एंड द डेथली हैलोज' भी छप गया है। वेबसाइट अमेजन और बार्नेस एंड नोबल की बिक्री के बारे में जो आंकड़े दिए हैं, वे भारतीय प्रकाशकों के लिए चौंकाने वाले हो सकते हैं। इस श्रृंखला के छठवें उपन्यास `हैरी पॉटर—द हॉफ ब्लड प्रिंस' की बिक्री के पहले दिन जितना व्यवसाय किया गया था, उसके मुकाबले अंतिम उपन्यास की बिक्री दो सौ फीसदी अधिक दर्ज की गई तथा दुनिया-भर में उसकी अब तक 32 करोड़ से अधिक प्रतियां बिक चुकी हैं। उपन्यास की लेखिका जे. के. राउलिंग को मनोरंजन-जगत की सबसे अमीर महिला घोषित किया गया। वह अपने लेखन द्वारा अरबपति बनने वाली विश्व साहित्य की पहली रचनाकार है।

उक्त पुस्तक की कथावस्तु, लेखन, संपादन, प्रकाशन, तथा वितरण का मूल्यांकन किया जाए तो पता चलेगा कि लेखिका ने जादुई फैंटेसी तथा रहस्य रोमांच के ताने-बाने में पिरोकर बालमन को चकराया है। साथ ही मीडिया हाईटैक व अन्य व्यय-साध्य प्रचार-माध्यमों द्वारा बिजनेस एजेंसियों ने उसे प्रमोट किया है, दुनिया-भर में विक्रय किया है। वस्तुतः विश्व के अनेक उन्नत देशों में लिटरेरी एजेंट यह काम करते हैं जो व्यापारीकरण की पद्धति अपनाकर फल-फूल रहे हैं। अमेरिका हो या इंग्लैंड या कोई अन्य उन्नत देश, वहां साहित्य का लेखक अपनी पुस्तक लिखकर प्रकाशक को सौंप देता है, जिसके बदले उसे अच्छी अग्रिम राशि भी मिलती है। भारत अथवा एशियाई देशों के प्रकाशकों की तरह उसे लॉलीपोप की दक्षिणा देकर टा-टा नहीं किया जाता! वहां इच्छित पुस्तकों को अंतरराष्ट्रीय बाजार में उतरने के लिए व्यावसायिक स्तर पर मुद्रित शब्द, इंटरनेट व दृश्य-श्रव्य माध्यमों द्धारा मार्केटिंग की आधुनिक तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। यही कारण है कि वहां के लेखक को एशियाई लेखकों की तरह सरकारी अथवा लाला की नौकरी नही करनी पड़ती। वह केवल लेखक होता है- लेखक! (संभवतः हिंदी के प्रवासी लेखकों के लिए यह कथन अतिशयोक्ति-पूर्ण लगे।)

इसी संदर्भ में एक प्रश्न बाल शिक्षा शास्त्रियों के समक्ष उपस्थित है और वह यह, कि क्या किसी रचना का आकलन उसकी बिक्री के आधार पर किया जाना चाहिए अथवा उसके सामाजिक सरोकार से। यदि मनोरंजन को ही साहित्य का प्रयोजन मान लिया जाए तो फिर साहित्य में निहित अर्थ स+हित 'शब्दार्थौ सहितो काव्यम्' को छोड़कर किस्सागोई, गुलशन नंदा सीरीज अथवा फुटपाथी ट्रेड प्रकाशनों की तरह मार्केटिंग की उपलब्धि बनना पड़ेगा। इसे हैरी पॉटर प्रमोशन पद्धति का लघु रूप भी कह सकते हैं। हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के बाल-साहित्य को आज भी प्रायः दोयम दर्जे का साहित्य माना जाता है। इसमें दोष लेखक-प्रकाशक दोनों का है। हमारे देश का लेखक, अपवाद को छोड़कर अपनी रचना के अलावा किसी और को पढ़ना ही नहीं चाहता। भारतीय भाषाओं के रचनाकार आपस में ही एक-दूसरे की भाषाओं का साहित्य नहीं पढ़ते।

विश्व साहित्य में भी केवल अंग्रेज़ी की पुस्तकें ही पढ़कर अपने को एवरेस्ट मान लिया जाता है। रूसी, चीनी, जापानी, फ्रेंच, स्पेनिश तथा अन्य भाषाओं के साहित्य के अंग्रेज़ी अनुवाद पढ़ने की भी किसी को फुर्सत नहीं। इन भाषाओं की मौलिक कृतियां पढ़ने वाले लेख़क उंगलियों पर मिलेंगे।

हिंदी बाल साहित्य के प्रारंभिक काल में अमीर खुसरो, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, बालमुकुंद गुप्त, लोचन प्रसाद पांडेय, लल्ली प्रसाद पांडेय, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, देवीदत शुक्ल, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, सरस्वती कुमार 'दीपक', निरंकार देव सेवक, आरसी प्रसाद सिंह, विष्णु प्रभाकर, जयप्रकाश भारती, डॉ. राष्ट्र बंधु, राधेश्याम 'प्रगल्भ', डॉ. हरि कृष्ण देवसरे आदि के बाद बाल साहित्य के लेखकों की एक लंबी कतार है।

हम यहां हिंदी के सर्वश्रेष्ठ बाल साहित्य-लेखक पं. सोहनलाल द्विवेदी की एक बाल रचना का उल्लेख करना चाहेंगे- 'मीठे रसगुल्ले

अनमोल/सबसे मीठे-मीठे बोल।' उक्त पक्तियों ने मुझ जैसे अदना बाल साहित्य के लेखक से ये पक्तियां लिखवा ली थीं, जिनकी उन्होंने बहुत सराहना की थी। पंक्तियां हैं – 'एक टमाटर लाल-लाल/ जैसे मेरा गाल लाल/ तुम भी खाओ मैं भी खाऊं/ हो जाएं सब लाल-लाल'। सरस्वती कुमार 'दीपक' की ये पंक्तियां बच्चों को कितनी रोचक लगती हैं, 'मेंढक मामा खेल खेलते/ उछल-उछल कर पानी में/ कभी किसी को धक्का देते/ रहते जब शैतानी में।' डॉ. हरिवंश राय बच्चन बच्चों के लिए एक चिड़िया देते हैं— 'नीले आसमान से उतरी/नीली एक निराली चिड़िया/ उड़ती गाने वाली चिड़िया।'

इन पंक्तियों के लेखक को रोमा, यायावर या वनवासी समाज पर बाल साहित्य लिखने का सुयोग मिला है, जो संभवतः मेरे नृवैज्ञानिक अध्ययन के कारण हिंदी में अधिक प्रामाणिक तथा पहला विशिष्ट कार्य माना जाता है।

आदिवासी लोक-कथाएं विश्व के बाल-साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। भारतीय भाषाओं में बांग्ला लेखक सबसे अधिक समृद्ध है। कारण, बाल साहित्य में लिखे बग़ैर बांग्ला लेखक साहित्य में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। विश्व कवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने बच्चों के लिए भी अपना लेखकीय धर्म समझा। हां, हिंदी का दुर्भाग्य है कि यहां बड़े लेखक बाल-साहित्य को प्रायः सम-दृष्टि से नहीं देखते या उसकी चर्चा नहीं करते। फलतः आज हिंदी साहित्य के इतिहासों में बाल-साहित्य नदारद है।

हम बाल-साहित्य के लेखकों से कहना चाहेंगे कि वे इक्कीसवीं सदी के बालक को ध्यान में रखते हुए उत्तर कंप्यूटरी युग तक की कल्पना करें। हिंदी बाल-साहित्य विश्व स्तर पर समसामयिक रूप ले। हां, उसे रामायण, महाभारत तथा भारत के स्वर्णिम इतिहास का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है। हिंदी बाल-साहित्य के लेखकों में प्रायः बहस होती रहती है कि उन्हें परीकथाएं लिखनी चाहिए या विज्ञान कथाएं? हमारा मानना है कि बचपन को कल्पना-लोक में विचरण के लिए परीकथाएं भी चाहिए और विज्ञान कथाएं भी। दोनों एक-दूसरे की पूरक बनेंगी तो बाल-मन का विकास संतुलित ढंग से होगा।

वस्तुतः बाल-साहित्य का लेखक बच्चों के लिए गुलाबी गीत लिखता है, चिड़ियों की मनोरम राइम गाता है। वह बंदर, भालू, बिल्ली, चूहे से लेकर डायनासोर तक अपनी कलम चलाता है। प्राकृतिक प्रतीकों-बिंबों को बाल-सुलभ विषयों के साथ अपनी रचना-धर्मिता से जोड़ता है। बाल साहित्य के लेखक का उत्तरदायित्व इसलिए भी और अधिक बढ़ जाता है कि वह मासूम ज़िंदगी का चितेरा होता है। वह अपनी रचनाओं से बालमन को नैसर्गिक आनंद प्रदान करता है। बाल-साहित्य का श्रेष्ठ लेखक मूल्य-परक शिक्षा के लिए एक विशिष्ट शैली अपनाता है। वह शब्दों का जादूगर तो है पर अंध-विश्वास का सौदागर नहीं।

drss.shashi@gmail.com

हिंदी का सम्मान बढ़ाएंगे

नरेश शांडिल्य

सम्मान बढ़ाएंगे, भारत देश में हम
हिंदी का सम्मान बढ़ाएंगे,
पहचान बनाएंगे, हिंदी से अपनी हम
दुनिया में पहचान बनाएंगे।

जर्मन हो, जापान, चीन या रूस कि तुर्किस्तान,
सबने अपनी भाषा में ही ऊंची भरी उड़ान।
हम भी अलख जगाएंगे, घर-घर अलख जगाएंगे,
भारत देश में हम, हिंदी का सम्मान बढ़ाएंगे।

अंग्रेज़ी से बैर नहीं है, अंग्रेज़ी भी सीखें,
लेकिन हिन्दुस्तानी हैं तो, हिन्दुस्तानी दीखें।
खुद को क्यों बिसराएंगे, ख़ुद्दारी अपनाएंगे,
भारत देश में हम, हिंदी का सम्मान बढ़ाएंगे।

'पटरानी' थी जो इस घर की बन बैठी वो 'आया',
हटा ही देंगे मां के सिर से अब ये काली छाया।
मां को चंवर ढुराएंगे, आसन पर बिठलाएंगे,
भारत देश में हम, हिंदी का सम्मान बढ़ाएंगे।

हिंदी बोल-बोल कर हमसे वोट मांगता नेता,
बाद में लेकिन वो अंग्रेज़ी के ही अण्डे सेता।
इससे पिंड छुड़ाएंगे, इसको सबक सिखाएंगे,
भारत देश में हम, हिंदी का सम्मान बढ़ाएंगे।

भाषा अपना हक़ है, इसको हर क़ीमत पर लेंगे,
कट जाएंगे, मर जाएंगे, पीछे नहीं हटेंगे।
क्रांति का बिगुल बजाएंगे, जन-जन का गीत गुंजाएंगे,
भारत देश में हम, हिंदी का सम्मान बढ़ाएंगे।

nareshhindi@yahoo.com

बच्चों के लिए लिखना परकाया प्रवेश

ओम प्रकाश कश्यप

जिला बुलंदशहर के एक गांव में जन्मे लेखक दर्शनशास्त्र में परास्नातक हैं। विगत तीन दशकों से वे उपन्यास, कहानी, लघुकथा, व्यंग्य, लेख, विज्ञान, नाटक, कविता, बालसाहित्य, जीवनी आदि विधाओं में नियमित लेखन-प्रकाशन कर रहे हैं। उन्हें बाल एवं किशोर साहित्य के लिए अनेक सम्मानों से नवाज़ा गया है।

'तुम उन्हें अपना प्यार दे सकते हो, लेकिन विचार नहीं। क्योंकि उनके पास अपने विचार होते हैं। तुम उनका शरीर बंद कर सकते हो, लेकिन उनकी आत्मा नहीं, क्योंकि उनकी आत्मा आने वाले कल में निवास करती है। उसे तुम नहीं देख सकते हो, सपनों में भी नहीं देख सकते हो, तुम उनकी तरह बनने का प्रयत्न कर सकते हो। लेकिन उन्हें अपने जैसा बनाने की इच्छा मत रखना। क्योंकि जीवन पीछे की ओर नहीं जाता और न ही बीते हुए कल के साथ रुकता ही है।'

—खलील जिब्रान

बाल मनोविज्ञान को उजागर करती, बच्चों में विश्वास दर्शाने वाली खलील जिब्रान की यह उक्ति कई शताब्दियों पहले कही कही गई थी। यह बात आज भी उतनी ही सच एवं महत्वपूर्ण है जितनी कि उस ज़माने में थी। मामूली–सी लगने वाली यह बात बालकों के मनोविज्ञान को पूरी तरह स्पष्ट करती है। यह उन साहित्यकारों पर एक असरकारक टिप्पणी है जो बच्चों को 'निरा बच्चा' मानते हैं तथा उन्हें जादू–टोने या परीकथाओं जैसी अतार्किक रचनाओं द्वारा बहलाने का प्रयास करते हैं।

ध्यातव्य है कि अन्य समाजों की तरह भारत में भी साहित्य श्रुति परंपरा से आया है। जिसमें बच्चों तथा बड़ों के साहित्य के बीच विशेष विभाजन नहीं था। सबसे पहले उसका स्वरूप लोकसाहित्य का था। वही उस दौर में लोगों के मनोरंजन का साधन बना। लोकगीतों में जो सरस और सहज थे उन्हें लोरियों के रूप में बालमनोरंजन के लिए अपना लिया गया। कथासाहित्य के क्षेत्र में राजा–महाराजाओं के जीवनचरित्र और पौराणिक विषयों को ही लंबे समय तक बालसाहित्य का पर्याय माना जाता रहा। आगे के वर्षों में भी यदि पंचतंत्र और हितोपदेश को छोड़ दिया जाए तो ऐसी कोई और कृति नहीं है जिसे विशुद्ध बालसाहित्य की कोटि में रखा जा सके। इनमें हितोपदेश तो पंचतंत्र की कहानियों का पुनर्प्रस्तुतिकरण ही है। हालांकि पंचतंत्र और हितोपदेश की कथाओं के आधार पर बालमनोविज्ञान के अनुरूप नई–नई कहानियां सालों–साल गढ़ी जाती रही हैं।

आज भी न केवल हिंदी बल्कि दुनिया की अन्य भाषाओं के बालसाहित्य पर पंचतंत्र का

असर देखा जा सकता है। मौलिक एवं बदलते समय की ज़रूरतों के आधार पर बालसाहित्य की रचना का कार्य हिंदी में अर्से तक नहीं हो सका। कारण साफ है। अशिक्षित तथा असमान आर्थिक वितरण वाले समाजों में जहां शीर्षस्थ वर्ग संसाधनों पर कुंडली मारे बैठा, भोग और लिप्साओं में आकंठ डूबा हो, समाज का बहुलांश घोर अभावग्रस्तता का जीवन जीने को विवश होता है। जिससे वहां कला एवं साहित्य की धाराएं पर्याप्त रूप में विकसित नहीं हो पातीं। न ही उनके सरोकार पूरी तरह स्पष्ट हो पाते हैं। भारत में जहां का समाज करीब–करीब ऐसी ही स्थितियों का शिकार था, तार्किक सोच के अभाव का फायदा यथास्थिति की पक्षधर शक्तियों ने खुलकर उठाया और वे मौलिक बालसाहित्य के विकास में अवरोधक का कार्य करती रहीं। परिणामतः हिंदी बालसाहित्य में भूत–प्रेत, भाग्यवाद, उपदेशात्मक कहानियों, राजा–रानी, जादू–टोने, जैसे विषयों की भरमार रही या फिर लोककथाओं की भोंडी प्रस्तुति को ही बालसाहित्य के नाम पर परोसा जाता रहा। दरअसल, पंचतंत्र के समय से ही भारतीय बाल-साहित्यकार इस मानसिकता के शिकार रहे हैं कि बच्चे नादान–नासमझ हैं, उन्हें समझाने–सुधारने की ज़िम्मेदारी सिर्फ उन्हीं पर है।

वस्तुतः पंचतंत्र अपने समय से बहुत–बहुत आगे की रचना थी। जिसका मूल्यांकन शताब्दियों के बाद किया जाना था। पंचतंत्रकार ने संभवतः अनजाने ही अपने मौलिक और सर्जनात्मक सोच से एक ऐसी कृति को जन्म दिया था जिसकी टक्कर की बालसाहित्य विषयक कृति दूसरी नहीं मिलती। इससे पहले साहित्यिक रचनाएं प्रायः देवताओं या राजा– महाराजाओं को केंद्र में रखकर लिखी जाती थीं अथवा उनके पात्र समाज के उच्चवर्गीय और जाने–पहचाने चरित्र होते थे। पचतंत्र के अनूठेपन के कारण ही देश–विदेश की सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ और इसके लेखक को जगत–ख्याति मिली।

कालांतर में अलिफ–लैला, गुलीवर की रोमांचक कहानियां, ग्रिम बंधुओं की लोककथाओं और हेंस एंडरसन की परीकथाओं से भारतीय पाठकों का परिचय हुआ। शिशु, बालसखा, वानर जैसी कई स्तरीय बालपत्रिकाओं के अस्तित्व में आने से भारत में बालमनोविज्ञान के अनुरूप, बालसाहित्य लेखन को गति प्राप्त हुई। हिंदी बालकथा लेखन में मौलिकता की शुरुआत करने का श्रेय भी कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद को जाता है। प्रेमचंद के युग तक स्वतंत्र बालसाहित्य की संकल्पना पनपी ही नहीं थी, तो भी बालमनोविज्ञान को केंद्र में रखकर उन्होंने जिन थोड़ी–सी कहानियों की रचना की है उनमें गुल्ली–डंडा, बड़े भाईसाहब, ईदगाह, आत्माराम, पंचपरमेश्वर, पुरस्कार जैसी रचनाएं आज भी हिंदी बालसाहित्य की बेजोड़ उपलब्धियां हैं।

बालमनोविज्ञान की परख, कथानक की नवीनता और उसकी सहज प्रस्तुति द्वारा प्रेमचंद ने भारतीय बालसाहित्य को न केवल नई दिशा दी, बल्कि उसे समसामयिक जीवनमूल्यों से समृद्ध भी किया। पाठकों ने भी इन कहानियों को हाथों-हाथ लिया। हालांकि प्रेमचंद के समय और उनके बाद भी साहित्यकारों का एक बड़ा वर्ग लगातार ऐतिहासिक एवं पौराणिक कहानियों के प्रस्तुतीकरण की हिमायत करता रहा। जहां तक हिंदी बालसाहित्य को स्वतंत्र पहचान मिलने का सवाल है उसकी शुरुआत आज़ादी के बाद और मुख्यतः छठे दशक से मानी जा सकती है। इस बीच हिंदी बालसाहित्य ने लंबी यात्रा तय की है। प्रकाशन संबंधी सुविधाओं, शिक्षा के प्रसार, वैज्ञानिक चेतना आदि के चलते आज बड़ी मात्रा में बालसाहित्य लिखा जा रहा है। इस बीच अनेक उत्कृष्ट रचनाएं बालसाहित्य के नाम पर आई हैं, जिन पर हम गर्व कर सकते हैं। बालसाहित्य के प्रति परंपरागत सोच में भी बदलाव आया है, किंतु यह कहना आज भी बहुत मुश्किल है कि हिंदी बालसाहित्य खुद को अतीत के मोह से बाहर लाने में सफल रहा है।

बच्चों के लिए लिखना आम तौर पर परकाया प्रवेश जैसा चुनौतीपूर्ण होता है। उसमें न केवल बालमनोविज्ञान को समझने जैसी चुनौती होती है बल्कि अपने से अधिक जिज्ञासु और ऊर्जावान मस्तिष्क की अपेक्षाओं पर खरा उतरना होता है। ऐसा वही साहित्यकार कर पाते हैं जिनमें नया सोचने और उसको रोचक ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता होती है। जो अपने पूर्वाग्रहों को पीछे छोड़कर सृजनात्मकता बनाए रखते हैं। आज आवश्यकता मौलिक साहित्य की परंपरा को आगे बढ़ाने की है। यह काम परीकथाओं के माध्यम से भी हो सकता है, बशर्ते उन्हें आधुनिक संदर्भों से जोड़े रखा जाए। सृजनात्मक मेधा परीकथा, विज्ञान या अन्य किसी भी माध्यम का उपयोग अपनी मौलिक अभिव्यक्ति के लिए सफलता पूर्वक कर सकती है, जिनमें रचनात्मकता का अभाव है वे तो कम्प्यूटर का उपयोग भी भविष्य जानने और जन्मपत्री बनाने के लिए करेंगे।

हिंदी ही क्यों दुनिया–भर में लिखे जा रहे बालसाहित्य का अधिकांश हिस्सा लोककथाओं अथवा उनकी पुनर्प्रस्तुति से निसृत होता है। लोकसाहित्य किसी भी समाज की महत्वपूर्ण धरोहर होता है। लोकजीवन की विशेषताओं को अगली पीढ़ी तक ले जाने और उनके बीच सातत्य बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि बालक अपने समाज की परंपराओं तथा ज्ञान की विरासत से परिचित हों ताकि सामाजिक अनुभवों का लाभ भावी पीढ़ियों को मिल सके। लोककथाएं पीढियों के बीच ज्ञान और अनुभव के संचरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। अतः प्रारंभ से ही वे बालसाहित्य का ज़रूरी हिस्सा रही हैं, किंतु लोककथाओं के आधार पर बच्चों के लिए सृजन करते समय आवश्यक है कि विषयों– कथानकों का चयन बच्चों के आय-वर्ग एवं रुचि के अनुसार ही किया जाए।

opkaashyap@gmail.com

बाल-साहित्य के चार चांद

डॉ. दिविक रमेश

लेखक वरिष्ठ कवि, बाल-साहित्यकार, अनुवादक एवं चिन्तक हैं। साहित्यिक एवं शैक्षिक उद्देश्यों से वे अनेक देशों, जैसे जापान, कोरिया, बैंकाक, हांगकांग, सिंगापुर, इंग्लैंड, अमेरिका, रूस, जर्मनी, पोर्ट ऑफ स्पेन आदि की यात्राएं कर चुके हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के मोतीलाल नेहरू महाविद्यालय के प्राचार्य पद से सेवामुक्त होकर वे स्वतंत्र लेखन कर रहे हैं।

पिछले पच्चीस-तीस वर्षों के हिंदी के बाल-साहित्य पर निगाह डालें तो पता चलेगा कि उत्कृष्टता, विविधता और प्रयोग आदि की दृष्टि से वह न केवल उत्कृष्ट बाल साहित्य से सम्पन्न अन्य भारतीय भाषाओं के बाल-साहित्य से टक्कर लेने में सक्षम है बल्कि अनेक विदेशी भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य से भी होड़ ले रहा है।

ऐसा नहीं है कि जिस अवधि की बात की जा रही है, उससे पहले का सारा बाल-साहित्य औसत कोटि का है। स्वतंत्रतापूर्व के बाल-साहित्य में भी (भले ही वह काफी कम हो) बहुत उस्तादाना रचनाएं मिलती हैं जो न केवल आज के बच्चे को भी लुभा सकती हैं बल्कि आज के बाल-साहित्यकार को भी बाल-साहित्य की बुनावट, उसकी भाषा, लय आदि की प्रेरणात्मक समझ दे सकती हैं। एक-दो उदाहरण देना चाहूंगा। श्रीधर पाठक की कविता 'देल छे आए' की कुछ पंक्तियां हैं—

बाबा आज देल छे आए,
चिज्जी-पिज्जी कुछ ना लाए!
बाबा, क्यों नहीं चिज्जी लाए,
इतनी देली छे क्यों आए?

विद्याभूषण विभू ने 'झूम हाथी, झूम हाथी' 'तुन तुन तुन', 'हिल-मिल भाई', 'आंधी', 'खेल रेल का' आदि अनेक ऐसी बाल कविताएं लिखी हैं जिनमें भाषा का सहज खेल देखते ही बनता है। 'आंधी' की यह तान देखिए—

सर-सर, सर-सर करती आई,
भर-भर, भर-भर करती आई,
हर-हर, हर-हर करती आई,
मर-मर, मर-मर करती आई,
आंधी-आंधी, आंधी-आंधी!

आज का बाल-साहित्यकार कमोबेश बालक का दोस्त बनकर उसके सुख-दुख का, उसकी उत्सुकताओं और कठिनाइयों का, यानी उसके सब कुछ का भागीदार होता है। हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि विविधताओं से भरे भारत के संदर्भ में यह बालक बनना क्या है। यहां आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक, आयु आदि कारणों से बालक का भी विविधताभरा स्वरूप है।

महानगरीय बालक का स्वरूप वही नहीं है जो कस्बाई या ग्रामीण या जंगलों में रहने वाले बच्चे का है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बच्चे की मानसिकता वही नहीं है जो गरीबी में पल रहे बच्चे की है।

पिछले कुछ वर्षों में हिंदी के बाल-साहित्य में जहां भाव और भावबोध की दृष्टि से बालक के नए-नए रूप उभर कर आए हैं, वहीं भाषा-शैली में भी नए-नए अन्दाज़ और प्रयोग सम्मिलित हुए हैं। आज के बाल-साहित्य ने ऐसे बालक को भी आवाज़ दी है जो बहुत ही गरीबी में पल रहा है और अपने घर में अपने निखट्टू बाप से अपनी पोंछा-झाड़ू करके घर चलाने वाली मां को पिटते हुए भी देखता है। ऐसी कविताओं की शब्दावली भी स्पष्ट है, पहले की परिचित शब्दावली से कुछ न कुछ हट कर होती है। देखिए—

नहीं रहा मां इतना छोटा
समझ सकूं ना घर का टोटा।
तुम खटती हो घर घर जाकर
पोंछा, झाड़ू, बर्तन कर कर।
पर मैं समझ नहीं पाता हूं
बापू काम नहीं करते क्यों।
बात-बात पर झगड़ा करते
दारू पी लेटे रहते क्यों।

सच कहता हूं मां नहीं मैं
ऐसा बापू कभी बनूंगा।
जैसे मेरी टीचर करती
मैं तो सबसे प्यार करूंगा।

आज के बाल-साहित्य में हम आसानी से भाषा के कई रूप देख सकते हैं। लोकभाषाओं के शब्द, उर्दू के शब्द, अंग्रेज़ी के शब्द, इत्यादि आज के बाल-साहित्य में दुर्लभ नहीं हैं। लहजे की दृष्टि से भी आज का हिंदी बालसाहित्य बहुत विविधता सम्पन्न है। व्यंग्यात्मक, हंसीप्रधान, छेड़छाड़ वाला, गम्भीर, ध्वन्यात्मक, मुहावरेदार, बिम्बात्मक, संवादात्मक आदि अनेक प्रकार का भाषा-लहजा आज के बालसाहित्य में चार-चांद लगाए हुए है। बालस्वरूप राही की एक कविता है 'दुनिया नई-पुरानी'। इस कविता में आइसक्रीम, चूइंगम, टोस्ट, बिस्कुट, टेनिस, क्रिकेट, टेलीफोन, टेलीविज़न जैसे शब्दों का धड़ल्ले से प्रयोग किया गया है। अन्य कवियों में भी ऐसे शब्दों का परहेज नहीं मिलता। आज के भाव-बोध से सजी बालस्वरूप राही की ही एक अन्य कविता है 'कार' जो बालक के द्वारा अपने पापा का मज़ाक उड़ाने की भाषा-शैली में रची गई है, जिसमें पर्यावरण की

समस्या बिना किसी शोर-शराबे के सहज रूप से, चुपके से आ समाई है—

पापाजी की कार बड़ी है,
नन्हीं-मुन्नी मेरी कार।
टांय टांय फिस उनकी गाड़ी,
मेरी कार धमाकेदार।

उनकी कार धुआं फैलाती
एक रोज़ होगा चालान,
मेरी कार साफ़-सुथरी है,
सब करते इसका गुणगान।

बालक बाल-साहित्य को अकेले बैठकर पढ़ सकता है और उसे समझने के लिए अध्यापक या माता-पिता की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती।' हरिकृष्ण तेलंग की भी मान्यता है कि 'साहित्य के लिए सरल भाषा में सहज ढंग से कोई भी बात कही जानी चाहिए। बच्चों की भाषा में लय का होना ज़रूरी है। एक बात और बच्चों की कविता और कहानी का केन्द्र बच्चों की गतिविधियां होना चाहिए। कठिन शब्दों का प्रयोग न हो, मृदुलता हो, बच्चों की भावनाओं का चित्रण सावधानी पूर्वक हो।

भाषा की दृष्टि से भी बाल-साहित्यकार का उद्देश्य बालक को बालसाहित्य का सहज भागीदार बनाना अधिक होता है, बजाय उसे ज्ञानवान बनाने के। शब्दों का उपयोग खपता हुआ होना चाहिए। अंग्रेज़ी के जो शब्द प्रचलित होकर हमारे रोजमर्रा के उपयोग का हिस्सा बन चुके हैं अर्थात हिंदी के द्वारा गोद लिए जा चुके हैं उनके उपयोग को (खिचड़ी भाषा के नाम पर) जबरन हटाकर कुछ गढ़े हुए अप्रचलित तत्सम आदि शब्दों का लादना कहां तक उचित होगा इस पर गम्भीरता के साथ विचार करने की ज़रूरत है।

साहित्य में, असल में वैज्ञानिक दृष्टि की भूमिका अधिक महत्व की होती है। इसीलिए आज के बाल-साहित्य में कल्पना भी ऐसी शैली में उपस्थित होती है जो बालक को चमत्कृत करते हुए उसकी विश्वसनीयता अथवा उसके तर्क के दायरे में आती हो। मेरी अपनी एक कहानी 'आंखें मूंदो नानी' ऐसी ही कहानी है जिसमें परी के कारनामे हैं लेकिन अन्तत: वह पारम्परिक परी से परे की कहानी है। अमृतलाल नागर की कहानी 'अन्तरिक्ष-सूट में बन्दर' और मनोहर चमोली मनु की कहानी 'रखनी है साफ-सफाई' अच्छी वैज्ञानिक कहानियां हैं।

हिंदी का बाल-साहित्य एक ऐसी हिंदी की ओर सशक्त कदम बढ़ा चुका है जो वैश्विक होने की दिशा में संभावनाओं से भरा है, अपनी निजी विशिष्टताओं के साथ। ये निजी विशिष्टताएं हैं बालसाहित्य में चार चांद लगाने वाली 'पहला चांद' राजा-रानी से हट कर जनतांत्रिक कथ्य, दूसरा-कल्पनाओं का नया लोक, तीसरा-ज्ञान का वैश्विक आलोक और चौथे चांद में समाए हैं, हमारे देश के जीवन-मूल्य।

divikramesh34@gmail.com

लेखक सिनेमा पर निरंतर लिखते रहे हैं। वे इन दिनों कई अखबारों में सिनेमा पर स्तम्भ लेखन कर रहे हैं। उनके आलेख, कविताएं, अनुवाद प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। सम्प्रति वे भारतीय ज्ञानपीठ में प्रकाशन अधिकारी और 'नया ज्ञानोदय' के सहायक सम्पादक हैं।

बच्चों से बतियाती फ़िल्में

डॉ. महेश्वर

हिंदी सिनेमा में बच्चों की भी एक दुनिया शामिल है, जिसका मूल्यांकन होना अभी शेष है। देश में बाल सिनेमा को वह स्थान नहीं मिल सका, जो उसे मिलना चाहिए था, लेकिन इसके बावजूद भी बच्चों को लेकर जो फ़िल्में बनी हैं, उन्हें कमोबेश स्वीकारा गया है।

1980 के दशक में आई 'मिस्टर इंडिया' थी जो अदृश्य मानव को लेकर बनी थी लेकिन उस फ़िल्म के केन्द्र में बच्चे ही थे। वह अपने समय में काफी पसंद की गई फ़िल्मों में से एक है। 'अपना आसमान', 'तारे जमीं पर', 'भूतनाथ', 'ब्लू अंब्रेला', 'बम बम बोले' आदि बाल फ़िल्मों ने बाल सिनेमा की अवधारणा को थोड़ा बदला है। नई भाव-भूमि पर उपजी ये फ़िल्में संभावना की नई धरातल पैदा करती हैं। इन फ़िल्मों में मानवीय संबंधों और सहयोग, बाल समस्या को बड़ी ही विविधता और खूबसूरती से फ़िल्माया गया है।

अंग्रेज़ी स्कूलों के बच्चे किस तरह की हिंदी का प्रयोग करते हैं यह देखने को मिला फिल्म 'पाठशाला' में। इस फ़िल्म के ज़रिए समाज और बच्चों के भविष्य के साथ हो रहे खिलवाड़ को दिखाने की कोशिश की गई। टीचर्स और बच्चों के माता-पिता की आंखें खोलनेवाली फ़िल्म है। इसमें स्कूली बच्चों से संबंधित ज्वलंत मुद्दों को उठाया गया है। पब्लिक स्कूलों के व्यावसायिक नज़रिए को परखने की कोशिश की गई है। प्रियदर्शन की फ़िल्म 'बम बम बोले' को भी बच्चों ने बड़े प्यार से देखा। कश्मीर की पृष्ठभूमि में निर्मित इस फ़िल्म में दो छोटे भाई-बहन हैं। भाषा और भाव के स्तर पर यह बहुत ही मार्मिक बन पड़ी है।

आमिर खान की फ़िल्म 'तारे जमीं पर' डिस्लैक्सिया से पीड़ित एक मंदबुद्धि बच्चे पर आधारित है। इस फ़िल्म ने कई कीर्तिमान स्थापित किए और डिस्लैक्सिया से पीड़ित बच्चे के मनोविज्ञान को बड़ी गंभीरता और सजगता से व्यक्त किया। 'तारे जमीं पर' के गीतों ने भी एक अलग छाप छोड़ी। 'तहान' और 'रामचंद पाकिस्तानी' जैसी फ़िल्मों की स्क्रिप्ट में बच्चे कहीं पीछे छूट गए। बच्चों की पढ़ाई पर आधारित 'नन्हे जैसलमेर' की स्क्रिप्ट में कुछ नयापन तो था, लेकिन फ़िल्म की कहानी बॉबी देओल के इर्द-गिर्द ही घूमती रही। विशाल भारद्वाज की 'ब्लू अंब्रेला' को तो नेशनल अवार्ड तक से सम्मानित किया गया। किट्टू सलूजा की 'चेन कुली की मेन कुली', पंकज शर्मा की 'बाल गणेश', 'माई फ्रेंड गणेश', अनुराग कश्यप की 'रिटर्न ऑफ हनुमान' जैसी फ़िल्में भी काफी चर्चा में रहीं। अजय देवगन की 'राजू चाचा' भी ठीक-ठाक चली थी। कुछ वर्षों पहले संजय लीला भंसाली की 'ब्लैक' आई थी, जो एक छोटी अंधी लड़की की कहानी थी। इसमें अमिताभ उस अंधी बच्ची के कठोर शिक्षक के रूप में थे, इसको कई पुरस्कार भी प्राप्त

हुए। इस फ़िल्म को काफी सराहना भी मिली थी। इसी तरह अमिताभ बच्चन अभिनीत 'पा' में भी प्रिजेरिया रोग से ग्रसित एक बच्चे को दिखाया गया है। इन फ़िल्मों में भी हिंदी की सुगन्ध दर्शकों को अपनी ओर खींचती है।

पीयूष झा की फिल्म 'सिकंदर' में कश्मीर के तनाव और दर्द को बच्चों की आंखों से देखने की कोशिश देखी जा सकती है। 'सिकंदर' एक ऐसे बच्चे की कहानी है जिसे फुटबाल से बेहद लगाव है और वह राष्ट्रीय स्तर पर फुटबाल खेलना चाहता है। पर एक दिन उसे सड़क पर एक बंदूक मिल जाती है, बस इसके बाद उसकी ज़िंदगी में सब कुछ बदलने लगता है। इस फ़िल्म में कश्मीरी बच्चों के दर्द को पर्दे पर उतारने की कोशिश की गई है। 'स्टेनली का डिब्बा' में बच्चे की कहानी बहुत संवेदनशील तरीके से कही गई है।

यूटीवी स्पॉट बॉय और सलमान खान के सह-निर्माण में बनी 'चिल्लर पार्टी' मासूम बच्चों के ऐसे समूह की कहानी है जो एक राजनेता के खिलाफ खड़े हो जाते हैं और एक आवारा कुत्ते की ज़िंदगी बचाकर सबका दिल जीत लेते हैं।

देश के सबसे प्रसिद्ध राष्ट्रपति और मिसाइलमैन ए.पी.जे. अब्दुल कलाम से मिलने के लिए एक बच्चा किस-किस तरह के जतन करता है, यह फ़िल्म 'आई एम कलाम' की कहानी में है, जिसके निर्देशक हैं नीलना माधव पांडा।

विधु विनोद चोपड़ा की फ़िल्म 'फरारी की सवारी' सपने टूटने और सपने साकार होने के बीच तीन पीढ़ियों के संबंध और समझदारी की कहानी है। कहा जा सकता है कि बीते एक दशक में बच्चों को लेकर काफी फ़िल्मों का निर्माण हुआ है। बड़े परदे पर भी इन फ़िल्मों ने अच्छा खासा व्यापार किया, जो देश में बाल सिनेमा के निर्माण को बल प्रदान करने में सहायक है।

बॉलीवुड की यह त्रासदी है कि यहां बच्चों की फ़िल्मों को उतना महत्व नहीं दिया जाता जितना उसे मिलना चाहिए और न ही उसे गंभीरता से ही लिया जाता है। इस मामले में सिनेमाकारों को शिक्षाविदों और मनोचिकित्सकों का भी सहयोग लेना चाहिए ताकि बच्चों से जुड़े विषयों पर स्तरीय और महत्वपूर्ण फ़िल्में बन सकें। मुख्य धारा के सिनेमा में बाल सिनेमा को भी स्थान मिले तो निश्चित रूप से देश में बाल सिनेमा का भविष्य उज्वल होगा और उसे एक नई दिशा मिलेगी।

आवश्यकता है कि सरकारी और ग़ैर सरकारी संस्थाएं नए फ़िल्मकारों को आर्थिक सहायता प्रदान करें ताकि हिंदी में बाल सिनेमा का निर्माण बहुतायत संख्या में हो सके और सिनेमा के माध्यम से हमारी भाषिक समृद्धि बढ़े।

maheshwarfirst@gmail.com

लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक और प्रयोगधर्मी शिक्षा-शास्त्री हैं। वे विगत चार दशकों से रचनात्मक लेखन में सक्रिय हैं। आपको अनेक देशों में हिंदी शिक्षण का सुदीर्घ अनुभव है।

दुनिया की सैर पर हिंदी

डॉ. रमेश चंद्र शर्मा 'ऋषिकल्प'

भारत में पर्यटन उद्योग आज भी अंग्रेज़ी आधारित है। ट्रेवल एजेंट से लेकर पर्यटन विभाग के कार्यालय तक में, रेलवे स्टेशन से लेकर हवाई अड्डों तक कहीं भी यह नीयत नहीं दिखाई पड़ती कि विदेशी पर्यटकों को हिंदी का भी थोड़ा-बहुत परिचय दिया जाए जबकि विदेशी पर्यटक अपने देश से चलते वक्त हिंदी के कुछ वाक्य याद करके चलता है। यदि भारत में आने पर उन्हें हिंदी का कुछ और परिचय दिया जाए तो वह इसे सहर्ष स्वीकार करेगा। भारतीय भोजन और भारतीय ग्रामीण संस्कृति में विदेशियों की बहुत रुचि है और इसके लिए हिंदी भाषा एक माध्यम बन सकती है। उनके साथ रहने वाले 'गाइड' ऐसे होने चाहिए जो अच्छी अंग्रेज़ी और अच्छी मानक हिंदी का यथास्थान प्रयोग जानते हों। भारत में विदेशी पर्यटकों के साथ महा अयोग्य किस्म के 'गाइड' होते हैं जिनको भाषा और इतिहास का या तो कोई ज्ञान नहीं होता या गलत होता है। यह सब इसीलिए होता है कि हमारा पर्यटन उद्योग विदेशियों से सिर्फ किसी भी प्रकार धन कमाने की नीयत तो रखता है पर अपनी भाषा और अपने देश की संस्कृति को ठीक से समझाने में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं होती।

हमें यह समझना चाहिए कि पर्यटन दो देशों के बीच, दो समाजों के बीच सार्थक और सांस्कृतिक संवाद है न कि सिर्फ एक धंधा। यदि इसे हम व्यापार भी मानें तो भी सांस्कृतिक संवाद की बात को दर-किनार नहीं किया जा सकता, क्योंकि अंततः हम इस तथाकथित व्यापार में इतिहास, जन-जीवन और संस्कृति से ही रू-ब-रू होते हैं और पर्यटकों को रू-ब-रू कराते हैं। एक देश का पर्यटक दूसरे देश मे जाकर अपने स्व से मुक्त होकर दूसरे देश के पर से जुड़ता है। इससे उसकी चेतना व्यापक होकर प्रसारित होती है। यह जुड़ाव और प्रसारण भाषाओं के बिना सम्भव नहीं हैं। सच तो यह है कि व्यापार भी भाषा के बिना सम्भव नहीं है। ये वह बिन्दु है जहां दोनों देशों की भाषाएं अपनी अस्मिता के साथ मिलती हैं। यहां सिर्फ सवाल ये है कि कौन अपनी भाषा और अपनी अस्मिता के प्रति सचेत है और कौन उसे महत्वहीन मानता है। भारत की सरकारों ने आज़ादी के बाद से ही अंग्रेज़ी को महत्व दिया और भारतीय भाषाओं को विश्व के परिप्रेक्ष्य में कोई महत्व नहीं दिया जबकि भारतीय भाषाएं विशेषकर संस्कृत और हिंदी विश्व के परिप्रेक्ष्य में

साहित्य, चिंतन, दर्शन, विज्ञान, योग, अध्यात्म, संगीत एवं अन्य रूपों में अपना अतुलनीय योगदान दे सकती थीं, जैसा कि मैंने पहले भी कहा है कि हिंदी सिर्फ भाषा नहीं है, वह एक जाति का विशद अनुभव है, संवेदनाओं का अनुभव। वैसे सभी भाषाएं किसी जाति का अनुभव होती हैं, हमें दृढ़ता से फैसले लेने होंगे और पर्यटन के विकास का एक हिस्सा हिंदी को भी बनाना होगा। पर्यटन से हिंदी का सम्बन्ध कायम करना होगा। उसमें अधिक-से अधिक हिंदी का प्रयोग करना होगा। देवनागरी लिपि के साथ-साथ हिंदी भाषा को विदेशी पर्यटकों के लिए रोमन लिपि में भी लिखा जा सकता है। कम से कम हम उन्हें हिंदी शब्दावली तो दे पाएंगे।

अक्सर मैं पर्यटन विभाग के पोस्टर पर लिखा देखता हूं Incredible India यानी 'अतुल्य भारत' मेरे मन में प्रश्न उठता है कि क्या हम विदेशी पर्यटकों को 'अतुल्य भारत' दिखा पाते हैं जो यहां के प्राचीन दर्शन में निवास करता है। आज पूरा विश्व भारत के प्रति अनेक कारणों से आकर्षित है। भारत दुनिया के लिए यदि एक ओर बहुत बड़ा बाजार है तो दूसरी ओर यह पश्चिम के अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर देने की चिंतनपरक आध्यात्मिक भूमि भी है। आधुनिक युग में अकेले होते जा रहे विश्वमानव के लिए आशा की किरण भी है। पर्यटकों के लिए भारत केवल एक देश ही नहीं बल्कि विविधता से परिपूर्ण एक ऐसी पूरी दुनिया है जिसमें आध्यात्मिकता और भौतिकता जीवन के नए-नए संवादों में संलग्न है।

जो पर्यटक विदेशों से भारत के लिए प्रस्थान करें, उन्हें दस-बारह पेज की ऐसी बुकलेट दूतावास से मुफ्त मुहैया करानी चाहिए जिसमें हिंदी की शब्दावली और हिंदी के आवश्यक वाक्य दिए गए हों। ये दस-बारह पेज हिंदी के प्रसार का महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। यह कार्य प्रत्येक देश में स्थित भारत के राजदूतावास बहुत आसानी से इसलिए कर सकते हैं क्योंकि प्रत्येक पर्यटक को भारतीय दूतावास से वीजा लेना होता है और उसके लिए उसे एक निश्चित फीस देनी होती है। जब मैं पहली बार ग्रीस गया और ग्रीस जाने के लिए भारत में ग्रीस दूतावास से वीजा लिया तो वीजा के साथ उन्होंने मुझे बहुत छोटी-सी एक बुकलेट दी जिसमें हिंदी के माध्यम से ग्रीक भाषा के काफी वाक्य थे, काफी शब्दावली जो ग्रीस में जाकर मेरे बहुत काम आई और उसके कई वाक्य और कुछ शब्द तो मुझे आज भी याद हैं।

हमें विदेशी पर्यटकों को भारत इस प्रकार दिखाना चाहिए जिससे वो हिंदी सीखना चाहें और यह काम असम्भव नहीं है। विदेशी पर्यटक अपने देश में जाकर भी हिंदी सीख सकते हैं। क्योंकि यूरोप और अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में आज हिंदी पढ़ाई जा रही है। आज अनेक क्षेत्रों से जुड़े बहुत सारे विदेशी पर्यटक एक वर्ष या दो वर्ष के लिए भी भारत आते हैं। हम उनको हिंदी सिखाकर हिंदी का प्रसार कर सकते हैं। असल में कुल मिलाकर बात यह है कि यदि हम चाहते हैं कि विश्व के परिप्रेक्ष्य में हिंदी का प्रसार हो तो उसकी पहली सीढ़ी यह है। हमें पर्यटन के प्रत्येक क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग शुरू करना चाहिए। जब हम प्रयोग करने शुरू करते हैं तो बहुत सी दिशाएं खुलने लगती हैं। यदि इस संदर्भ में प्रयोग किए जाएं तो मुझे पूरा यकीन है कि पर्यटन से हिंदी का प्रसार किया जा सकता है।

rameshrishikalp@gmail.com

न्याय-प्राप्ति में अंग्रेज़ी व्यवधान

चन्द्रशेखर आश्री

लेखक उच्चतम न्यायालय में अधिवक्ता हैं और सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसियेशन के संयुक्त सचिव भी हैं। रचनात्मक लेखन में संलग्न हैं, भारतीय एशियाई साहित्य अकादमी, अखिल भारतीय हिंदी विधि प्रतिष्ठान द्वारा सम्मानित हैं। 2005 और 2008 के विधि-दिवस पर केंद्रीय कानून-मंत्री और भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा सम्मानित।

बेंजामिन होर्फ ने कहा है—'भाषा हमारे सोचने के तरीके को स्वरूप प्रदान कर निर्धारित करती है कि हम क्या-क्या सोच सकते हैं।'

हम दो सौ साल तक अंग्रेज़ों के पराधीन रहे, अतः हमारी कार्यशैली में अंग्रेज़ी सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव रहा है, जिससे हमारी विधि और न्याय व्यवस्था भी प्रभावित रही। स्वाधीनता से पूर्व हमारे देश में न्यायाधीश भी अंग्रेज़ हुआ करते थे। हमारे संपन्न भारतीय बैरिस्टर बनने की ललक में उच्च शिक्षा पाने के लिए विलायत जाना पसंद करते थे। उनकी सोच, शिक्षा-दीक्षा तथा रहने की शैली में भी अंग्रेज़ियत की झलक दिखाई देती थी।

1947 में देश को स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद विश्व के सभी संविधानों के आदर्श प्रावधानों को समाहित करते हुए 26 जनवरी 1950 को भारतीय गणतंत्र के संविधान की संरचना हुई, जिसे भारत देश की जनता को समर्पित किया गया। विदित है कि संविधान की प्रस्तावना में 'हम भारत के लोग' शब्द का प्रयोग कर संविधान निर्माताओं ने इसको जनभावना से जोड़ कर प्रस्तुत किया। अतः देश की सर्वाधिक प्रयुक्त भाषा हिंदी को विशेष स्थान दिया गया है।

स्वतंत्रता से पूर्व जन्मे राजनीतिज्ञ, न्यायविद, विधिवेत्ताओं के लम्बे समय तक आंग्ल भाषा का प्रयोग करने के कारण उनकी सोच भी पूरी तरह से औपनिवेशवाद से प्रभावित रही। न्यायालयों में प्रयुक्त भाषा अंग्रेज़ी होने तथा भारतीय न्यायप्रणाली के नैसर्गिक स्थिति में होने के कारण प्रिवी कौंसिल और हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स के निर्णयों का प्रयोग आरंभ में अधिक हुआ। न्यायाधीश भी वकीलों से अपेक्षा करते थे कि भारतीय विधिवक्ता उनके द्वारा लंबित मामलों में प्रिवी कौंसिल और हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स के निर्णयों का प्रयोग करें।

आज विधि एवं न्याय में हिंदी के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। हिंदी न्याय एवं विधि के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुकी है एवं इस अवधारणा का खंडन करती है कि हिंदी के बिना न्यायिक प्रक्रिया असंभव है। जिस प्रकार से हिंदी ने अधिवक्ताओं, विधिवेत्ताओं एवं न्यायालय के चिंतन को अपनी उपस्थिति से प्रभावित किया है एवं आज की न्याय प्रणाली उपनिवेशवादी अंग्रेज़ियत से बाहर निकलकर सकारात्मक दृष्टिकोण से अपने परिवेश में आम

आदमी को न्याय दिला रही है, वह सराहनीय है एवं न्यायालय में हिंदी की सकारात्मकता को रेखांकित करती है।

निर्भया प्रकरण जिसने पूरे देश की आत्मा को हिला कर रख दिया था। महिला सुरक्षा पर तरह-तरह के प्रश्नों व आक्षेपों से देश जब जूझ रहा था, तब माननीय उच्च न्यायालय ने नारी की स्थिति पर कवि जयशंकर प्रसाद की कृति कामायनी के कुछ अंशों को अपने फैसले में उद्धृत किया— 'ये आज समझ तो पाई हूं/ मैं दुर्बलता में नारी हूं/ अव्यय की सुन्दर कोमलता/ ले कर मैं सब से हारी हूं'।, 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो/ विश्वास रजत नग पल तल में/ पीयूष स्रोत सी बहा करो/ जीवन की सुन्दर समतल में'।

दयामृत्यु प्रकरण में जहां मृत्युशैय्या पर पड़ी रुग्णा पल-पल अपने लिए मौत मांगती एवं मृत्यु का इंतज़ार करती, उसने अदालत से दया मृत्यु की जब गुहार की तब माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश में उसकी व्यथा एवं संवेदनाओ को समझते हुए ग़ालिब की पंक्तियों को उद्धृत किया— 'मरते हैं आरजू में मरने की, मौत आती है पर आती नहीं।'

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक निर्णय में पुत्र एवं माता के प्रगाढ़ संबंधों को चित्रित करते समय हिंदी शब्द ममता का प्रयोग किया, जो विधि और न्याय में हिंदी के उपयोग का एक और उदाहरण है।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि न्यायिक प्रक्रिया में कुछ शब्द अपने वास्तविक रूप एवं मूल भाषा में बहुत कुछ कह सकते हैं। हिंदी के गूढ़, गंभीर एवं भारी भरकम शब्दों की अपेक्षा सहज, सरल हिंदी के प्रचलित शब्दों को अपनाकर न्याय व्यवस्था को जनसाधारण के हृदय से जोड़ा जा सकता है, जैसे किसी निर्णय में न्यायालय को यदि यह तथ्य लिखना पड़े कि' अमुक घटना करवा चौथ के दिन नई दिल्ली रेलवे स्टेशन के सामने ट्रैफिक सिग्नल पर हुई' गूढ़ हिंदी में लिखा जाएगा 'यह घटना पति पूजन दिवस को नवीन दिल्ली लौह पथ गामिनी विश्राम स्थल के समक्ष यातायात दिशा सूचक यन्त्र के निकट घटित हुई' अंग्रेज़ी में होगा 'This incident happened on Karvachauth day at Traffic Signal in front of New Delhi Railway Station'।

अब हिंदी भाषा की प्रकृति परिवर्तित हो रही है, उसमें शब्द समाहित होने लगे हैं, जैसे स्टेशन, प्लेटफॉर्म, सिग्नल, विंडो, मेट्रो, मर्डर, पोस्ट ऑफिस जैसे शब्द भले ही अंग्रेज़ी के हों पर आज उनका सामान्य बोल-चाल में प्रयोग इस प्रकार होता है, जैसे ये हिंदी के ही शब्द हों। इसी प्रकार न्यायपालिका को भी हिंदी शब्दों को समाहित करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। तभी भारतीय न्याय व्यवस्था पूर्ण रूप से 'मेक इन इंडिया' पर आधारित होगी एवं उसे विदेशी निर्णयों एवं न्याय सिद्धांतों का मोहताज बनकर नहीं रहना पड़ेगा।

देश के हिंदी-प्रेमियों के निरंतर प्रयासों से विधि के क्षेत्र में भी

हिंदी की उपयोगिता बढ़ती जा रही है। आज अधिकांश नियम और अधिनियम द्विभाषी रूप में पारित हो रहे हैं। केंद्र सरकार के गज़ट भी द्विभाषी होते हैं। प्रायः सभी अधिनियमों का हिंदी अनुवाद उपलब्ध है। देश के हिंदी भाषी बहुल राज्यों में भले ही निर्णय अंग्रेज़ी में दिए जाएं पर अनुपालन हिंदी में किया जा रहा है। संचार क्रांति ने इस प्रक्रिया को और सरल बना दिया, कम्प्यूटर की उपलब्धता ने इस प्रक्रिया को सहज कर दिया। हिंदी में अनूदित अधिकांश निर्णय मीडिया व सोशल मीडिया के द्वारा तुरंत देश के कोने-कोने तक पहुंचाए जा रहे हैं।

हिंदी के प्रयोग से न्यायपालिका तथा वादी-प्रतिवादी के बीच का फासला काफी कम हुआ है। परन्तु आज भी न्याय पाने की दिशा में अंग्रेज़ी कई व्यवधान उत्पन्न करती है। जनमानस में आज भी यह विश्वास बहुत प्रचलित है कि 'भगवान, इंसान को कोर्ट और अस्पताल से बचाए' क्योंकि डॉक्टर और वकील अंग्रेज़ी में कब, क्या कह और कर जाते हैं उसे समझना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन है। वह यह जान ही नहीं पाता कि उसके मुक़दमे में क्या कहा गया और क्या लिखा गया, उसे अगर मिलता है तो बस फैसला जिसे वह पढ़ भी नहीं पाता। उसकी अपनी दलील और भाषा निराकार हो अंग्रेज़ी में लिखे फैसले में सिमट जाती है। सम्पूर्ण न्याय के लिए आवश्यक है कि दलील और निर्णय उसकी अपनी भाषा में हों जिसे वह समझ सके।

विधि और न्याय के क्षेत्र में हिंदी के प्रोत्साहन हेतु केंद्र सरकार और विभिन्न राज्य सरकारों ने भी सराहनीय प्रयास किए हैं। विभिन्न न्यायिक दस्तावेजों का हिंदी अनुवाद कर हिन्दी भाषी जनता के लिए न्यायिक प्रक्रिया को सरल बना दिया गया है। हिंदी में विधिशास्त्र की पुस्तकों की उपलब्धता से छोटे शहर व कस्बों में शिक्षित अधिवक्ता आज सफलता के चरमोत्कर्ष पर पहुंच रहे हैं व सभी स्तरों पर न्यायिक प्रक्रिया के भागीदार बन रहे हैं। परन्तु संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित समान अवसर के अधिकार से वे तब वंचित हो जाते हैं जब उन्हें पता चलता है कि बिना अंग्रेज़ी की जानकारी के उनका उच्च न्यायिक संस्थाओं में कार्य करना असंभव है।

उच्च न्यायिक संस्थाओं में अंग्रेज़ी की जानकारी के बग़ैर कैसे सफलता हासिल की जा सकती है, यह सवाल महत्वपूर्ण है, इस पर सभी संबंधित पक्षों को विचार करना चाहिए।

csashri@gmail.com

बिंदी रहित हिंदी

अमित राय

लेखक एक प्रसिद्ध युवा फ़िल्मकार कहानीकार हैं। इनके द्वारा लिखित एवं निर्देशित फ़िल्म 'रोड टु संगम' अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हुई, जैसे, 'डायरैक्टर्स फर्स्ट फिल्म अवार्ड', इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल, साउथ अफ्रीका, 'ऑडिएंस चॉइस अवार्ड', लन्दन फिल्म फेस्टीवल, सर्वश्रेष्ठ कहानी के लिए 'स्टार स्क्रीन अवार्ड, 2011' और जागरण फ़िल्म समारोह में सर्वश्रेष्ठ निर्देशन के लिए सम्मान।

'चुपके चुपके' नामक फ़िल्म में बॉटनी के प्रोफेसर परिमल त्रिपाठी (धर्मेन्द्र) शुद्ध हिन्दी में बात करते हुए हास्य पैदा करते हैं और दर्शकों का मनोरंजन करते हैं, पर यदि आपको याद हो, फ़िल्म के निर्देशक ऋषिकेश मुखर्जी ने एक दृश्य में इसी परिमल त्रिपाठी के मुंह से यह भी कहलवाया है कि उन्हें बड़ी ग्लानि हो रही है कि वो हिंदी भाषा का मज़ाक उड़ा रहे हैं। इस पर उनके चाचा उनसे कहते हैं कि भाषा अपने आप में इतनी महान होती है कि उसका मज़ाक नहीं उड़ाया जा सकता। हिंदी भाषा को लेकर इतनी जागरूकता पहले से हमारे सिनेमा में रही है और यही कारण था कि उपहास करते हुए भी निर्देशक और कहानीकार ने भाषा की गरिमा को मलिन नहीं होने दिया।

ब्लैक एंड व्हाइट सिनेमा से लेकर कलर आने तक यदि आप देखें तो कहानी से लेकर पटकथा, संवाद और गीतों में हिंदी भाषा का इस्तेमाल बहुत ही सुन्दर और शुद्ध रूप में हुआ। लगभग सारी की सारी स्क्रिप्ट हिंदी लिपि में लिखी जाती थी और कहानीकारों की कोशिश यह रहती थी की भाषा में कोई त्रुटि न रहे और फ़िल्म से संबंधित सभी को कहानी पढ़ते समय उसका मर्म और भाव आसानी से समझ में आए। दौर बदला, सामाजिक परिस्थितियां बदलीं, आर्थिक विकास, आधुनिकता, तकनीक, शिक्षा नीति, हॉलीवुड सिनेमा, सभी का मिला-जुला अनुभवजन्य असर हमारी फ़िल्मों पर भी पड़ा। सत्तर के दशक के मध्य से हिंदी भाषा पर इसका सीधा असर दिखना शुरू हुआ। इस दौर से जो हिंदी भाषा पर अतिक्रमण या यूं कहें कि अत्याचार शुरू हुआ वह आज अपनी चरम स्थिति पर है। फ़िल्म क्षेत्र में न हिंदी में अच्छा लिखने वाले रह गए हैं और न ही पढ़ने या सुनने वाले। यह सिलसिला अबे, अपून, ओये से शुरू होकर आज यप, ओह, फ़क, वाट्सअप से होते हुए शिट तक पहुंच गया है।

व्यक्तिगत रूप से मुझे अंग्रेज़ी या यूं कहें किसी भी भाषा से कोई परेशानी नहीं है, मैं स्वयं पांच भाषाएं बोलता हूं और हर भाषा पर मुझे गर्व है, क्योंकि भाषा अपने आप में इतनी महान

आज की तारीख़ में भी हिंदी या हिंदी लिपि में स्क्रिप्ट लिखने वालों की संख्या एक से दो प्रतिशत रह गई है। अमिताभ बच्चन और कुछ गिने-चुने लोग इसमें अपवाद हैं। अमित जी ऐसी पटकथा लौटा देते हैं जिसमें हिंदी के संवाद अंग्रेज़ी में लिखे हों।

होती है कि हम सब उसके सामने बौने हैं। आज स्थिति विषम है। कोई अचरज की बात नहीं होगी अगर दो-चार साल में हिंदी सिनेमा से हिंदी में कहानी लिखने और पढ़ने का चलन ही ख़त्म हो जाए। और मैं यह कहूं तो बिल्कुल भी अतिश्योक्ति नहीं होगी कि आज की तारीख़ में भी हिंदी या हिंदी लिपि में स्क्रिप्ट लिखने वालों की संख्या एक से दो प्रतिशत रह गई है। अमिताभ बच्चन और कुछ गिने-चुने लोग इसमें अपवाद हैं। अमित जी ऐसी पटकथा लौटा देते हैं जिसमें हिंदी के संवाद अंग्रेज़ी में लिखे हों। ये बदलाव रातों-रात नहीं हुआ। इसके लिए बहुत हद तक ज़िम्मेदार हम सभी हैं। हम हिंदी फ़िल्म तो बनाना चाहते हैं पर हिंदी को अपनाना नहीं चाहते। उदाहरणत: आपने देखा होगा, हमारे हिंदी फ़िल्मों के अवार्ड फंक्शन, जहां फ़िल्मों से संबंधित सभी श्रेणियों में पुरस्कार दिए जाते हैं, वहां उद्घोषक से लेकर पुरस्कार पाने वाले सभी लोग अंग्रेज़ी में बोलते हैं। कैसी विडंबना है, एक या दो लोगों को छोड़कर कोई भी हिंदी में अपनी भावना व्यक्त नहीं करता।

अब इस स्थिति की कारण-मीमांसा भी कर लेते हैं। होता यह है कि जिस समय मैं अपनी स्क्रिप्ट किसी ऐक्टर, प्रोडक्शन हाउस या निर्माता को दे रहा होता हूं, उसने यदि उसे खोल कर यह देख लिया कि वह हिंदी में लिखी गई है तो सौ में से पिचानवै नम्बर वहीं कट जाते हैं। मुझे 'नो सो कूल' या 'नॉट सो हैपनिंग' का तमगा दे दिया जाता है, फिर भले ही मुझसे जाने या अनजाने में एक महान कहानी की रचना हो गई हो, वह कहानी वहीं मर जाती है और उसके फ़िल्म में रूपांतरित होने की सम्भावना भी। मेरी तरफ देखने का नज़रिया बहुत ही कनिष्ठ हो जाता है और मेरी क्लास एसी से जनरल हो जाती है। इसके उलट अगर मैंने अपनी स्क्रिप्ट की शुरुआत कुछ इस तरह से की होती तो बात ही कुछ और हो जाती : 'fade in ...An out focus shot which is instantly not clear; Camera captures the first drop of rain. The sky opens up its watery curtain and spreads is all along the landscape. The symphonic sound of rain pervades everywhere; the whole forest under the spell of water looks serene and divine.'

पहली पंक्ति पढ़ते ही मुझे सौंदर्य-शास्त्री की उपाधि मिल जाती है। मैं अप-टु-डेट मान लिया जाता हूं। मुझे एक उत्कृष्ट लेखक होने का गौरव प्राप्त हो जाता है। मेरी हर लाइन सीरियसली ली जाने लगती है और मुझे काम आता है, यह बिना परखे ही मान लिया जाता है, और यह सारा जादू इस करिश्माई भाषा अंग्रेज़ी का होता है। ये सारे वाक्य हिंदी के छायावादी कवियों के काव्य और महान कवि कालिदास द्वारा रचित मेघदूत के हिन्दी अनुवाद में भी उपलब्ध हैं, लेकिन यदि मैं इन वाक्यों को हिंदी में लिख कर दूं तो दो कौड़ी का भी नहीं माना जाऊंगा।

आपके आसपास जो लोग हिंदी सिनेमा में काम कर रहे हैं वे अधिकतर कॉर्पोरेट क्लास के हैं जिनका सारा व्यवहार अंग्रेज़ी में चलता है। वे हिंदी फ़िल्मों को बिज़नेस के रूप में देख रहे हैं। फ़िल्म

उनके लिए प्रोजैक्ट हैं। इस मानसिकता का सीधा असर फ़िल्मों की गुणवत्ता पर पड़ा है। तीन सौ फ़िल्मों में से तीन या चार फ़िल्में ही कामयाब होती हैं बाकी सब नुकसान में जाती हैं। अब जब आप इस कॉर्पोरेट क्लास में अपने को हिंदीभाषी के रूप में प्रस्तुत करते हैं तो आप बगुलों के झुंड में कौवा समझे जाते हैं। फिर जिसकी लाठी उसकी भैंस। आपको कारणों की लिस्ट दी जाती है कि ऐक्टर हिंदी नहीं पढ़ सकता, वो कॉन्वैंट का पढ़ा है (कॉन्वैंट समझते हो?) या वो विदेश में पला है (विदेश गए हो?), हीरोइन मिस इंडिया तो है पर हिंदी बोलना, लिखना और पढ़ना नहीं जानती, स्क्रिप्ट रोमन लिपि में लिख कर दें। टैक्नीशियन, कैमरामैन दक्षिण भारतीय हैं, वे हिंदी में अन्कम्फर्टेबल हैं इसलिए बेहतर है कि रोमन लिपि में स्क्रिप्ट लिखी जाए या उससे भी आसान रास्ता है कि जब सबको अंग्रेज़ी समझ आती है, पूरी स्क्रिप्ट इंग्लिश में ही लिखा करो, डायलॉग ऐक्टर ऑन स्टेज चेंज कर लेंगे। एक हिंदी कोऑर्डीनेटर रख लेंगे, सर और मैडम के लिए।

आप चाह कर भी कोई बहस नहीं कर पाते। डार्विन के सर्वाइवल के सिद्धांत का सम्मान करते हुए, जैसे वे कहते हैं वैसा करने लग जाते हैं। यह हिंदी भाषा के स्खलन का अब तक का सबसे बुरा दौर है। आप टी.वी. पर कोई भी कार्यक्रम देख लें, न्यूज़ चैनल देख लें, जिस प्रकार हिंदी भाषा का प्रयोग हो रहा है उसे देख कर बहुत दुख होता है। लिखावट में त्रुटियां ही त्रुटियां, चन्द्र-बिंदु तो चलिए ऐसे गायब हो ही चुका है जैसे गधे के सिर से सींग। नाम नहीं लूंगा पर मैंने एक प्रख्यात अभिनेत्री को एक ऐड में पिछले माह यह लाइन कहते सुना, 'मुझे एक नया पहचान मिला है'।

समस्या कहां है? समस्या बस नज़रिए की है, आत्मविश्वास की है, आपके व्यक्तित्व की है। यदि आप निर्णायक स्थिति में हैं तो आप अपनी प्रबल इच्छा से योग का खोया हुआ सम्मान फिर से भी दिला सकते हैं या फिर चुपचाप जो हो रहा है उसके मूक गवाह भी बने रह सकते हैं। आज मोबाइल और मीडिया टैक्नोलॉजी ने हम सबको क़रीब लाकर खड़ा कर दिया है। हम जो नहीं जानते हैं, दो पल में वो गूगल बाबा बता देते हैं और हम आंख बंद करके उस पर विश्वास कर लेते हैं, जैसे कि विकिपीडिया पर देवदास के लेखक का नाम संजय लीला भंसाली लिखा हुआ है।

ज़रा सोचिए, प्राचीन काल से जो भाषा निरंतर विकसित हुई, जिसने सभी स्तरों पर हमारी एक अलग पहचान बनाई, हमें मान-सम्मान और जीवन दिया, वह आज धूमिल और दूरमील होती जा रही है, चुपके-चुपके। मैं हमेशा सोचता हूं कि जिस इंडस्ट्री में आप किसी से यह कहते हुए सुनते हैं कि मुंशी प्रेमचंद का बायोडाटा दे दीजिए वह इंडस्ट्री कैसे प्रगतिपथ पर आएगी? बस प्रार्थना कीजिए कि किसी दिन आपसे कोई यह न पूछ ले कि हिंदी में ऊपर बिंदी होती है या नहीं!

siramitrai@gmail.com

लेखिका प्रतिष्ठित कवयित्री हैं। वे केन्द्रीय फिल्म प्रमाण बोर्ड तथा राष्ट्रीय फ़िल्म संग्रहालय की सलाहकार समिति की सदस्य रही हैं। वर्तमान में वे विदेश मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति की सदस्य हैं। इस लेख में श्री अतुल तिवारी, डॉ. अचला नागर और श्रीमती रेखा बब्बल से बातचीत के आधार पर हिंदी प्रचार-प्रसार में फ़िल्म और टेलिविज़न की भूमिका का रेखांकन किया गया है।

हिंदी बहुत बड़े दिल की भाषा है

चित्रा देसाई

यह एक सर्वमान्य सत्य है कि फ़िल्मों ने हिंदी को लोकप्रिय बनाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत की पहली सवाक् फ़िल्म 'आलमआरा' 1931 में बनी थी। इससे पहले मूक फ़िल्में थीं जिनकी कोई भाषा नहीं थी। 'आलमआरा' के निर्माता-निर्देशक श्रीगणेश अर्देशिर ईरानी थे, जो पारसी थे। उनकी अपनी भाषा गुजराती थी, परन्तु उन्होंने पहली वाक् फ़िल्म के लिए हिंदी माध्यम चुना। हिंदी जनमानस की भाषा थी। एक बहुवर्ग में बोली और समझी जाती थी इसीलिए फ़िल्मों ने भी हिंदी में बोलना शुरू किया। यह सिर्फ एक संयोग नहीं था कि भारत का पहला बोलता चलचित्र 'आलमआरा' हिन्दुस्तानी ज़बान में था। पारसी प्रोड्यूसर ने यह निर्णय शायद भाषा के प्रेम में नहीं, वरन व्यावसायिक कारणों से लिया था।

फ़िल्मों के मशहूर कहानी और संवाद लेखक श्री अतुल तिवारी के अनुसार 'उन दिनों भारत की 33 करोड़ की आबादी में से एक तिहाई लोग हिन्दुस्तानी भाषा को बोल भले ही न पाते हों, पर समझते तो थे ही। कश्मीर से लेकर मैसूर और कच्छ से लेकर कलकत्ते तक हिन्दुस्तानी ज़बान समझी और टूटे-फूटे रूप में बोली जा सकती थी। फ़िल्म व्यवसाय वाले इस तथ्य को अच्छी तरह जानते थे और यही कारण था कि 'बोलपट' के पैर जमाते ही, विभिन्न भाषा-भाषी लोग हिन्दुस्तानी (जिसमें उर्दू-हिंदी दूध-शक्कर की तरह घुले मिले थे) भाषा में फ़िल्में बनाने लगे। फिर चाहे मराठी भाषी वी.शांताराम हों, तमिल एस.एस.वासन या हिमांशु राय, बरुआ, जैसे बंगाली। इसे व्यावसायिक या कहें अधिकतम हिन्दुस्तानियों द्वारा समझे जाने की इच्छा ने हिंदी के प्रसार-प्रचार के काम को इतना आगे बढ़ाया, जितना शायद 'हिन्दुस्तानी-प्रचारिणी सभा' भी नहीं कर पाई थी। अच्छे ढंग से कहानी कहने वाले तकनीशियन्स के हिन्दुस्तानी फ़िल्मों में आने से उनका स्तर और ऊपर जा रहा था और उनके देखने वालों की संख्या और क्षेत्र भी।'

क्या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी हिंदी के प्रचार में फ़िल्मों का योगदान रहा है? इस प्रश्न पर श्री अतुल तिवारी जी का मानना है, 'कुछ अति-उत्साही हिंदी-प्रेमी' इस तर्क को अंतरराष्ट्रीय पटल पर

भी सच मानते हैं। उनका कहना है कि हिंदी फ़िल्मों और बॉलीवुड के प्रभाव से आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी का प्रचार-प्रसार हुआ है, किन्तु इसका कोई सांख्यिकीय-साक्ष्य मुझे तो नहीं दिखता। हां, बहुत दिनों से हिन्दुस्तानियों के विदेशों में बसने और अच्छा कमाने के कारण, आज एक बड़ा बाज़ार और पैसा हिंदी फ़िल्मों को विदेशों में मिलने लगा है। किन्तु वे सब लोग वही हैं भारत में भी इन्ही फ़िल्मों के दर्शक थे। हां, कुछ देशों जैसे जर्मनी में शाहरुख खान के जर्मन भाषी प्रेमी उनकी फ़िल्मों से भले जुड़े हों, पर वे ये फ़िल्में डब करवा कर देखते हैं। राज कपूर के कारण सोवियत-रूस में कोई हिंदी नहीं सीखने लगा था और न चीन में 'पी.के.' की असाधारण सफलता से कोई चीनी हिंदी सीखने लगा है। अरे, हम फ़िल्मों के चाहने वाले भारतीय 'अकीरा कुरोसावा' की फ़िल्मों से बाकी कुछ भी सीखें हों, जापानी भाषा थोड़ी न सीख गए? हम स्वयं जब अपने सत्यजित राय से बंगाली तक तो सीखे नहीं, फिर दूसरों के बारे में क्यूं भ्रम पालें कि वे हमारी फ़िल्मों से हिंदी सीख गए हैं..? हां, जहां तक देश का सवाल है, हिंदी के प्रसार-प्रचार और पहुंच को बढ़ाने में हिंदी फिल्मों का बड़ा हाथ है और इस काम के लिए हमें उनका साधुवाद करना चाहिए।'

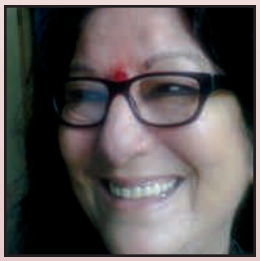

जानी-मानी फ़िल्म, पटकथा-संवाद लेखिका डॉ. अचला नागर साहित्य भूमि में जन्मी और पली थीं। परन्तु, पिछले 35 साल से कहानी, संवाद, पटकथा लिखकर फ़िल्मों के माध्यम से सामाजिक मुद्दों को दर्शकों तक पहुंचाती रही हैं। 'निकाह' से शुरुआत कर 'बागबां' और 'बाबुल' तक अनगिनत फ़िल्में लिखी हैं। डॉ. अचला नागर कहती हैं- 'फ़िल्में मनोरंजन का सशक्त माध्यम हैं और बहुत लोकप्रिय हैं। हिंदी भाषा को लोकप्रिय बनाने में फ़िल्मों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। मेरा मानना है कि दृश्य भाषा में यदि हिंदी की लोकप्रियता बनाए रखनी है तो ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए जो अधिक से अधिक लोगों को समझ आए। मुन्ना भाई एम.बी.बी.एस. फ़िल्म में इस्तेमाल 'कैमिकल लोचा' और 'गांधीगिरी' शब्दों को बुरा मत मानिए, उनकी नीयत पर जाइए। इस फ़िल्म की सफलता ने गांधी जी को टिकट और नोटों पर छपे चित्र से निकाल कर जीवित किया। विश्व का सर्वश्रेष्ठ नेता जिसे हमारे युवा सिर्फ किताबों में जानते थे, उससे परिचय कराया।'

हिंदी फ़िल्मों की भाषा साहित्यिक रूप से बाध्य नहीं होती। वह बोलचाल की हिंदी बोलती है, बोलती ही नहीं गुनगुनाती भी है। हिंदी फ़िल्मों में हर भाव को व्यक्त करने के लिए गीतों का सहारा लिया जाता है। इसीलिए गीत-संगीत पर हिंदी फ़िल्मों के फ़िल्मकार ज़्यादा मेहनत करते हैं। गानों की मधुरता ऐसा प्रभाव पैदा करती है जो सिर्फ ध्वनि ही नहीं परन्तु शब्दों को भी लोकप्रिय बना देती है। गीतों को चाशनी कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। संगीत हर शब्द को मीठा बना देता है।

हालांकि फ़िल्मी गानों को साहित्य में कोई स्थान नहीं दिया जाता और बुद्धिजीवियों की दृष्टि से वह हेय वस्तु है, पर हिंदी को लोकप्रिय बनाने में जो गीतों ने कार्य किया है वह गूढ़ साहित्य भी नहीं कर पाया।

निश्चित रूप से टेलिविज़न (टी.वी.) के कारण हिंदी का क्षेत्र-विस्तार हुआ है। टी.वी. का प्रवेश हमारे जीवन में 1961 में हुआ परन्तु, 10-15 साल तक उसका बहुत विकास नहीं हुआ। 1982 में जब एशियाड खेलों का आयोजन हुआ तो उस समय टी.वी. लगभग 73 प्रतिशत घरों तक पहुंच गया। जहां सिनेमाघर नहीं थे वहां भी आम आदमी के नीरस जीवन को टी.वी. ने बहुरंग बना दिया। कई प्रकार के धारावाहिक विकसित हुए, जैसे धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक इत्यादि। प्रथम हिंदी धारावाहिक 'हम लोग' आया। इसके लेखक मनोहर श्याम जोशी थे जो साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र से आए थे। इसीलिए 'हम लोग' की हिंदी न तो फ़िल्मी थी और न ही साहित्यिक। यह भाषा मनोरंजन भी करती थी और संदेश भी देती थी। उनका दूसरा धारावाहिक 'बुनियाद' भी इसी श्रेणी में था।

धार्मिक और पौराणिक धारावाहिकों में सबसे शीर्ष स्थान पर 'रामायण' है। टी.वी. ने रामायण को वह लोकप्रियता प्रदान की जो उसके साहित्य रूप व कला रूप को भी नहीं मिली थी। रामायण के माध्यम से हिंदी लगभग सभी जगह पहुंच गई। अहिंदी भाषी क्षेत्रों व घरों में भी। हिंदी के प्रचार-प्रसार में इतना बड़ा योगदान अन्य किसी व्यक्ति, समुदाय या संस्थान का भी नहीं रहा है।

भाषा की दृष्टि से बी. आर. चोपड़ा के 'महाभारत' का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. राही मासूम रज़ा ने इसके संवाद लिखे। इसमें न अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग, न क्षेत्रीय भाषा का प्रभाव, न संस्कृत की जटिलता। यह उच्च स्तर की हिंदी परन्तु जनमानस की भाषा थी जिसे सबने सुना और समझा भी। शुरू के ऐतिहासिक धारावाहिकों में एक महत्वपूर्ण धारावाहिक डॉ. चन्द्रप्रकाश द्विवेदी का 'चाणक्य' रहा। शुद्ध हिंदी के गरिमामयी रूप को भी दर्शकों ने ख़ूब सराहा।

'हम लोग', 'बुनियाद', 'रामायण', 'महाभारत', 'चाणक्य' की भाषा सरल रही या जटिल पर हिंदी रही। अच्छी भाषा के प्रसार में कविसम्मेलनों के योगदान को भी नकारा नहीं जा सकता। इसके बाद कई हिंदी धारावाहिकों ने क्षेत्रीय भाषा को भी शामिल कर लिया। 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो' धारावाहिक में हिंदी एक नये लहजे में बोली। उस धारावाहिक की लेखिका रेखा बब्बल का कहना है, 'हिंदी को लोकप्रिय बनाने में जब हम टेलिविज़न और फ़िल्मों की

बात करते हैं तो सबसे पहले मैं यह कहना चाहूंगी कि अगर हम भारत की बात करें तो अलग-अलग क्षेत्रों में जहां क्षेत्रीय भाषा बोली, सुनी और समझी जाती है, वहां टेलिविज़न व सिनेमा के माध्यम से हिंदी ने अपनी जगह बनाई है। अब आप किसी भी गांव में चले जाएं, वहां के निवासी आपको बहुत ही सुविधाजनक ढंग से हिंदी में बातचीत करते दिखाई देंगे। वहीं जहां हम भारत के बाहर की बात करते हैं तो कई जगहों पर आपको हिंदी फ़िल्मों के गाने गुनगुनाते हुए मिल जाएंगे। कहीं-कहीं जिस चाव से लोग हिंदी गानों पर नृत्य सीख रहे हैं, गीत सीख रहे हैं, उनको देखकर सहज ही हैरानी के साथ-साथ खुशी भी होती है। फ़िल्म व टी.वी. ने हिंदी भाषा के अलग-अलग स्वरूप को लोगों के समक्ष पहुंचाया है। जब आप कोई ऐतिहासिक फ़िल्म या धारावाहिक देखते हैं तो सहज ही आप उस युग में पहुंच जाते हैं और मनोरंजन के साथ-साथ आपको उस युग की भाषा का ज्ञान भी होता है। कई बार हिंदी भाषा के साथ अत्याचार भी किया जाता है। ठीक है, आप हिंदी को सहज बनाकर लोगों के सामने रखें पर हिंदी की हत्या कर दें ये तो अन्याय है। हिंदी का स्वरूप क्षत-विक्षत न हो, इस बात का हम टेलिविज़न व फ़िल्म वालों को खास ध्यान रखना चाहिए।'

फ़िल्म और टेलिविज़न की दुनिया की एक विडम्बना यह भी है कि हिंदी फिल्मों से रोजी-रोटी, मान-सम्मान और यश कमाने वाला वर्ग स्वयं हिंदी का प्रयोग करने में हिचकिचाता है।

हिंदी फ़िल्मों पर अक्सर हिंदी भाषा को भ्रष्ट करने का आरोप भी लगाया जाता रहा है। विशेषकर फ़िल्मी गीतों पर। जैसा हम पाठ्यपुस्तक में पढ़ते थे कि 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' उसी तरह फ़िल्मों पर भी यही बात लागू होती है। ये बात सही है कि यह एक जन माध्यम है इसीलिए इसमें प्रयोग होने वाली भाषा भी सरल और आसान होती है। गूढ़ साहित्य की अपेक्षा यहां नहीं की जा सकती। ये भाषा, बदलाव और विस्तार को अपने अंदर समेट लेती है। दूसरी भाषाओं के छींटे पड़ते हैं तो हिंदी का पट भी बढ़ता है। हिंदी बहुत बड़े दिल की भाषा है और रहेगी।

chitra_desai@yahoo.com

लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के शोधार्थी हैं। दिसम्बर 2013 की नेट परीक्षा में उन्होंने पूरे भारत में प्रथम स्थान पाया। नाट्यकला एवं फ़िल्म अध्ययन, 2014, एम.ए. में वे स्वर्ण पदक विजेता रहे।

हिंदी की बहुरंगी छटाएं

अभिषेक त्रिपाठी

यदि भारत में कुछ अलग, ख़ास और जनसमुदाय को सबसे ज़्यादा अपनी ओर खींचने वाले क्षेत्रों की फेहरिस्त बने तो सिनेमा उसमें सबसे सशक्त हस्ताक्षर के तौर पर उभरेगा। भारत में सिनेमा की स्थिति और भारतीयों पर उसके प्रभाव का अंदाजा, बॉक्स-ऑफिस कलेक्शन का आंकड़ा, सिनेजगत से जुड़े लोगों का रसूख, उनके प्रति भीड़ की दीवानगी और सिनेमाई संस्कृति की आम जीवन में बढ़ती पैठ को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

भारत में सिनेमा का अभिप्राय मायानगरी मुम्बई में निर्मित, अमिताभ बच्चन, आमिर, हेमा, दीपिका आदि-आदि के अभिनय से गुलजार केवल उस सिनेमा मात्र से ही नहीं है जो बॉलीवुड अर्थात मुंबइया सिनेमा अर्थात हिंदी सिनेमा के रूप में ख्यात है, अपितु इसका फलक भारत की विविधता को मुखरित करती तमाम क्षेत्रीय भाषाओं में फल-फूल रही और वहाँ की विशिष्टताओं को सेल्यूलाइड पर उकेरती उन फ़िल्मों तक भी फैला है जो मराठी, बंगला, तमिल, तेलुगू, मलयालम, भोजपुरी आदि भाषाओं में संबंधित भाषा क्षेत्रों में प्रदर्शित हो रही हैं। भारतीय सिनेमा का संसार काफी व्यापक है और मुम्बई में बनने वाला सिनेमा उसका एक अंश मात्र; बावजूद इस तथ्य के मुम्बइया सिनेमा ने अपनी भाषा, विशालकाय दर्शकों में बनी खुद की पैठ और स्वयं द्वारा गढ़ी जाने वाली नित नये-नये प्रतिमानों की बदौलत भारतीय सिनेमा के मुख आवरण के रूप में स्वयं को स्थापित कर लिया है। यही कारण है कि व्यवहार में अक्सर लोग मुंबइया सिनेमा को ही समग्र भारतीय सिनेमा मानने की भूल कर बैठते हैं!

मुंबइया सिनेमा यानी मुम्बई में बनने वाली फ़िल्में! भारत में विविध भाषाओं में फ़िल्में तैयार होती हैं, यथा हिंदी, तमिल, मलयालम, बंगला, मराठी आदि। इसमें अलग-अलग भाषाओं के फ़िल्म निर्माण का अलग-अलग केंद्र है, जैसे चेन्नई, तमिल फ़िल्मों का केंद्र है तो कोलकाता, बंगला फ़िल्मों का, ठीक इसी तरह मुम्बई, हिंदी फ़िल्मों का मूल केंद्र है। अमेरिकन फ़िल्म इण्डस्ट्री 'हॉलीवुड' की तर्ज पर हिंदी सिनेमा ने भी अपने केंद्र मुम्बई के पुराने नाम बम्बई और हॉलीवुड को एक साथ रखकर उसमें से कुछ अक्षर, मात्राओं को जोड़-घटाकर खुद के लिए 'बॉलीवुड' शब्द की सृष्टि की। भारत में अन्य क्षेत्रीय सिनेमा उद्योगों ने भी इसी तर्ज पर अपने नाम टॉलीवुड, कॉलीवुड आदि रख लिए।

हिंदी सिनेमा 1913 में अपने जन्म से लेकर अब तक कई पड़ावों से होकर गुजर चुका है, मूक

फ़िल्मों से लेकर सवाक् फ़िल्मों तक, सामान्य रंगीन फ़िल्मों से लेकर तकनीक से सराबोर आधुनिक फ़िल्मों तक! करोड़ों की दर्शक संख्या वाला यह उद्योग उतार-चढ़ाव के कई रंगों से गुजरते हुए आज इस मुकाम पर है कि इससे प्रस्फुटित रोशनी की चमक सात समुद्र पार भी बिखरी हुई देखी जा सकती है। हिंदी फ़िल्मों ने 21वीं सदी में कई नई किंदवंतियां गढ़ी हैं। कमाई के मामले में आज अरबों का जादुई आंकड़ा छूना हिंदी फ़िल्मों के लिए एक आम बात है। हिंदी फ़िल्में भाषाई अड़चनों को लांघते हुए संपूर्ण भारत में अपना प्रभाव जमाने के साथ अब विदेशों में भी अपना डंका पीटने लगी हैं। हिंदी फ़िल्मों का यह कदापि मतलब नहीं कि वह संस्कृतनिष्ठ एवं शुद्ध हिंदी का प्रयोग करने वाली फ़िल्में हैं। सामान्यतया हिंदी फ़िल्मों की भाषा उत्तर और मध्य भारत में बोली जाने वाली दिन-प्रतिदिन की भाषा है जिसमें उच्चारण से लेकर शब्दों के घुमाव तक में क्षेत्रीयता अभिव्याप्त है। उदाहरणार्थ तमाम फ़िल्मों में चित्रित मुंबइया समाज के अधोलिखित किस्म के संवादों को देखा जा सकता है—

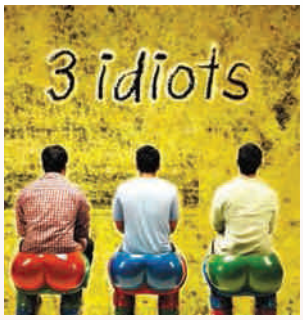

टाइम खोटी मत कर / चल कल्टी ले . . . मुंबई में मौजूद समाज विशेष (अपराधी/अशिक्षित) को निरूपित करती कुछ फ़िल्मों के संवाद— अपुन ने एक सौ पंद्रह घर खाली करवाया / बावन किडनैपिंग किएला है / कम से कम ढाई सौ हड्डी तो तोड़ेला रहेंगा / पर कभी अंदर नहीं आया / फ़र्स्ट टाइम, फ़र्स्ट टाइम किसी को सॉरी बोला / डाइरेक्ट अंदर ! – फ़िल्म लगे रहो मुन्नाभाई।

ग्रामीण परिवेश को चित्रित करती एक फ़िल्म का संवाद– गोरे पतलून पहन के ई खेल का क्रिकेट क़हत है / और हम लंगोटी बांध के गिल्ली-डंडा । – फ़िल्म लगान। कुछ ऐसे ही अन्य संवाद जिसे मानक हिंदी नहीं कहा जा सकता– तू बड़ा मज़े ले रिया है। – फ़िल्म डेल्ही बेली। ऐसे टुकुर टुकुर का देखत, पहचाने नहीं का हमका, हम पीके हूं पीके – फ़िल्म पीके।

हिंदी फ़िल्मों की इस तरह की भाषा को कोई नया नाम दिए बगैर हम सरलता से हिंदी कह देते हैं, परंतु इस हिंदी और साहित्यिक हिंदी में विभेद है। ऊपर से यह भेद तब और बढ़ जाता है जब हम इसमें अंग्रेजी के शब्दों या पूरे के पूरे अंग्रेज़ी वाक्य की ही निरंतर मौजूदगी से दो-चार होते हैं। उदाहरणार्थ इस तरह के संवादों को देखा जा सकता है—पुष्पा आई हेट टीयर्स... इन्हें पोछ डालो – फ़िल्म अमर प्रेम। तुम्हारी एक्स्पायरी डेट खत्म हो गई है – फ़िल्म प्लेयर्स। ऑल इज़ वेल – फ़िल्म थ्री ईडियट्स।

हिंदी और अंग्रेजी के इस तरह के मिश्रित भाषाई रूप को 'हिंग्लिश' कहा जाता है। 'हिंग्लिश' का बढ़ता चलन हिंदी फ़िल्मों के लिए अब आम बात है। यहां तक कि फ़िल्मी गीतों में भी अंग्रेजी का खूब प्रयोग हो रहा है। उदाहरणार्थ कुछ गाने प्रस्तुत हैं- 2007 में प्रदर्शित फ़िल्म 'भूल भूलैया' का गाना— तेरी आंखें भूल भुलैया, बातें हैं भूल भुलैया, तेरे सपनों की गलियों में, आइ कीप लुकिंग फॉर यू बेबी. . . तेरे सपनों की गलियों में, यू कीप ड्राइविंग मी सो क्रेजी। दिल में तू रहती है, बेताबी कहती है, आइ कीप प्रेयिंग ऑल डे. . . ऑल डे. . . ऑल नाइट लांग, हरे राम हरे राम, हरे कृष्णा हरे राम ! 2012 में प्रदर्शित फ़िल्म 'कॉकटेल' का गाना— तुम्हीं दिन चढ़े, तुम्हीं दिन ढले, तुम्हीं हो बंधु, सखा तुम्हीं . . . ऐव्री टाइम ऐव्री मिनट ऑल द डे, तुम्हीं हो बंधु सखा तुम्हीं!

हिंदी फ़िल्मों के गाने में अंग्रेज़ी के शब्दों के प्रयोग की यह परंपरा आज की नहीं है अपितु पहले भी इस तरह की कोशिशें होती रही हैं। यह अलग बात है कि 21वीं सदी में इसमें काफी तेजी आ गई है। उदाहरण के लिए कुछ 1956 में बनी हिंदी फ़िल्म 'चोरी चोरी' का गाना प्रस्तुत है— ऑल लाइन क्लियर, आगे बढ़ो आगे चलो, छोटी सी ये अलटन पलटन, फौज है मेरे घर की, साथ हमारे तोप का गोला, बात नहीं है डर की, ऑल लाइन क्लियर!

फ़िल्में प्रायः सामान्य जन के लिए होती हैं, अतः उसमें बोलचाल की सामान्य भाषा का प्रयोग स्वाभाविक है भी। कथानक, उसके क्षेत्र, काल तथा परिवेश के अनुसार ही फ़िल्म में संवाद गढ़े जाते हैं। चरित्र की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक पृष्ठभूमि के अनुसार हिंदी के अलग-अलग संस्करण बॉलीवुड की फ़िल्मों में देखे-सुने जा सकते हैं। एक ही फ़िल्म में भिन्न-भिन्न चरित्र अलग-अलग तरह की हिंदी बोलते हैं। एक ही फ़िल्म में संभव है कि नायक दूसरे तरह की हिंदी बोले, नायिका दूसरे तरह की, मालिक दूसरे तरह की तो नौकर दूसरे तरह की! पढ़ी-लिखी नई पीढ़ी को हिंदी के साथ अंग्रेजी के शब्दों का बहुतायत में प्रयोग करते हुए दिखाया-सुनाया जाता है। ये लोग हिंदी के साथ धड़ल्ले से अंग्रेजी बोलते हुए भी दिख पड़ते हैं। इसप्रकार का भाषा-प्रयोग चरित्र को सजीव बनाने तथा उन्हें दर्शकों के वास्तविक मनोभावों से जोड़ने के लिए अपरिहार्य भी है।

यह हिंदी फ़िल्म और उसके विशालकाय दर्शकों का जलवा ही है कि अब विदेशी फ़िल्म निर्माता भी हिंदी सिनेमा, इससे जुड़े दर्शकों और उनकी भाषा को समझने और उसे महत्ता देने के लिए मज़बूर हैं। सबूत के तौर पर डेनी बॉयल जैसा निर्देशक मुंबइया पृष्ठभूमि पर स्लमडॉग मिलेनियर जैसी फ़िल्में बनाता है और वह फ़िल्म एकेडमी अवार्ड भी जीत लेती है। भारत में फ़िल्म प्रेमियों के बड़े बाज़ार को देखते हुए हॉलीवुड भी अपने फ़िल्मों की हिंदी भाषा में डबिंग कर उसे भारत में प्रदर्शित कर रहा है।

pingaakshaa@gmail.com

लेखक टीवी पत्रकार, कवि, उपन्यासकार के अलावा सिनेमा पर सामयिक और अनुशीलनात्मक लेखन करते हैं। भारत सरकार के प्रकाशन विभाग से उनकी पुस्तक 'समय, सिनेमा और इतिहास' प्रकाशित हुई है। फ़िलहाल वे 'समय' चैनल में प्रोड्यूसर हैं।

'बड़े-बड़े देशों में...' हिंदी!

संजीव श्रीवास्तव

दुनिया के सबसे शक्तिशाली देश के राष्ट्रपति बराक ओबामा गणतंत्र दिवस के मौके पर भारत आते हैं और भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की मौजूदगी में अपने सार्वजनिक संबोधन में 'नमस्ते' और 'जय हिंद' के साथ-साथ जिस एक फ़िल्मी संवाद पर भारतवासियों का सबसे अधिक दिल जीत लेते हैं वह संवाद हैं 'बड़े-बड़े देशों में...'। इसी भाव के साथ प्रेसिडेंट बराक ओबामा अमेरिका की धरती पर अभिनेता शाहरुख खान और उनकी ही नहीं, बल्कि तमाम हिंदी फ़िल्मों की लोकप्रियता का संकेत देने से भी नहीं चूकते। बराक ओबामा का यह संबोधन भारतीयों ख़ास तौर पर हिंदी भाषी जनता को सर्वथा नवीन गौरव का अहसास कराता है। दरअसल अमेरिका में भी हिंदी जिस तरीके से बॉलीवुडिया फ़िल्मों के माध्यम से वहां की न केवल एशियाई बल्कि यूरोपीय और अमेरिकी जनता की जुबान पर भी अपनी छाप और रंग जमाने लगी है, उससे यह संकेत साफ है कि हिंदी भाषा का प्रभाव केवल भारत या भारतीय उप-महाद्वीपों तक सीमित नहीं रहा।

टीवी समाचार हों, टीवी धारावाहिक हों या हिंदी फ़िल्में और हिंदी गाने, सबने सात समंदर पार हिंदी भाषा का मान बढ़ाया है और रचनात्मकता के साथ-साथ खुद में बाज़ार को पकड़ने की बड़ी ताकत होने का भी अहसास कराया है। वास्तव में हिंदी सिनेमा ने हिंदी भाषा को अब ग्लोबल बना दिया है। बराक ओबामा की जुबान पर हिंदी फ़िल्म के संवाद निश्चय ही अंतरराष्ट्रीय मंच पर हिंदी की बड़ी जीत थी। यह उन देशों और उन लोगों के लिए हिंदी का फीडबैक था, जो हिंदी को लेकर संकोच करके रह जाते हैं।

गौरतलब है कि 'बड़े-बड़े देशों में...' जिस अति लोकप्रिय हिंदी फ़िल्म का मशहूर संवाद है, उसका नाम है 'दिल वाले दुल्हनिया ले जाएंगे' और कोई आश्चर्य नहीं कि राज कपूर की 'आवारा', 'श्री420', 'संगम', महबूब खान की 'मदर इंडिया', के.आसिफ की 'मुगल-ए-आजम', देवानंद की 'गाइड', धर्मेंद्र-संजीव कुमार की 'शोले', अमिताभ बच्चन की 'दीवार', मिथुन चक्रवर्ती की 'डिस्को डांसर' के बाद शाहरुख खान की 'दिल वाले दुल्हनिया ले जाएंगे' एक ऐसी फ़िल्म के तौर पर हमारे सामने आती है जो लोकप्रियता की हर सीमा को लांघ कर अपनी देसी परंपरा और देसी भाषा के ठाठ की ठसक का अहसास उस दुनिया को भी करा

जाती है, जहां हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं को समृद्ध मानने से एक तरह का परहेज रहा है।

पश्चिम की दुनिया के दृष्टिकोण से इस परहेज को हम नस्लवादी भी कह सकते हैं। इस परहेज में समृद्ध देशों का वास्तव में अपना एक नज़रिया था, लेकिन जब उसी भाषा की पहुंच और ताकत का बोध विकसित और शक्तिशाली देशों के कारोबारियों और फ़िल्मकारों को बखूबी होने लगा तो वे ना केवल हिंदी में अपनी भाषा की फ़िल्मों को धड़ल्ले से डब कराने लगे बल्कि हिंदी क्षेत्र के पात्रों और कहानियों का चुनाव भी करने लगे और कोई हैरत नहीं कि उनके इस चुनाव ने व्यावसायिक सफलता भी खूब अर्जित की। यानी पश्चिम ने मान लिया कि हिंदी भाषा पिछड़े क्षेत्र की भाषा नहीं रही। संस्कृत जैसी प्राचीन भाषा की कोख से जन्मी, हिंदी कवींद्र गुरुदेव की भाषा में तमाम आयातित और सत्तासीन भाषाओं और देश की कोने-कोने की बोलियों का एक ऐसा स्वाभाविक प्रवाह बन गई है जहां उम्मीद की किरणें अब नई चकाचौंध भरने लगी हैं और जिसकी रोशनी में पूरा समाज रोशन हो रहा है। इस मायने में बराक ओबामा के मुंह से निकला फ़िल्मी संवाद 'बड़े-बड़े देशों में…' सार्थक साबित हो गया।

इसी संदर्भ में एक लोकप्रिय गीत मौजूं है 'दिल ले गई तेरी बिंदिया, याद आ गया मुझको इंडिया, मैं कहीं भी रहूं इस जहान में, मेरा दिल है हिंदुस्तान में...' या फिर 'चल भाग चलें पूरब की ओर... प्यार मेरा ना चोरी कर ले ये पश्चिम के चोर रे…' ऐसे कई गीत हिंदुस्तान की उस परंपरा, भाषा और संस्कृति की ओर जिस तरीके से लोकप्रियतावादी या मनोरंजनवादी शैली में इशारा करती है, उसमें वाकई दुनिया को मानना पड़ा कि दिल वाले ही दुल्हनिया को ले जाते हैं, जहां लोग साथ-साथ रहते हैं और हम इंडिया वाले कहकर इतराते हैं गोकि महान शोमैन राज कपूर ने सालों पहले गाया 'मेरा जूता है जापानी..sss.. फिर भी दिल है हिंदुस्तानी...।' यानी दुनिया के पटल पर हिंदी की पताका को लहराने की परंपरा भी नई नहीं है।

'आवारा' से 'पीकू' तक

वैसे बात 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे' तक ही सीमित नहीं है। हाल के कुछ सालों में विदेशों में बॉलीवुड की और भी कई फ़िल्मों ने बेहद धमाल मचाया है। हां, यह सही है कि इनमें शाहरुख खान की फ़िल्मों मसलन 'चेन्नई एक्सप्रेस' हो या कि उससे पहले 'माई नेम इज खान' और 'स्वदेश' इन फ़िल्मों ने एक अलग स्वरूप विकसित किया। आमिर की 'लगान', 'दिल चाहता है', 'थ्री इडियट', संजय दत्त की 'मुन्ना भाई एमबीबीएस', 'लगे रहो मुन्नाभाई' सलमान खान की 'हम साथ-साथ हैं', 'हम दिल दे चुके सनम', 'दबंग', 'बॉडीगार्ड', ऋतिक रोशन की 'कृष', 'कोई मिल गया', 'कहो ना प्यार है', 'जोधा अकबर', 'वीर-जारा' अजय देवगन की 'सिंघम', अक्षय कुमार और परेश रावल की 'हेराफेरी', 'ओ माई गॉड', अमिताभ बच्चन की 'चीनी कम', 'पा', ऐश्वर्या राय की 'देवदास', शबाना आजमी और नंदिता दास की 'फायर' या फिर लिविंग लीजेंड मिल्खा सिंह और मैरी कॉम के जीवन पर आधारित फरहान अख्तर और प्रियंका चोपड़ा द्वारा अभिनीत इसी नाम की फ़िल्मों ने विदेशों में हिंदी का परचम लहराने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

एशियाई देशों ख़ास तौर पर चीन, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, श्रीलंका और बर्मा में तो हिंदी फ़िल्मों का दबदबा है। हाल की प्रदर्शित अमिताभ बच्चन और दीपिका पादुकोण अभिनीत फ़िल्म 'पीकू' ने तो चीन में रिकॉर्ड सफलता हासिल की है। 'भाग मिल्खा भाग' और 'मैरी कॉम' ने जितनी प्रशंसा भारत में बटोरी उतनी ही अमेरिका, पाकिस्तान, चीन, जापान और मॉरीशस के दर्शकों ने इन फ़िल्मों को सराहा। पाकिस्तान के दर्शकों को हिंदी फ़िल्में देखने में कोई परेशानी नहीं होती क्योंकि भारतीय हिंदी को उन्हें समझने में जरा भी कठिनाई नहीं होती। म्यूजियम तुसाद में भारत के सितारों की प्रतिमा भी वास्तव में हिंदी भाषा की गौरवशाली प्रतिमा की स्थापना है। यह सिलसिला आगे भी जारी है।

छोटे पर्दे का बड़ा योगदान

छोटे पर्दे पर प्रस्तुत किए जा रहे मनोरंजन को हम सिनेमा से अलग नहीं कर सकते। अपनी गतिविधियों, उपलब्धियों और सफलताओं की बदौलत वे अब बड़े पर्दे के पूरक बन गए हैं। बड़े से बड़े फ़िल्म निर्माता और अभिनेता टीवी की लोकप्रियता के शरणागत हुए हैं। लिहाजा छोटे पर्दे पर प्रसारित होने वाले धारावाहिक, रियलिटी शो और चौबीस घंटे समाचार के सीधे प्रसारण ने भी हिंदी को ग्लोबल बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए उसमें गति प्रदान की है। याद कीजिए जब हिंदी में चौबीस घंटे के समाचार चैनल ने जोर नहीं पकड़ा था तब फिक्की, एसोचेम की गतिविधियां, अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म समारोह की ख़बरें, कोर्ट के फैसले, संसद की कार्यवाही क्या सीधे हिंदी में जानने को मिला करती थीं, शायद ही! क्या बिजनेसमैन और फिल्म प्रोड्यूसर टीवी पर हिंदी में बोलते देखे जाते थे, शायद ही कभी कभार। बहुत अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि आज से दो दशक पहले तक हिंदी केवल अनुवाद की भाषा हुआ करती थी। लेकिन आज ऐसा नहीं है तो केवल सिनेमा और टीवी की बदौलत। अब जानी-मानी हस्तियां अगर एक साथ दो भाषाओं (हिंदी और अंग्रेज़ी) में एक समान वक्तव्य देती हैं तो ज़ाहिर है इससे हिंदी को बड़ा आत्मबल मिला है। देश का हर वर्ग हिंदी समझने लगा है। उत्तर से दक्षिण तक ही नहीं, बल्कि हिंदी की ऐसी स्वीकार्यता देश की सीमाओं के बाहर अंतरराष्ट्रीय स्तर तक सगर्व हुई है।

sanjeevsdelhi@gmail.com

लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में प्रतिकुलपति हैं। वे हिंदी के प्रबल समर्थक एक राष्ट्रवादी चिंतक हैं। आपको अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मानों से अलंकृत किया जा चुका है।

स्वाधीनता और विकास के सन्दर्भ

प्रो. चित्तरंजन मिश्र

देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने वाले जननायकों ने भारत की जनता के सामने स्वाधीन भारत के जो सपने परोसे थे, उसमें एक सपना यह भी था कि स्वाधीन देश में राजकाज का सारा काम अपनी भाषा - अर्थात् हिंदी में होगा। यह जानते-समझते हुए भी कि भारत एक बहुभाषी देश है, और देश के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग भाषाएं व्यवहार में हैं। अगर हिन्दी को केन्द्रीयता मिली थी, तो इसलिए कि इससे जुड़े हुए लोगों की संख्या, इसका व्यवहार करने वालों की संख्या और इसका प्रसार देश के बड़े भूभाग में है।

आज हम यह महसूस कर सकते हैं कि हमारे जीवन के एकांत में भी, सड़क से लेकर शयनकक्ष तक में विज्ञान का सुविधाजनक और वांछित प्रवेश और हस्तक्षेप है, लेकिन यह भी अनुभव कर सकते हैं कि विज्ञान की पढ़ाई और तकनीक के इस्तेमाल में हमने अपनी भाषा -हिंदी का न्यूनतम इस्तेमाल किया है, जिसके कारण स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने वाले राष्ट्रनिर्माता मनीषियों ने स्वाधीन भारत में जिस स्वाधीन विवेक के नागरिक के निर्माण का सपना देखा था, वह अधूरा पड़ा हुआ है। उसके अधूरे होने के कारण हम हर बात में यूरोप और अमेरिका का मुंह ताकते रहते हैं।

हमें ऐसा वातावरण बनाने के लिए लगातार प्रयास करने होंगे कि हमारे वैज्ञानिक हिन्दी में सोचें-समझें, अपनी भाषा में पढ़ें-पढ़ाएं। वह हिन्दी के साथ कोई अन्य भारतीय भाषा भी हो सकती है। उन्हें भारतीय जनता और खुद अपने मन से यह भ्रम निकालना होगा कि विज्ञान की पढ़ाई और अनुसंधान अंग्रेज़ी के अतिरिक्त किसी और भाषा में हो नहीं सकते। दुनिया को बदलने वाले सभी महत्वपूर्ण अनुसंधान जर्मन, फ्रेंच, रूसी, चीनी और दूसरी भाषाओं में भी हुए हैं उन्हें अनुवाद के माध्यम से दूसरे देशों में पहुंचाया गया है। हमारे वैज्ञानिकों को यह अनुभव करना चाहिए कि वे अपने देश के लोगों के जीवन को खुशहाल करने के लिए अनुसंधान में प्रवृत्त हैं तो उन्हें अपने

निष्कर्ष और अपने पर्चे अपनी ही भाषा में लिखना छपवाना चाहिए। अक्सर यह बात सुनी जाती है कि हिन्दी में परिभाषिक शब्दावली नहीं है यह एक मिथ्या बात है।

वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग इतने दिनों से क्या खाक छान रहा है? उस पर करोड़ों रुपये का खर्च सरकार क्या इसीलिए कर रही है? और यदि शब्दों की कुछ कमी है तो हम उन्हें उसी मूल रूप में स्वीकार कर सकते हैं, जब कोई नया उत्पाद आएगा तो वह अपनी भाषा लेकर भी आएगा। हमें उसे अपनी भाषा के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। आज भी हमारी भाषा में, हमारे व्यवहार में कितने शब्द विदेशी मूल के हैं पर वे अनवरत व्यवहार के कारण इतने अपने हो गए हैं कि उनका विकल्प या पर्याय खोजने की ज़रूरत कभी महसूस ही नहीं होती है। आयोगों को भी चाहिए कि वे दूसरी भाषा के शब्दों के बदले नये शब्द गढ़ने की कवायद से बचें और उनके लिए हमारे देश की दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं में प्रचलित निकटतम अर्थ देने वाले शब्दों को कोश में और व्यवहार में भी जगह दें। जो लोग शब्दों के अभाव का रोना रोते हैं उन्हें चाहिए कि वे कोशों की ओर देखें। राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय स्वाभिमान की भावना के साथ थोड़ा और श्रम, थोड़ा और समय खर्च करें तो उनका भी काम आसान होगा और देश भी ताकतवर बनेगा।

'सीखे' नहीं 'सीखें' होना चाहिए

राहुल सांकृत्यायन जी ने ठीक ही कहा था कि 'हमारे देश के पढ़े लिखे लोग मेहनत नहीं करना चाहते और यह भी सोचते हैं कि शब्द स्वयं उड़-उड़कर उनके मुंह के पास आ जाएं' उन्होंने लिखा है– 'मैंने 'विश्व की रूपरेखा' में साढ़े चार सौ पृष्ठों में आधुनिक ज्योतिष, फ़िज़िक्स, रसायन, प्राणिशास्त्र और मनोविज्ञान के कितने ही गंभीर विषयों का विवेचन किया है। मुझे तो पारिभाषिक शब्दों की कोई कठिनाई महसूस नहीं हुई, हां कुछ नए शब्द गढ़ने की जरूरत पड़े तो वह तो सभी भाषाओं को पड़ती है और इसमें कुछ हर्ज भी नहीं है।'

विज्ञान और तकनीक हमारे समय में व्यवहार में आने वाली सबसे महत्वपूर्ण विधा, माध्यम और कहें कि भाषा भी है, तो हमें उसे अपने लिए अपनी भाषा में ढालना पड़ेगा और यदि ऐसा नहीं किया जाता तो एक 'स्वाधीन सर्वप्रभुतासम्पन्न गणराज्य' के रूप में हमारा विकास बराबर संकटग्रस्त रहेगा। राष्ट्रवादी विचारकों ने बहुत गहराई से सोचकर यह संदेश दिया था कि विज्ञान की पढ़ाई भी अपनी भाषा में होनी चाहिए किंतु इसे तब की सरकारों ने इस संदेश को अनसुना किया गया।

वैज्ञानिकों के मन में और इसीलिए सभी अधकचरे पढ़े-लिखे लोगों के मन में यह भ्रम घर कर गया है कि अंग्रेज़ी विश्वभाषा है और ज्ञान-विज्ञान की भाषा है। सच यह है कि कोई भी एक भाषा समूचे ज्ञान-विज्ञान की भाषा नहीं होती और कोई भी भाषा विश्वभाषा नहीं होती। वैज्ञानिकों और विज्ञान के शिक्षकों को, देश के आम जनमानस में यह विश्वास अपने कार्यों और व्यवहार से विकसित करना चाहिए कि कोई भाषा विश्वभाषा नहीं होती है। जर्मनी, फ्रांस, रूस, चीन और जापान में सारी पढ़ाई और अनुसंधान अपने देश की भाषा में होते हैं, इसीलिए वे आज भी नई-नई खोजों के सिरमौर बने हुए हैं। न्यूटन, पैथागोरस, आर्किमीडिज, मार्क्स, डारविन, आइंस्टीन जैसे वैज्ञानिक विचारकों में किसकी भाषा अंग्रेज़ी थी? इस सन्दर्भ में मुझे चिंतक-राजनीतिक डा. राममनोहर लोहिया के जीवन का एक प्रसंग याद आ रहा है जिसकी चर्चा उन्होंने खुद की है। उन्होंने लिखा है कि जब वे डॉक्टरेट की उपाधि के लिए जर्मनी गए तो इस निश्चय के साथ गए कि वे अपना कार्य उस समय के सबसे बड़े विद्वान प्रो. जोम्बार्ट के साथ पूरा करेंगे। जब वे प्रो. जोम्बार्ट से मिले और उन्होंने अपने विषय की रूपरेखा प्रो. जोम्बार्ट के सामने अंग्रेज़ी में रखी तो उन्होंने कहा कि बेटे! मुझे अंग्रेज़ी नहीं आती है, इसलिए मैं तुम्हें काम नहीं करा पाऊंगा। डा. लोहिया आगे लिखते हैं कि उसके बाद मैंने वही किया जो किसी भी हयादार आदमी को करना चाहिए। मैं अपने

कमरे में लौट आया और जर्मन सीखी, छ: महीने बाद में जब प्रो. जोम्बार्ट से मिला तो इतनी जर्मन सीख ली थी कि अपनी पूरी बात जर्मन में रख सकता था।' डॉक्टर लोहिया का मानना था कि अपने विषय का असली विद्वान ही साहस के साथ यह कह सकता है कि उसे अंग्रेज़ी नहीं आती है और अपनी भाषा में पढ़-लिखकर ही कोई अपने विषय का सबसे बड़ा विद्वान हो सकता है। अपनी भाषा के संदर्भ में डॉ. लोहिया का यह अनुभव बहुत प्रेरक, मार्मिक और अर्थपूर्ण है।

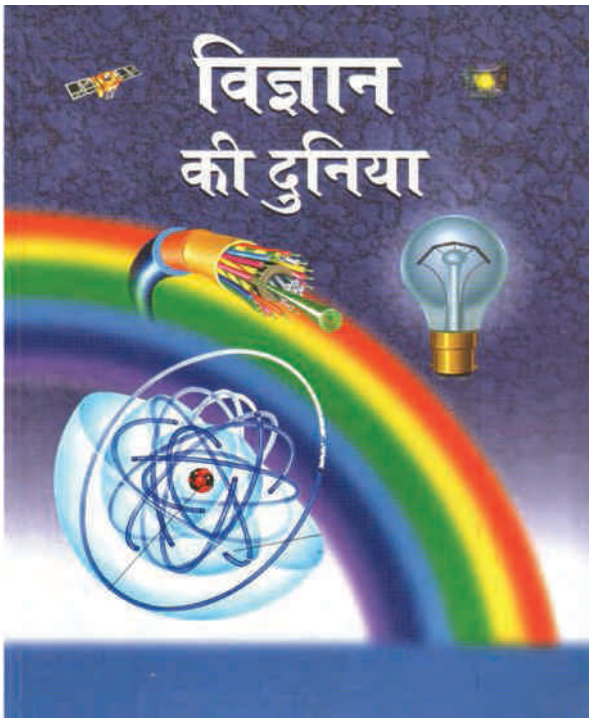

आज नए भारत के निर्माण की यह सबसे बड़ी जरूरत है कि उच्च शिक्षा का समूचा माध्यम हिन्दी को बनाया जाए ताकि अपने देश की जरूरत के अनुसार नई-नई खोजें हो सकें, अपने देश के करोड़ों लोगों की जरूरत को, उनकी पीड़ा को समझा जा सके। यह काम तब तक ठीक से नहीं हो सकता, जब तक विज्ञान की, इंजीनियरिंग की और चिकित्सकों की पढ़ाई अपनी भाषा में न हों। आज इस संकल्प की जरूरत है कि दुनिया में होने वाले सभी महत्वपूर्ण अनुसंधानों को हम अपनी भाषा में उपलब्ध कराएं ताकि हमारे तरुण वैज्ञानिक विज्ञान की दुनिया की अद्यतन हलचलों को समझ सकें और अपनी शोध परियोजनाओं को देश की जरूरतों के अनुसार व्यवस्थित कर सकें। देश में सच्चे अर्थों में लोकतंत्र, स्वाधीनता और समानता कायम करने के लिए हिन्दी को उच्च शिक्षा और विज्ञान शिक्षण तथा अनुसंधान का माध्यम बनाना ही पड़ेगा। आज हमारी मुख्य चिन्ता यदि विकास की है तो हमें और भी गंभीरता से विचार करना चाहिए कि हम विकास का जो मानक तय करेंगे वह औपनिवेशिक पूंजीवादी ताकतों द्वारा बनाया गया होगा या देशी लोकतांत्रिक व्यवस्था द्वारा जिसमें संवैधानिक मूल्यों के अनुसार विकास का समान अवसर सबको उपलब्ध कराया जा सके। यदि हम सही विकल्प की ओर अग्रसर होना चाहते हैं तो जीवन के सभी अंगों, अवयवों को प्रभावित और संचालित करने वाले विज्ञान तथा तकनीक को अपनी महान भारत-भूमि की जरूरतों के अनुसार अपनी राजभाषा, जो जन-भावनाओं में राष्ट्रभाषा के रूप में सम्मानित है, से विज्ञान को जोड़ना ही पड़ेगा।

chittranjanmishra@gmail.com

लेखक सुपरिचित बालसाहित्यकार और कवि हैं। वे पिछले कई दशक से हिन्दुस्तान टाइम्स समूह से जुड़े हुए हैं। विभिन्न टेलीविज़न चैनलों पर वे अपने कार्यक्रम देते आ रहे हैं।

बाल-विज्ञान लेखन के आयाम

अशोक मनोरम

बाल-विज्ञान लेखन और विज्ञान पत्रिकाएं हमारे देश में हमेशा से छपती रही हैं। किशोरों तथा युवकों को ये पत्रिकाएं प्रगतिशील भी बनाती रही हैं। ऐसा नहीं है कि विज्ञान कथाएं आजकल ही सराही जाती हैं। विज्ञान लेख, अंतरिक्ष की जानकारियां, स्वास्थ्य-टिप्स, मनोरंजक विज्ञान पहेलियां और नई-नई विज्ञान की खोजों को दर्शाते आलेख, पाठकों, ख़ास कर किशोरों व बच्चों को हमेशा कौतूहल देते रहे हैं।

यह सही है कि वर्तमान समय में विज्ञान-कथाएं अक्सर ऐसी होती हैं, जिसमें कहानी रहती है, भाषा भी होती है, मनोरंजन होता है, पर विज्ञान कहीं नजर नहीं आता। विज्ञान लेखन में कुछ नाम ऐसे हैं, जिन्हें विज्ञान लेखन का भीष्म कहा जा सकता है। स्वर्गीय गुणाकर मुले को इस मौके पर याद करना, लेखन के कर्मकांड को ऊंचाई देने जैसा लगता है। गुणाकर मुले ने जहां विज्ञान की नजर से 21 वीं सदी का भविष्य देखा, वहीं अपने आलेखों में कल्पना के साथ विज्ञान के रासायनिक व भौतिकी व्याकरणों को सामने रखकर गणितीय फलितार्थ भी निकाला है।

दरअसल नई पीढ़ी के बच्चों व तरुणों को संभवतः यह जानकारी नहीं है कि भविष्य में हमें किन संकटों का सामना करना पड़ेगा। उनके हल क्या होंगे, आबादी बढ़ रही है, तो भोजन की समस्या क्या होगी, ऊर्जा के स्रोत, ज्ञान-भंडार का विस्फोट, भविष्य की अंतरिक्ष यात्राएं, संचार के साधनों, प्रदूषण के फैलाव तथा नई पीढ़ी के मनोरंजन में होते बदलाव और नई आने वाली समस्याओं से निजात की बातें।

विज्ञान जिस तरह बग़ैर तर्कों के नहीं फल सकता। उसी तरह विज्ञान कथाकार/लेखक और विज्ञान पर टिप्पणी करने वाले वैज्ञानिकों, विज्ञान शोधार्थियों से यह अपेक्षा की जाती है कि उन्हें वर्तमान तक ज्ञात-मान्य वैज्ञानिक जानकारियों का सम्यक ज्ञान हो और वे अपनी रचना में उनका उल्लंघन न होने दें। अगर उल्लंघन होता भी है तो उसके कारण और नए नियम के समर्थन में यथा आवश्यक दलील के साथ प्रस्तुत करें। इस तरह की विज्ञान कथाओं के लेखक देवेंद्र मेवाड़ी की

चर्चा ज़रूरी है।

विज्ञान लेखकों की एक लंबी फेहरिस्त है, जिनके द्वारा विज्ञान लेखन में सफलता के कई सोपान बनते जा रहे हैं। विज्ञान का मतलब मात्र ज्ञान की विशेषताएं नहीं होतीं। विज्ञान अर्थात किसी बात को तह तक समझने की क्षमता में अग्रसर विकास की कल्पना भी हो। उसे समझाया जा सके, समझा जा सके। विज्ञान की कई पत्रिकाएं हैं, जो विशिष्ट ज्ञान से लोगों की सोच में क्रांतिकारी परिवर्तन की राह खोज रहे हैं, खोज चुके हैं। इन पत्रिकाओं में बच्चों, बड़ों, मंदबुद्धि और अल्पक्षमता वाले बुजुर्ग और असामान्य जनों के लिए शिक्षा, सलाह तथा जानकारीपूर्ण मनोरंजन देते हैं।

आज की विज्ञान से जुड़ी पत्रिकाओं में सामाजिक तथा प्राकृतिक जीवों, वस्तुओं, जिनके बारे में कम जानकारी रही हो और कुछ अज़ब-गज़ब पहेलियों/ कथाओं/ गणित के बुझौवल समीकरणनुमा पहेली के साथ-साथ गणित के समीकरणों को पहेलीनुमा सुझाव देने की सीख मिलती रही है। प्रकृति के कई उपादान जैसे सूर्य, चंद्रमा आदि ग्रह, पृथ्वी का धरातल, आकाश प्रकृति के अन्य रहस्यों को समझने के लिए एड़ी-चोटी के प्रयास करते-करते थक जाने के बाद जब उसके रहस्य को किसी पहेली का हल मिल जाता है तो लगता है एकाएक बुद्धि की बटलोही में जिन्न का चिराग जलने लगा। विज्ञान दरअसल ज्ञान का विकास है। ज्यों-ज्यों हम प्रयोग करते हैं, त्यों-त्यों हमारी बुद्धि प्रखर होती है और एक समय ऐसा आता है कि अपनी मेधा-शक्ति से प्रकृति की पहेलियों को बूझने लगते हैं, फिर लोगों को भी समझाने लगते हैं।

हिंदी-विज्ञान लेखन का इतिहास बहुत ही पुराना और समृद्ध है। आयुर्वेद की भेषज, रसायन और शल्य क्रिया के लेखन में चरक, सुश्रुत, धनवंतरी आदि मानक चिकित्सक व चिकित्सा-पुस्तकों के लेखक रहे हैं। रसायन विज्ञान को लेकर कई बाल कथाएं लिखने वाले लेखकों में देवेन्द्र मेवाड़ी, देवव्रत, अभिज्ञान और रहस्य-रोमांच से विज्ञान का साथ देते हुए कुछ रहस्य की कथाएं लिखने में चंदामामा के लेखक अग्रणी रहे हैं। राहुल सांकृत्यायन ने एक जगह लिखा है कि 'तिब्बत के पठारी हिस्से में सोने की खोज करते हुए कई लामा उन दिनों दिखे, जब वे तिब्बत की यात्रा पर थे। नई खोजों से भी इन बातों की पुष्टि हुई है। हितोपदेश, पंचतंत्र के साथ-साथ एक ज़माना आया था, जब बाल पॉकेट बुक्स में रहस्य-रोमांच के पीछे का विज्ञान समझते हुए कई दर्जन कहानियां लिखी गईं।

बच्चों की पत्रिका 'बालक' लहेरिया सराय से आज़ादी के पहले प्रकाशित हुई थी। उसकी लोकप्रियता का आलम यह था कि लहेरिया सराय से निकलने वाली पत्रिका का प्रकाशन पाठकों की मांग पर पटना से शुरू किया गया। संपादक थे, आचार्य शिवपूजन सहाय। लखनऊ से 50-60 के दशक में 'राष्ट्रधर्म' नामक पत्रिका का संपादन पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने भी किया था। 'मेला', 'नंदन', 'पराग', 'चंपक', 'बाल भारती', 'विज्ञान प्रगति', 'विज्ञान लोक' आदि पत्रिकाएं सामान्य बाल पत्रिकाएं हीं थीं।

विज्ञान पत्रिकाओं के संपादकों में डा. जगदीश पंत, प्रकाश मनु, मृणाल पाण्डेय, क्षमा शर्मा, वर्तमान 'नंदन' की संपादिका जयंति रंगराजन, जयप्रकाश भारती, कन्हैयालाल नंदन, राधेश्याम प्रगल्भ, अवधनारायण मुद्गल, दिविक रमेश, बाल कवि वैरागी आदि अनेक सिद्धहस्त रचनाकार चर्चित रहे। विज्ञान पत्रिकाओं में 'विज्ञान प्रगति' लम्बे समय से निरंतर निकल रही है। बाल मनोविज्ञान और बच्चों के विकास में जहां पंचतंत्र और बेताल पच्चीसी का उल्लेख अति आवश्यक है, वहीं चंदामामा कथा लेखन में विज्ञान और रहस्य को लेकर अग्रणी रहा। भूत-पिशाच की कहानियों के अंदर भी विज्ञान की खोज और अंधविश्वास से लड़ने का माद्दा विज्ञान लेखकों ने लोगों के मनोविकार की गुत्थियां सुलझाने के दरम्यान बताया। इस साहित्य से यह भी पता चला कि मनोविकारों के शमन हेतु विज्ञानपरक रचनाओं को 'थेरेपी' के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

अंतरिक्ष की सैर और पाताल की गहराई को भी विज्ञान-कथाओं में कल्पनाशीलता के माध्यम से जहां लोगों से रू-ब-रू कराया जाता रहा है, वहीं वनस्पति विज्ञान के फलों-फूलों तथा चिड़ियों की बुद्धि की कल्पना से कथा को आगे बढ़ाने का प्रयास युक्तियुक्त तरह से किया जा सका है। बाल कहानियों में बालमन की निश्छलता और कौतूहल को समझने में जहां चंदामामा और पराग अग्रणी पत्रिकाएं थीं, बालक से साहित्य की पहचान होती थी, वहीं नंदन की कथाएं तेनालीराम के माध्यम से बच्चों में प्राचीन परंपराओं को जीवित रखने में सक्षम रहीं।

हितोपदेश की कथाओं में कुछ कथाएं तो किशोरों के बीच कामशास्त्र की जानकारी भी देती नज़र आईं। पटना से एक पत्रिका प्रकाशित होती थी 'नर-नारी'। 'नर-नारी' पत्रिका किशोरों और नवयुवकों को काम मनोविज्ञान की शिक्षा से रू-ब-रू कराती थी। इसी के साथ-साथ बाल-मेला, बचपन, चकमक, बाल-भारती और चंपक आदि पत्रिकाएं घर-बाहर की दुनिया में वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी देती रही हैं।

ashok.manoram@livehindustan.com

लेखक विज्ञान और प्राच्य विद्या के अध्येता हैं। बच्चों के लिए ज्ञान और प्रौद्योगिकी के विषयों पर आपके लेखन को सराहा जाता है।

अद्भुत प्रतिभा के मानदंड — गुणाकर मुले

डॉ. हिरण्य हिमकर

विज्ञान का लेखन और विज्ञान का सामाजिकीकरण तराजू के दो पलड़े हैं और ये विकास की कहानी भी कहते हैं। दरअसल, विकास तभी कहा जा सकता है, जब विनाश की रोकथाम के लिए कुछ विशेष प्रयास, विशेष नज़रिए से किए जाएं। कोई भी लेखक महान तब होता है, जब उसकी प्रतिभा एकतरफा न होकर, बहुआयामी हो और वह करीने से हर व्यक्ति को अपनी बात समझाने का प्रयास करे।

विज्ञान लेखन यों तो सदियों से होता रहा है, पर हिन्दी में पुस्तकों और विज्ञान संबंधी बातों का संकलन करने की परिपाटी और रवायत पुरानी नहीं है। हां, वैदिक काल व पौराणिक काल और विभिन्न धर्मशास्त्रों में अपनी बात को खोजने-ढूंढ़ने की परंपरा आदिकाल से ही रही है, पर कुछ दुरूह खोजी कार्यों को करने के लिए जब श्रमसाध्य कलापों की आवश्यकता हुई तो लोगों ने अपने हाथ खींच लिए। कितनों की मेधा तो खुद-ब-खुद चूक गई। फिर भी कुछ विद्वान, गणितज्ञ, विज्ञानवेत्ता और अनुसंधानकर्ताओं ने अपनी जीवटता बनाए रखी और विज्ञान की शोध की कहानी को आगे बढ़ाते रहे। इन प्रगति-पथ के पथिकों में गुणाकर मुले का स्थान सर्वदा अग्रणी है और रहेगा भी।

गुणाकर मुले का जन्म महाराष्ट्र के अमरावती जिले के सिंधु बुजुर्ग गांव में 3 जनवरी, 1935 को हुआ था। कौन जानता था कि मराठी मूल के इस बालक में मेधा-शक्ति इतनी प्रबल होगी कि इसके द्वारा सैकड़ों पुस्तकों का प्रणयन हो पाएगा। ब्रह्माण्ड परिचय के द्वारा जहां दुनिया को निखिल आकाश-गंगा और ब्रह्माण्ड में क्षण-प्रति-क्षण घट रहे करोड़ों नक्षत्रों के निर्माण और क्षय की कहानी जीवंत शैली में, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी में रचने का दुःसाध्य प्रयास कर अपनी कर्मठता और लेखन की साधना को दुनिया के सामने रखा। देखने वालों ने दांतों तले उंगली भाषा को लेकर तो दबाई ही, गूगल भी इन अंतरिक्ष दृश्यों और विशेषताओं को लोगों को बताकर कृतार्थ हो रहा है।

अंतरिक्ष यात्रा और आकाश-दर्शन तथा नक्षत्र लोक की सैर को लेकर लिखी गई मुले की

पुस्तकें जहां नासा के शोधार्थियों को रहस्य नज़र आने लगा, वहीं भारतीय शोधकर्ता युवाओं के लिए तो भविष्य निर्माण के वास्ते कारू का ख़ज़ाना बन गया। सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहू व केतु आदि नवग्रहों के चाल -चरित्र और चपलता से दुनिया को रू-ब-रू कराना गुणाकर मुले के लिए भले ही मनोरंजक विज्ञान लेखन लगता रहा हो, पर विश्व भर के वैज्ञानिकों, ख़ासकर हिन्दी के जानकार विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए तो यह वरदान ही बन गया।

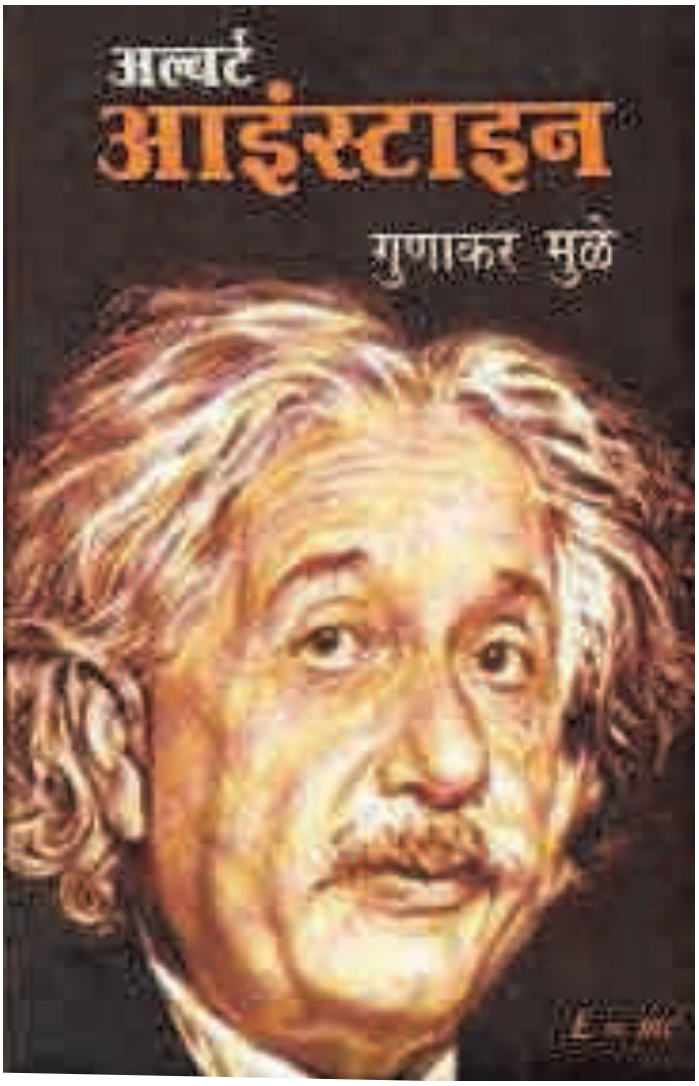

कम्प्यूटर क्या है, भारतीय अंक-पद्धति की कहानी, भारतीय विज्ञान की कहानी, आपेक्षिकता सिद्धांत क्या है, संसार के महान गणितज्ञ, महान वैज्ञानिक, कैपलर, अक्षरों की कहानी, गणित की पहेलियां, ज्यामिति की कहानी, लिपियों की कहानी आदि करीब दो दर्जन पुस्तकों को हिन्दी में लिखकर मुले ने जो श्रमसाध्य कार्य करते हुए दुनिया को रौशनी दिखाई है, वह आज तक विरले भी नहीं कर पाए।

मराठी मूल के मुले ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से गणित विषय में एम.ए. किया और अपने लेखन के लिए हिन्दी तथा अंग्रेज़ी भाषाओं को माध्यम बनाया। गुणाकर मुले कई वर्ष तक दार्जिलिंग के राहुल संग्रहागार से जुड़े रहे। इसके बाद 1971-72 के दौर में वे दिल्ली आ गए और फिर जीवनपर्यंत दिल्ली के ही होकर रह गए। यहीं उन्होंने दिल्ली की एक विदुषी से पाणिग्रहण किया और अपनी गृहस्थी बसा ली। अब मुले के विज्ञान शोध में परिवार का संबल भी मिल गया। हिन्दी के पाठकों के लिए यह जानना, प्रसन्नता की बात होगी कि गुणाकर मुले के पिता के रूप में बाबा नागार्जुन ने पटपड़गंज दिल्ली में एक आवास पर विवाह में वर के पिता की भूमिका निभाई थी।

यह कितनी विचित्र बात है कि मुले मराठी थे, उनकी मातृभाषा भी मराठी थी, पर अपने जीवन के करीब 50 वर्षों तक हिन्दी में विज्ञान लेखन करते रहे। हिन्दी व अंग्रेज़ी में मुले ने करीब 50 से अधिक पुस्तकों का लेखन किया। भारत भर का लेखक समाज और लेखकों पर श्रद्धा रखने वाले पुस्तक प्रेमी आज भी ठसक के साथ कहते नहीं थकते कि गुणाकर मुले पंडित राहुल सांकृत्यायन के शिष्य थे। गुणाकर मुले की सभी पुस्तकें हिंदी और अंग्रेज़ी भाषा की धरोहर हैं। इनकी सभी पुस्तकें ई-बुक, मुद्रित और गूगल सर्च इंजन पर धरोहर के रूप में संजोकर रखी हुई हैं। गुणाकर मुले को कई सम्मान और पुरस्कार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मिले हैं। दुनिया ने कहा, आज सम्मान खुद सम्मानित हो रहा है। हिन्दी अकादमी का साहित्यकार सम्मान, केंद्रीय हिन्दी संस्थान का आत्माराम पुरस्कार, बिहार का कर्पूरी ठाकुर स्मृति सम्मान आदि कुछ सम्मान देश के विज्ञान की प्रगति के लिए थाती बन गए हैं।

हिन्दी में करीब 3000 लेख और अंग्रेज़ी में 250 से अधिक आलेखों के रचयिता गुणाकर मुले आज हमारे बीच नहीं हैं, उनकी दो बेटियां, एक पुत्र और पत्नी दिल्ली के पटपड़गंज के अपने निवास में जीवन-यापन कर रहे हैं। स्वर्गीय डा. मुले एनसीईआरटी के पाठ्य पुस्तक संपादन मंडल व नेशनल बुक ट्रस्ट की हिन्दी प्रकाशन सलाहकार समिति के सदस्य भी रह चुके हैं। 16 अक्टूबर 2009 को मियासथिनया ग्रेविस नामक न्यूरो डिसॉर्डर के कारण मुले का देहावसान हुआ था। विज्ञान के इस लेखक ने खुद लेखन का इतिहास रचकर जहां एक नया कृतिमान रचा, वहीं भारतीय विज्ञान लेखन को विश्व मानचित्र पर चमकता हुआ छोड़ दिया।

hiranyahimkar@gmail.com

ज्ञान विज्ञान और रोजगार की भाषा के रूप में हिंदी

पवन जैन

लेखक भोपाल में एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी हैं। अपने कार्यकाल में उन्होंने अनेक सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्ष किया। उनका लेखन उनके जीवनानुभवों से जुड़ा रहता है। वे एक संवेदनशील कवि हैं। अनेक सम्मानों से उन्हें नवाज़ा जा चुका है।

निःसंदेह आज का युग विज्ञान का युग है। एक सवाल पैदा होता है कि क्या सच्चे अर्थों में हिंदी ज्ञान-विज्ञान और रोजगार की भाषा बन पाई है? हिन्दुस्तान की युवा पीढ़ी जो विज्ञान के प्रति तो आकर्षित है लेकिन भूमण्डलीकरण और वैश्वीकरण के इस दौर में उसकी हिंदी से दूरी निरन्तर बढ़ती जा रही है। आख़िर ऐसा क्यों? हिंदी का उद्गम संस्कृत, पाली, प्राकृत-अपभ्रंश और क्षेत्रीय भाषाओं के समागम से हुआ है। यही कारण है कि हिंदी न केवल वैज्ञानिक भाषा है, वरन उसमें क्रम से वैज्ञानिकता का विकास परिलक्षित होता है। हिंदी जैसे लिखी जाती है, वैसे ही पढ़ी जाती है। जितने वर्ण हैं, उतनी ही ध्वनियां हैं। अंग्रेज़ी भाषा की तरह 26 वर्णों की 44 ध्वनियां नहीं हैं। हिंदी का अपना व्याकरण, लिपि और शब्द कोश है, जो इस भाषा को पूर्णता ही प्रदान नहीं करते बल्कि विज्ञान के अध्ययन के लिए उपयुक्त बनाते हैं।

अभी हिंदी सारी दुनिया में बड़ी तेज़ी से फैल रही है, पिछड़े और विकासशील देशों में ही नहीं बल्कि विकसित देशों में भी हिंदी भाषा की शिक्षा पुरज़ोर तरीके से चल रही है। बात चाहे कॉल सेन्टरों की हो या हिंदी फ़िल्मों की, टी.वी. सीरियल की हो या मीडिया के नित नए माध्यमों की, रेडियो जॉकी की हो या ऐंकरिंग की, मनोरंजन की दुनिया की हो या जनसम्पर्क के क्षेत्र की, विभिन्न व्यावसायिक केन्द्रों की हो या राजनीति का क्षेत्रों की, इस दौर में इन सभी क्षेत्रों में हिंदी भाषा की अपरिहार्यता दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। वस्तुतः अंग्रेज़ी भले ही उत्पादकों की भाषा हो, लेकिन हिंदी निश्चित रूप से उपभोक्ताओं की भाषा है। आज शिक्षा से इतर क्षेत्रों में हिंदी ने अपने पैर पसारे हैं। फिर भी ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उसका दोयम दर्जा बरकरार है।

हिंदी भाषी समाज की मेधावी प्रतिभाएं, चाहे ज्ञान हो या विज्ञान, तकनीकी क्षेत्र हो या अनुसंधान, प्रबंधन हो या चिकित्सा विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी हो या कम्प्यूटर ज्ञान, इन सभी क्षेत्रों में पढ़ाई-लिखाई अंग्रेज़ी माध्यम से करती हैं। आज़ादी के 60 साल बाद भी इंजीनियरिंग और मेडिकल कॉलेजों में हिंदी नदारद है। वैज्ञानिक अनुसंधानों, बैंक और प्रबंधन के संस्थानों में हिंदी का दोयम दर्जा बरकरार है। रूस, चीन, जर्मनी, जापान और फ्रांस जैसे देश यदि विज्ञान और तकनीक में अपनी भाषाओं का उपयोग कर रहे हैं तो हमें हिंदी को इस क्षेत्र में विकसित करने में क्या कठिनाई है। यदि अमेरिका और इंग्लैड जैसे धुर अंग्रेज़ी

हिंसा पर गांठ

देशों में कम्प्यूटर का सॉफ्टवेयर तैयार करने में हिन्दुस्तानी इंजीनियर सबसे अग्रणी हैं तो भारत में कम्प्यूटर का उपयोग हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं में सीमित क्यों हो? चीन में कम्प्यूटर में मातृभाषा के प्रयोग के परिणाम सामने हैं। उन्हें उपयोग का नया क्षितिज मिला है। जापान भी इसी राह पर है। भारत में ज्ञान की क्रांति के जनक कम्प्यूटर का फैलाव तो हो रहा है, लेकिन सिर्फ महानगरों और शहरों में, गांव और कस्बों में नहीं, जहां हिन्दुस्तान का दिल धड़कता है। कम्प्यूटर क्रांति को घर-घर पहुंचाना है तो इसे दिल की भाषा में पढ़ना, पढ़ाना होगा। भारत और युवा पीढ़ी के लिए वह भाषा हिंदी ही हो सकती है, कोई और नहीं। विज्ञान को भी समझना-समझाना मातृभाषा में जितना सहज है, उतना शायद अंग्रेज़ी जैसी परिभाषा में नहीं। स्वयं वैज्ञानिकों के शिरोमणि अलबर्ट आइन्सटाइन भी विज्ञान विषयक चर्चा में जब अधिक रम जाते थे तो अंग्रेज़ी छोड़कर अपनी मातृभाषा जर्मन में बोलने लगते थे। राष्ट्रकवि भारतेन्दु के शब्दों में-

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल।'

हिंदी साहित्य में युवा पीढ़ी की रुचि हो या न हो पर ज्ञान और विज्ञान से उसका अलगाव नहीं हो सकता। विचारों की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति अपनी भाषा में ही हो सकती है। अतीत में हमारे गणित, आयुर्वेद, चिकित्सा विज्ञान, ज्योतिष, भूगोल, खगोल शास्त्र के विद्वानों ने अपनी भाषा में ही यह ज्ञान सारे विश्व के सामने परोसा था। वर्तमान में जब पूरे विश्व में भारतीय संस्कृति और योग विज्ञान के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है तथा हिंदी के शब्द भी अंग्रेज़ी शब्दकोश में सम्मिलित हो रहे हैं तब हमारी युवा पीढ़ी में हिंदी के प्रति बढ़ती अनासक्ति एक गम्भीर चिन्ता का विषय है। प्रतियोगिता की परीक्षाओं, मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेजों, वैज्ञानिक अनुसंधान केन्द्रों, तकनीकी एवं प्रबंधन संस्थानों में अंग्रेज़ी माध्यम की अनिवार्यता ने काले अंग्रेज़ों की ऐसी पीढ़ी तैयार की है जो हर स्वदेशी समस्या का विदेशी समाधान खोजती है।

ज्ञान-विज्ञान और रोजगार की भाषा के रूप में हिंदी को उसके मुकाम तक पहुंचना हो तो हिंदी को समकालीन क्षेत्र और समसामयिक परिदृश्य के साथ तालमेल करना होगा। यदि हम व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की बात करें तो लगभग हर देश में उस देश की मातृभाषा के अनुरूप ही पाठ्यक्रम तैयार किए जाते हैं, चाहे वह क्षेत्र चिकित्सा का हो, इंजीनियरिंग का हो या प्रबंधन का हो, शोध का हो या अनुसंधान का। आज अंग्रेज़ी ने पूरे विश्व में सम्पर्क भाषा के रूप में जो अपना स्थान बनाया है, उसमें विज्ञान, तकनीक और प्रौद्योगिकी का बहुत बड़ा योगदान है।

हिंदी के नए फैलाव और विस्तार ने उसकी शुद्धता पर कुछ प्रश्नवाचक चिन्ह ज़रूर लगाए हैं, लेकिन यह कहने में कोई संकोच नही, हिंदी केवल साहित्य सृजन, निबन्ध लेखन और व्याकरण की भाषा नहीं है, वह रोजगार का भी माध्यम है और ज्ञान-विज्ञान तथा रोजगार के क्षेत्र में हिंदी भाषा के लिए संभावनाएं अभी अनन्त हैं।

महादेवी वर्मा ने कहा है कि 'हिंदी अपना भविष्य किसी से दान में नहीं चाहती, हिंदी का भविष्य तो उसकी गति का स्वाभाविक परिणाम होना चाहिए'। हकीकत यह है कि न तो हिंदी पराधीन है और न ही इसे दूसरों के रहमो-करम की ज़रूरत है, उसे तो अपने साठ करोड़ हिंदी भाषी बेटे-बेटियों से स्वाभिमान का इतना सा प्रण लेना है कि उनकी भाषा तिरस्कार की नहीं, सम्मान की हकदार है और जिस दिन ये दिमाग और हाथ, हिंदी का तिलक करने उठेंगे तो संयुक्त राष्ट्र संघ तो क्या पूरे विश्व में हिंदी हर तरह की हिंसा पर गांठ लगाते हुए अपनी विजय पताका लहराएगी।

jain.kpavan@gmail.com

लेखक हिंदी के सुपरिचित गीतकार, कवि, आलोचक एवं भाषाकर्मी हैं। पत्र-पत्रिकाओं में सतत लेखन कर रहे हैं। बैंकिंग वाड्.मय सीरीज (पांच खंड) का प्रकाशन आपका उल्लेखनीय कार्य है। वे हिंदी अकादमी से पुरस्कृत हैं।

समस्याएं बहुत हैं हिंदी प्रकाशकों की

डॉ. ओम निश्चल

प्रकाशन की सत्ता दिल्ली में केंद्रित होती जा रही है। हिंद पॉकेट बुक्स, राजकमल प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, प्रभात प्रकाशन, आत्माराम एंड संस, राजपाल एंड संस, किताबघर प्रकाशन, सामयिक प्रकाशन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रकाशन संस्थान, राधाकृष्ण प्रकाशन, हिंदयुग्म प्रकाशन, ग्रंथ शिल्पी और पूर्वोदय प्रकाशन जैसे बड़े संस्थान यहां हैं। इसके अलावा साहित्य अकादेमी, नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के लोकप्रिय प्रकाशन संस्थान हैं जहां अन्य गतिविधियों के साथ पुस्तकों के प्रकाशन एवं विक्रय वितरण की बेहतर व्यवस्थाएं हैं। भारतीय ज्ञानपीठ निजी प्रतिष्ठानों में एक बड़ा प्रकाशन केंद्र है। शब्द कोश, पारिभाषिक कोश व तकनीकी कोशों के दो अग्रणी प्रकाशन केंद्र केंद्रीय हिंदी निदेशालय व वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग हैं। यहां कृषि, आयुर्विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी शब्दावली के अलावा भारतीय भाषा कोश, तत्सम शब्दकोश एवं कुछ द्विभाषी कोशों आदि का प्रकाशन किया गया है किन्तु बहुत सुचारु विक्रय व्यवस्था न होने के कारण ये कोश जनता के बीच लोकप्रिय नहीं हो पाए हैं।

प्रकाशनों से बदलता हिंदी का पर्यावरण

हिंदी में कुछ वर्ष पहले कुछ विदेशी प्रकाशनों पेंगुइन बुक्स, हार्पर कॉलिन्स या मैकमिलन पब्लिशर्स ने जब अपनी इकाइयां यहां स्थापित कीं तो यह धारणा बनी कि इनके आने से हिंदी का पुस्तक परिदृश्य बिल्कुल बदल जाएगा, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। ये प्रकाशन भी हिंदी के पाठकवर्ग की मानसिकता के दुर्ग को भेद नहीं सके। मैकमिलन पब्लिशर्स ने भी एक वक्त अपना हिंदी प्रकाशन आंरभ किया तथा आलोचना, विमर्श, इतिहास व सामाजिक विषयों पर स्तरीय पुस्तकें प्रकाशित कीं पर जल्दी ही उन्हें अपना यह कारोबार समेटना पड़ा। पुस्तक ख़रीद की मंदी का यह असर पेंग्विन व हार्पर कालिन्स पर भी पड़ा है। चयन व कंटेंट में अपरिपक्वता व मौलिक काम की उपेक्षा से इनके खाते में ऐसी पुस्तकें कम जुड़ सकीं जो हिंदी के प्रकाशन परिदृश्य की नियति बदल सकतीं।

प्रकाशक-लेखक संबंध

लेखकों का प्रकाशकों से एक अन्योन्याश्रित संबंध रहा है। शीला संधू के जमाने में राजकमल प्रकाशन से पंत से लेकर भगवतीचरण वर्मा, बच्चन, मोहन राकेश और नामवर सिंह जैसे दिग्गज लेखक जुड़े। यहां से प्रकाशित होने वाली आलोचना-समीक्षा की गंभीर पत्रिका 'आलोचना' ने हिंदी आलोचना की नींव रखी। राजपाल एंड संस से विश्वनाथ जी की लगन के कारण अमृत लाल नागर व बच्चन जी की लगभग सारी रचनाएं छपीं। लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद से पंत, महादेवी, निराला, यशपाल, शिवानी, इलाचंद जोशी, भैरवप्रसाद गुप्त, रामकुमार वर्मा आदि बड़े लेखकों की कृतियां छपीं। नेशनल पब्लिशिंग हाउस को अज्ञेय, डॉ. नगेंद्र, विजयेंद्र स्नातक, शिवप्रसाद सिंह की रचनाएं छापने का श्रेय जाता है तो आत्माराम एंड संस ने नीरज, रामावतार त्यागी जैसे कवियों की रचनाएं छापीं। हिंदी संसार पहली बार राजपाल एंड संस से रांगेय राघव के अनुवादों के जरिए शेक्सपियर के नाटकों से सुपरिचित हुआ।

लेखकों का प्रकाशकों के साथ गहरा और आत्मीय नाता रहा है। पहले रॉयल्टी के इतने बड़े झगड़े नहीं हुआ करते थे। लेखकों का जब मन हुआ प्रकाशकों के यहां गए और कुछ न कुछ रॉयल्टी के खाते से ले आए। जबकि आज रॉयल्टी के झगड़े ज़्यादा बढ़े हैं। ऐसे प्रकाशन उंगलियों पर गिने जा सकते हैं जो रॉयल्टी देते हों। इससे लेखकों-प्रकाशकों के संबंधों में खटास आई है।

हिंदी प्रकाशनों की राह में बाधाएं

हिंदी प्रकाशनों के सामने बाधाएं कम नहीं हैं। एक समय जब मुद्रण की सुविधाएं जटिल थीं, पुस्तक के संस्करण पांच हजार, तीन हजार व न्यूनतम ग्यारह सौ तक के हुआ करते थे। पर आज यह संख्या 300 तक सिमट गई है। हिंदी भाषी विराट जनसंख्या के बावजूद हमारे देश में किसी लोकप्रिय लेखक की तीन सौ प्रतियों को बेचने में साल लग जाता है। इसकी वजह यह है कि समाज में अंग्रेज़ी का चलन बढ़ा है। अकेले अंग्रेज़ी सिखाने वाली जितनी पुस्तकें साल भर में छपती हैं, हिंदी सीखने-सिखाने की उतनी पुस्तकें अब तक नहीं छपी होंगी। एक ज़माने में रैपिडेक्स इंग्लिश स्पीकिंग कोर्स की लाखों पुस्तकें इसी हिंदी समाज में बेची। प्रबंधन-गुरुओं ने भी विपणन व मार्केटिंग के लिए हिंदी के बदले अंग्रेज़ी को ही मुफीद पाया है। इसलिए अंग्रेज़ी सीखने- सिखाने वालों की तादाद बढ़ी है।

हिंदी में पाठ्यसामग्री

हिंदी प्रकाशन की दुनिया में विधाओं का वैविध्य तो नजर आता है किन्तु विभिन्न अनुशासनों विषयों के पाठ्यक्रम की पुस्तकों के प्रणयन और प्रकाशन की दिशा में बहुधा कम काम हुआ है। जब आज हिंदी विश्व मंचों पर गूंज रही है, 10वें विश्व हिंदी सम्मेलन के हम मेजबान देश हैं, हम हिंदी को पाठ्यक्रमों में अब तक कितनी जगह दे पाए हैं?

केंद्रीय हिंदी निदेशालय और वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग, शब्दावलियों व कोशों के प्रणेता तो हैं किन्तु वे इस दिशा में कोई ठोस प्रयास नहीं कर सके। एनसीईआरटी ने स्कूल स्तर पर अवश्य हिंदी में पाठ्यक्रमों का निर्माण किया है किन्तु प्लस टू के बाद स्नातक एवं परास्नातक कक्षाओं के लिए विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों का हिंदी में लगभग अभाव दिखता है। दिल्ली विश्वविद्यालय में स्थापित हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय ने मानविकी, समाज विज्ञान एवं अन्य अनुशासनों की पुस्तकें प्रकाशित की हैं, पर आज भी विज्ञान, कृषि, आयुर्विज्ञान, इंजीनियरिंग, जैव तकनीक, चिकित्सकीय पाठ्यक्रमों, प्रबंधन व मानविकी में स्तरीय पाठ्यपुस्तकों का अभाव है।

omnishchal@gmail.com

लेखक सोशल मीडिया पर प्रतिदिन के टिप्पणीकार, कवि तथा कथाकार हैं। वे दिल्ली विश्वविद्यालय के किरोड़ीमल कॉलेज के स्नातक हैं तथा नेशनल बुक ट्रस्ट में संपादक के पद पर कार्यरत हैं।

हिंदी प्रकाशन जगत की कुछ अपनी समस्याएं

लालित्य ललित

हिंदी प्रकाशन जगत का इतिहास बहुत पुराना है, जब कंपोज़ीटर अपने हाथों से अक्षर-अक्षर को चुनकर एकरूपता बिठाता था। धीरे-धीरे समय बदला, विकास के पंखे ने करवट बदली, कंप्यूटर का ज़माना आ गया। दुविधा, सुविधा में बदल गई। मेहनत करना आसान हो गया था। पर पढ़ना तो बेहद ज़रूरी था, सो कुछ अध्ययनशील लोग पढ़ने को समर्पित हो गए तो कुछ ऐसे वर्ग निकल कर आए जिनका उद्देश्य अपने पाठकों तक साहित्य को पहुंचाना था। सरकारी महकमे भी पीछे नहीं थे। ऐसे में प्रकाशन विभाग, साहित्य अकादेमी, राज्य सरकारों की अकादेमियां, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया के नाम लेना सर्वोपरि है। अपने पाठकों के हित, उनकी रुचि को देखते हुए, सरकार गतिशील हुई। नई योजनाएं बनाई गईं। किफ़ायती दामों में जनसुलभ साहित्य का प्रकाशन करना, वितरण करना, उसे व्यापक जन-समूह तक पहुंचाना, अपने लक्ष्य को सर्वोपरि रखा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया ने। अपने देश-व्यापी कार्यक्रमों के चलते हिंदी सहित भारतीय भाषाओं के रचनाकारों को जोड़ना, उनसे संवाद स्थापित करना, बेहतर साहित्य को प्रकाशित करना सर्वोपरि लक्ष्य था, जिसे सरकार की कुछ सक्रिय संस्थाएं बेहतर तरीके से निभा रही हैं।

यह कोई चका-चौंध वाला व्यवसाय नहीं है। यह ज्ञान का अनुपम मार्ग जिसके चलते हुए पाठकों को एक बेहतर भविष्य के लिए तैयार करते हैं। ज्ञान के इस अथाह संसार में बेहतर कृतियां, लेखक और शब्द-संपदा अनुपम भंडार तो है, साथ-ही प्रकाशन जगत में कुछ समस्याएं भी हैं। आज भी हिंदी के पाठक अंग्रेज़ी के मुकाबले कम हैं। एक ज़माना था जब देवकीनंदन खत्री के उपन्यास 'चंद्रकांता संतति' पढ़ने के लिए लोगों ने हिंदी को सीखा था। आज विकास के चलते कुछ धार्मिक कृतियां उनके पात्र, ऐतिहासिक और पौराणिक कथानक बेहद पसंद आने लगे हैं या शायद संचार क्रांति के ज़रिए हुआ है। दूसरी समस्या हमारे सामने विकराल रूप लिए बैठी है कि कविता के पाठक रहे नहीं। कहानी, उपन्यास, नाटक में लोगों की रुचि बरकरार है। व्यंग्य ने अभी कुछ सालों से गति पकड़ी है। व्यंग्य विधा ने विदेशों में भी अपनी मौज़ूदगी का एहसास कराया है। हरि शंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, गोपाल चतुर्वेदी, नरेंद्र कोहली, ज्ञान चतुर्वेदी,

अशोक चक्रधर, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल का लेखन भारतीय पाठकों के बीच बेहद लोकप्रिय हुआ है। वहीं नाटकों के प्रति भी इन-दिनों नई पीढ़ी का रुझान देखने में आया है।

कई बार प्रकाशक कोई सारगर्भित बेहतर कृति को प्रकाशित करना चाहता है तो उसे उपयुक्त लेखक नहीं मिलता, यदि ऐसी किसी कृति का आयात करता है तो अनुवादक नहीं मिल पाता। कई बार अनुवादक से राशि को लेकर बात नहीं बन पाती। प्रकाशक की अपनी समस्या है। मान लीजिए किसी बालसुलभ मन के लिए सुंदर चित्रकथा बनानी है तो चित्रकार नहीं मिल पाते। यदि चित्रकार मिल गया तो आपको उसके साथ पूरा समय देना पड़ेगा। आपकी स्थिति एक मां जैसी होती है कि उसके बच्चे को बुखार तो नहीं या क्या खाने से उसकी सेहत में सुधार हो सकता है। कई चित्रकार इतने समर्पित हैं कि वे पूरी तरह समर्पित भाव से अपने कार्य को साकार करते हैं। बड़े रचनाकार बेशक अपने साहित्य में तटस्थ हों, लेकिन कई बार अपने व्यवहार में निर्मल नहीं हो पाते। ऐसे बिंदु कई बार प्रकाशकों की नाराज़गी का कारण भी बन जाते हैं। कई रचनाकारों को 'सब्र' शब्द की जानकारी बेशक होती है पर उन्हें 'सब्र' नहीं होता, वे संपादक को, प्रकाशक को लगातार तंग किए रहते हैं, जो प्रकाशन नियम के विपरीत है। यदि आप रचनाकार हैं तो आपको धैर्य का पालन करना ही चाहिए।

प्रकाशन जगत पर आज 'गूगल' भारी पड़ रहा है, यह स्रोत आपको जानकारी देने तक रहे तो ठीक अन्यथा विपरीत परिणाम पैदा करने में भी सर्वोपरि है। कितने प्रकाशक अपने पाठकों को पुस्तकें खरीदने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। आलोचना का स्तर पहले से गिरा है। संबंधों के रहते यदि आपकी कृति की समीक्षा हो जाए तो ठीक, वरना एक रिपोर्ट के मुताबिक हज़ारों की संख्या में पुस्तकें छपती हैं पर उन्हें कोई नोटिस नहीं करता। विदेशी प्रकाशक जहां अपने प्रकाशनों को विज्ञापित करते हैं, वहीं भारतीय प्रकाशकों की सोच बिल्कुल विपरीत है। आज प्रकाशक रचनाकारों से ही पुस्तक, लोकार्पण की राशि पहले 'ऐंठ' लेता है। आपकी कृति लोकार्पित हो गई। मन में संतोष हुआ। निष्कर्ष : शून्य।

कई बार उपयुक्त पांडुलिपि का नहीं मिलना भी संकट हो गया है। बाज़ार की प्रतिस्पर्धा को देखते हुए भी उसका निर्धारण करना, किसी युद्ध से कम नहीं होता। हां! छोटे बच्चे, आज भी चित्रकथा को ही पसंद करते हैं। एक ज़माने में अमर चित्रकथा, लंबू-मोटे के कारनामे आदि चित्रकथा की पुस्तकें पसंद की जाती थीं। अब इनकी जगह केबल के कार्टून कार्यक्रमों ने ले ली है। आज के दौर में कई लेखक अपनी कृतियां खुद प्रकाशित कर बैठते हैं, प्रकाशक बन जाते हैं। पर वितरण की समस्या बड़ी विकराल है। पुस्तकों का नहीं बिक पाना मुख्य बिंदु है। बड़े प्रकाशक सरकारी ख़रीद में मोटा मुनाफा कमाते हैं। कई नामचीन प्रकाशकों ने 20-20 कंपनियां बना रखी हैं, जिसके चलते यह कारोबार किया जाता है।

एक अलग तरह की विसंगति और देखने में आ रही है, हमारा हिंदी लेखक अपना प्रचार स्वयं करता है उसके पास कोई आधार नहीं। वह अपनी पुस्तक अपने मित्रों को देता है, भेंट स्वरूप। हालात इतने ख़राब कि मुफ़्त की पुस्तक कोई पढ़ना नहीं चाहता। बेचारा हिंदी लेखक फेसबुक के माध्यम से उसका आवरण लगाता है और कुछ लाइक्स, कमेंट्स पाकर तृप्त हो जाता है। वहीं दूसरी ओर जो अंग्रेज़ी प्रकाशक अपनी कृति की, अपने लेखक की मार्केटिंग करते हैं, इस अभियान से हिंदी प्रकाशक अभी कोसों दूर हैं। हिंदी पाठक अभी भी सोच रहा है कि वह बाज़ार में मौजूद किस कृति का चयन करे ताकि उसका विवेक जाग सके सामयिक घटनाओं के संदर्भ में।

मेरा यह मानना है कि हिंदी प्रकाशक जगत में राष्ट्रीय सद्भाव और भाई-चारे की आवश्यकता है। यदि कागज़, पोस्टल खर्चे भी कम किए जा सकें तो नि:संदेह ही पाठकों तक सुगमता से पुस्तकें भिजवाई जा सकेंगी। साथ ही देश की सरकारी एंजेसियों के भी काया पलट करने की, उनमें सुधार की भी गुंज़ाइश है कि वे हर महीने एक विज्ञप्ति जारी करे कि इस माह की पठनीय पुस्तकों की सूची इस प्रकार है, ज़्यादा से ज़्यादा पुस्तक शिविर लगाएं ताकि पुस्तकों के प्रति एक आत्मीय माहौल बन सके।

lalitmandora@gmail.com

लेखक एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित कथाकार, कवि, गज़लकार, नाटककार व्यंग्यकार, संपादक और स्वयं प्रकाशक भी हैं। शोध-संदर्भ ग्रंथों की उनकी शृंखला हिन्दी शिक्षा जगत के लिए एक अनुपम देन है। उन्हें देश-विदेश के अनेक सम्मानों से नवाज़ा जा चुका है।

पुस्तक संस्कृति-कष्टों का सिलसिला

डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल

एक दिन मैंने अपने प्रकाशक से पूछा, 'इस बार कितनी रॉयल्टी बनी है'? मैंने देखा कि प्रकाशक महोदय के चेहरे पर उदासी की एक हल्की-सी लकीर खिंच गई है। मैं चिंतित हुआ— मैंने कोई अनुचित प्रश्न तो नहीं कर दिया है। उन्होंने गहरी-लंबी सांस ली और रॉयल्टी का हिसाब बताने से पहले पूरे प्रकाशन तंत्र की उलट-फेर पर चर्चा आरंभ कर दी, 'देखिए, एक समय था, हमने गुलशन नंदा के 25 लाख प्रतियों के संस्करण छापे। लेकिन आज न पाठक साथ दे रहा है और न सरकार की कोई रुचि प्रकाशन व्यवसाय के प्रति है। कौन प्रकाशक नहीं चाहता कि उसके लेखकों को भरपूर पारिश्रमिक मिले, लेकिन यह तो तभी संभव है न, जब पुस्तकें बिकें, पाठकों की रुचि पुस्तकों की ओर हो।' मैंने उनकी व्यथा को समझा और पुस्तक व्यवसाय से संबंधित कई प्रश्न मेरे सामने खड़े हो गए।

परिस्थितियां कितनी बदल गई हैं! जैसे-जैसे युवकों में शिक्षा का प्रसार हो रहा है, साहित्य और साहित्यिक पुस्तकों से उनकी दूरी बढ़ती जा रही है। पिछले दिनों मैं अपने एक प्रकाशक के कार्यालय में था। प्रकाशन व्यवसाय पर चर्चा चल रही थी तभी उनकी पुत्री ने प्रवेश किया। वह किसी बड़े कॉलेज से एम.बी.ए. कर रही थी। प्रकाशक महोदय ने अपनी बेटी से मेरा परिचय कराया। मैं समझता था कि एक बड़े प्रकाशक की समझदार बेटी साहित्य और साहित्यिक गतिविधियों से निश्चित ही परिचित होगी। जिज्ञासावश मैंने उससे पूछा, 'साहित्य की कुछ पुस्तकें पढ़ती हो?' उसका उत्तर सकारात्मक नहीं था। फिर भी मैंने समझा कि किसी प्रख्यात और नामचीन कवि के विषय में तो वह जानती ही होगी। मैंने प्रश्न किया- 'हास्य-व्यंग्य के प्रसिद्ध कवि काका हाथरसी का नाम सुना है?' उस क्षण मुझे घोर निराशा हुई, जब उसने व्याकुलता के साथ उत्तर दिया, 'कौन काका हाथरसी!'

यह स्थिति है आज हमारे सुशिक्षित युवक वर्ग की।

कैसी विडंबना है कि लेखक बढ़ रहे हैं, प्रकाशक भी बढ़ रहे हैं, हिंदी में प्रतिवर्ष सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, किंतु पाठक नहीं हैं, ख़रीदार नहीं हैं। फिर प्रश्न उठता है कि पुस्तकें छप क्यों रही हैं? किसके लिए छप रही हैं? वे कहां जा रही हैं? आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आज अधिकांश प्रकाशक अपने लेखकों के धन पर अपना व्यवसाय चला रहे हैं। एक समय था कि प्रकाशक अपने लेखकों को कुछ-न-कुछ पारिश्रमिक अवश्य दिया करते थे, क्योंकि पुस्तकें बिकती थीं, किंतु आज अधिकांश लेखक प्रकाशक को धन देते हैं, ताकि उनकी पुस्तकें छप सकें।

प्रकाशक भी लेखक के लिए उसकी पुस्तक का प्रकाशन करता है। लगभग उतनी ही प्रतियां मुद्रित की जाती हैं, जितनी लेखक को देनी होती हैं और लेखक अपने मित्रों-परिचितों को अपनी पुस्तक की प्रति भेंट करके अपने लेखकीय गौरव की अनुभूति कर लेते हैं। कविता की पुस्तकें छपना तो और भी मुश्किल हो गया है। मेरा अनुमान है कि उन कवियों को छोडक़र, जिन्हें पाठ्यक्रम में स्थान मिला हुआ है, अधिकांश कवि मित्रों की पुस्तकें प्रकाशकीय दायित्व का हिस्सा नहीं बन पाती हैं। उनमें लेखकीय दायित्व ही अधिक मात्रा में होता है।

तनिक इस बात पर भी विचार कीजिए। आपने अपनी पुस्तक बहुत आदर के साथ किसी परिचित, मित्र, साहित्यकार को भेंट की। आप प्रतीक्षा करते हैं कि आपकी पुस्तक पर उनकी कोई अच्छी-बुरी प्रतिक्रिया आएगी। नहीं होता ऐसा। जब पुस्तक पढ़ने का अवकाश नहीं है तो उस पर किसी प्रतिक्रिया का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

हिंदी प्रकाशकों को कई स्तरों पर चुनौती का सामना करना पड़ता है। उनके सामने सबसे बड़ी समस्या रहती है कि वे अपनी पुस्तकों को किस माध्यम से विज्ञापित करें। एक समय था जब हिंदी में बड़ी साहित्यिक पत्रिकाएं प्रकाशित होती थीं। इनमें साप्ताहिक हिंदुस्तान, धर्मयुग, सारिका आदि प्रमुख थे। पाठक इन्हें रुचि के साथ पढ़ते थे। पाठकों की संख्या भी पर्याप्त थी। इनमें प्रकाशित विज्ञापन से हज़ारों पाठकों तक नई पुस्तकों की सूचना पहुंच जाती थीं। अब ये पत्रिकाएं बंद हो गई हैं। लघु पत्रिकाओं और फ़िल्मी पत्रिकाओं में प्रकाशित विज्ञापन से उतना प्रसार-प्रचार नहीं होता।

दुख तो यह है कि दैनिक समाचार-पत्रों से साहित्य गायब होता जा रहा है। साहित्यिक पृष्ठों के स्थान पर धर्म, संस्कृति और फ़िल्म प्रधान हो गए हैं। इस कारण भी पाठकों की साहित्य के प्रति रुचि कम हुई है। हिंदी की पुस्तकों की चर्चा प्राय: उनमें नहीं होती। इस कारण पाठक नई पुस्तकों से परिचित नहीं हो पाते।

हमारे देश की डाक-व्यवस्था में व्यापक स्तर पर गिरावट आई है। अब पंजीकृत डाक भी सप्ताह दो सप्ताह से पहले अपने गंतव्य तक नहीं पहुंचती। यदि किसी पाठक तक कोई पुस्तक डाक द्वारा पहुंचानी हो तो पाठक उसे पाने के लिए प्रतीक्षा ही करता रहता है। कई बार इसी आधार पर प्रकाशक को शर्मिंदगी भी उठानी पड़ती है। पाठक सोचता है कि पुस्तक भेजी नहीं गई और प्रकाशक उसको बार-बार समझाता है कि पुस्तक भेज दी गई है।

अनेक बार पाठकों की ओर से यह भी आरोप लगते हैं कि हिंदी पुस्तकों की कीमतें बहुत ज़्यादा हैं। कई बार यह बात सच हो सकती है, फिर भी मैं मानता हूं कि अंग्रेज़ी की पुस्तकों की तुलना में हिंदी की पुस्तकों का मूल्य बहुत कम है। फिर यह बात भी दृष्टि में रखी जानी चाहिए कि 200 या 300 प्रतियों के संस्करण छापकर पुस्तकों का मूल्य बढ़ ही जाएगा, क्योंकि जितनी कम प्रतियां छपेंगी, उनका लागत मूल्य उतना ही अधिक होगा।

पुस्तकों की कम बिक्री का एक कारण यह भी है कि हमने अपने देश में पुस्तक संस्कृति को विकसित नहीं किया। हम लोगों की आय में जैसे-जैसे वृद्धि हुई है, उतनी ही मात्रा में भौतिक वस्तुओं, फैशन के साधनों, दिखावे की प्रवृत्ति का विस्तार हुआ है। सुविधा के विविध साधनों को खरीदने के लिए हमारे पास पूरा बजट होता है। कभी नहीं होता तो बैंक लोन देकर हमारी इच्छाओं को पूरा करते हैं। किंतु दुख तो तब होता है, जब पुस्तकों और पत्रिकाओं को खरीदने के लिए हम कोई बजट नहीं बनाते। यदि हम अपनी आय का बहुत छोटा सा भाग पुस्तक खरीदने पर व्यय कर सकते तो हम सहज ही अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाकर रख सकते थे।

इतना होने पर भी हम निराश नहीं हैं। नई पीढ़ी में फिर से पुस्तकों के प्रति लगाव और चाव बढ़ रहा है। मुझे विश्वास है कि इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के विस्तार के बावजूद पुस्तक को छूकर मिलने वाला आनंद पुस्तक संस्कृति को जीवंत बनाए रखेगा।

giriraj3100@gmail.com

लेखक सौम्य और मृदु स्वभाव के उद्यमी व्यक्ति हैं। वे एक प्रतिष्ठित प्रकाशन संस्थान 'प्रभात प्रकाशन' के स्वामी हैं। वे भाषा की शुद्धता के पक्षधर हैं तथा अपने संस्थान की भाषा-नीति का दृढ़ता से पालन करते हैं। वे कुल 3000 से अधिक पुस्तकों के प्रकाशक हैं।

हिंदी प्रकाशन की समस्याएं

प्रभात कुमार

लगभग पैंसठ करोड़ लोग जिस हिंदी भाषा को बोलते हों, उसमें पुस्तकों की दयनीय स्थिति सचमुच चिंता का विषय है। क्या सचमुच हिंदी पुस्तकें नहीं बिकतीं? क्या हिंदी में पुस्तकें कम बिकती हैं? हिंदी प्रकाशकों को क्या-क्या और किन-किन समस्याओं से दो-चार होना पड़ता है? इन सब प्रश्नों के पीछे एक मूलभूत कारण जो समझ में आता है, वह है— हिंदी भाषी क्षेत्रों में पुस्तक-संस्कृति का नितांत अभाव। पुस्तकें पढ़ना, किसी भी अन्य अभिरुचि, जैसे फ़िल्म देखना, संगीत सुनना, गप्पबाजी करना की तरह रुचि और प्रवृत्ति का विषय है। जिसे फ़िल्म देखनी हो, वह किसी भी तरह तीन-चार घंटे निकालकर फ़िल्म देखने जाएगा ही। इसलिए सबसे बड़ा संकट और समस्या पाठकों का न होना है।

पाठक पुस्तकें खरीदकर पढ़ना प्रारंभ कर दें, उपहार में पुस्तकें देने का प्रचलन बढ़ जाए, पुस्तकालयों में पुस्तक-खरीद का तंत्र पारदर्शी हो जाए तो हिंदी प्रकाशक का मन उदात्त हो जाएगा। हिंदी के पाठक की जेब भी बड़ी है, केवल उसे अपनी अभिरुचि का परिष्करण कर श्रेष्ठ पुस्तकें खरीदने के लिए प्रवृत्त होना होगा। पुस्तकों को अपनी संस्कृति का एक प्रमुख अंग मानकर अंगीकार करना होगा। पुस्तकें बिकनी प्रारंभ हो जाएं तो अभी तीन सौ, पांच सौ या अधिक-से-अधिक एक हज़ार प्रतियों का संस्करण करने वाले प्रकाशक का प्रिंट ऑर्डर बढ़ जाएगा, लागत भी आनुपातिक मूल्य से कम हो जाएगी, मुद्रित मूल्य कम हो जाएंगे और पाठक को कम मूल्य पर अच्छी पुस्तकें उपलब्ध हो जाएंगी। मलयालम, कन्नड़, उड़िया में यही फॉर्मूला तो कामयाब हुआ है। इसी कारण वहां तो लेखक स्वयं प्रकाशन करने के लिए उद्यत रहते हैं।

हिंदी प्रकाशकों के समक्ष एक अन्य बड़ी समस्या है— अच्छे, कुशल और दक्ष संपादक-प्रूफरीडर-कंपोजिंग करने वाले व्यक्तियों की। जो हैं, उनका भाषा की सुबोधता और शब्दों की शुद्धता के प्रति विशेष आग्रह नहीं रहता। कभी-कभी तो छोड़ी हुई अशुद्धियों की ओर ध्यान दिलाने पर जवाब मिलता है— लेखक ने अपनी पांडुलिपि में इतनी गलतियां छोड़ी थीं, मैंने ढेर सारी ठीक कर दीं, कुछ छूट गईं तो क्या हो गया! यह स्थिति खेदजनक है। 'अपने काम को मैं कम-से-कम पूरी निष्ठा और कर्तव्यबोध के साथ करूंगा।' यह प्रवृत्ति कम होती जा रही है। इस दिशा में

कुछ ठोस कदम तत्काल नहीं उठाए गए तो भविष्य में शुद्ध भाषा-वर्तनी जानने वाले संपादक-प्रूफरीडर विरले रह जाएंगे।

पुस्तक लेखन कार्य कठिन है, प्रकाशन करना सरल है, परंतु बिक्री करना कठिनतम है। हिंदी में डिस्ट्रिब्यूटर्स/वितरक नाममात्र के हैं। प्रकाशकों को स्वयं अपनी पुस्तकों की बिक्री/मार्केटिंग करनी होती है। पुस्तक-विक्रेताओं के पास पुस्तकें 'सेल ऑन रिटर्न' बेसिस पर भेजकर उनका मूल्य वसूलना न केवल कष्टप्रद है, बल्कि तनाव देने वाला भी। अधिकांश बुकसेलर्स वर्षों तक पुस्तकें मंगाते रहने के बावजूद हिसाब चुकता नहीं करते और प्रकाशक द्वारा थोड़ी सी सख़्ती करने पर वे बेदर्दी से पुस्तकें वापस कर बचे हिसाब को लटका देते हैं।

एक अन्य बड़ी समस्या है बढ़ी हुई डाक दरों की, जिस कारण पुस्तकें ख़रीदने की रुचि रखने वाला संभावित ग्राहक भी हतोत्साहित हो जाता है। कोरियर से पुस्तकें भेजना भी व्ययसाध्य है, इस व्यय को न पाठक वहन करना चाहता है और न ही प्रकाशक। इसलिए भी पुस्तकों की बिक्री पर विपरीत असर पड़ा है। पाठकों को नई-अच्छी प्रकाशित पुस्तकों की सूचना देने का एक बड़ा माध्यम था पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा। पर अब यह तंत्र बहुत कमजोर, लगभग नगण्य हो गया है। अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में इसके लिए स्थान न के बराबर है और जिनमें थोड़ा-बहुत है, वहां कतिपय कुछ लेखक-प्रकाशकों की ही पुस्तकें समीक्षित होती हैं। निष्पक्ष समीक्षा-आलोचना का समय बीत गया लगता है। अगर इसमें थोड़ी पारदर्शिता और निष्पक्षता बरती जाए तो संभव है, अच्छी पुस्तकों की ही चर्चा हो और पाठक उन्हें ख़रीदकर पढ़ने के लिए उद्यत हों।

इस पूरे परिदृश्य में भी साल-दर-साल हिंदी पुस्तकों के प्रकाशनों की संख्या बढ़ ही रही है, हां, आवृत्ति ज़रूर घट गई है। यह कुछ ऐसा ही है, जैसे पहले फ़िल्मों की गोल्डन जुबली, सिल्वर जुबली होती थी और 'शोले' व 'दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे' जैसी फ़िल्में कई सौ हफ्तों तक सिनेमाघर में टिकी रहती थीं। पर अब ऐसा नहीं हो रहा, फ़िल्में आती हैं, आनन-फानन में करोड़ों का व्यापार करती हैं और फिर स्मृति से लुप्त हो जाती हैं। ऐसे ही हर साल पुस्तकें खूब प्रकाशित हो रही हैं, कुछ बिक भी रही हैं। पर इनमें से कितनों ने पाठक के मन-मस्तिष्क में अपना स्थान बनाया है, जिसे पढ़ने के लिए पाठक लालायित हो उठे हों! यह प्रश्न अनुत्तरित है, हिंदी प्रकाशकों-लेखकों और पाठकों के लिए। इस बीच 'ऑनलाइन मार्केटिंग' का ज्वर चढ़ गया है और एमेजन, फ्लिपकार्ट, होम शॉप 18 आदि अनेक वेब पोर्टल पुस्तकों की बिक्री ऑनलाइन कर रही हैं। नेट पर अपनी रुचि की पुस्तक खोजिए, फटाफट भुगतान कर मंगाइए और पढ़ने का आनंद उठाइए। अभी गति धीमी है, पर आशा है, यह पाठक को पुस्तकों के निकट लाने में सहायक सिद्ध होगी।

prabhatbooks@gmail.com

हिन्दी और दक्षिण एशिया

अरुण महेश्वरी

लेखक वाणी प्रकाशन के स्वामी हैं। साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन में उनका नाम लगभग सर्वोपरि है। स्वयं साहित्यिक रुचि रखने के कारण लेखक-जगत में उनकी निरंतर आवाजाही है।

21वीं सदी का भारत, विश्व का एक समृद्ध बाज़ार है। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार विश्व में सबसे अधिक (356 मिलियन) युवा भारत में हैं। भारत में बहुभाषी भारतीय भाषाएं हैं और ये सभी भाषाएं समृद्ध से समृद्धतर हैं। इन सभी क्षेत्रीय भाषाओं को राष्ट्रीय पुरस्कारों से पुरस्कृत किया जाता रहा है। विश्व में भारतीय भाषा-भाषी लोगों की संख्या बहुत बड़ी आबादी के रूप में रह रही है। अगर हम विविध भाषाओं की पुस्तकों की बात करें तो ऐसे में भारतवासियों की विश्व के बाज़ार में पुस्तकों की उपलब्धता लगभग नहीं के बराबर है। प्रश्न यह है कि विश्वभर में रह रहे भारतीयों तक हमारा साहित्य किस प्रकार पहुंचे। इसके लिए हमें आवश्यकता है फ्लिपकार्ट/अमेजन जैसी संस्थाओं के सहयोग की, परन्तु ऐसी संस्थाएं अभी तक भारतीय भाषाओं का मार्केट नहीं समझ पाई हैं और पूंजी के अभाव के कारण भारत में यह बाज़ार अभी अछूता है।

हमारे यहां भारतीय भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए विदेशी प्रकाशकों ने प्रवेश करने का प्रयास किया, परन्तु वे सफल नहीं हो पाए, क्योंकि इस देश का व्यापाराना तरीका कुछ अलग है। हम पीढ़ियों से पुस्तक प्रकाशन के व्यवसाय में सक्रिय इसलिए हैं क्योंकि हमारी परम्परा में ज्ञान अनेक माध्यमों से जनमानस तक पहुंचाना, ज़्यादा से ज़्यादा सामान्य लोगों में प्रसारित होना सिर्फ व्यवसाय नहीं है। यह एक सामाजिक दायित्व भी है। यहां प्रकाशन व्यवसाय मात्र व्यापार ही नहीं माना जाता, बल्कि इस व्यापार को हम पीढ़ियों से संजोते हैं, सुरक्षित रखते हैं। बड़े व्यवसायी जिसे भूमण्डलीकरण कहते हैं, हम उसे अपने छोटे साधनों से जुगाड़ीकरण कहते हैं।

इस देश की प्रकृति, व्यवस्था विकसित देशों से अलग है। दक्षिण एशिया विशाल परन्तु अव्यवस्थित बाज़ार है। भारत मध्यवर्गीय समृद्ध देश है, जहां पर व्यापार के असीम रास्ते हैं, हम विकासशील हैं, विकसित होना चाहते हैं। विश्व में हिन्दी भाषा बोले जाने वाली 1.5 बिलियन लोगों की अपनी भाषा है। हवाई जहाज में यात्रा करनी हो या सेफ्टी पिन का विज्ञापन करना हो, हिन्दी भाषा में अपनी बात कहे बिना कोई भी भारत में आगे नहीं बढ़ सकता। सृजनात्मक लेखन और जनसंचार का सर्वश्रेष्ठ माध्यम हिन्दी ही रहा है। ऐसे में जहां हिन्दी प्रकाशन प्रणाली विश्वस्तरीय उत्पादन कर रही है, वहीं कई बुनियादी समस्याएं आज भी कायम हैं। लेखक-प्रकाशक

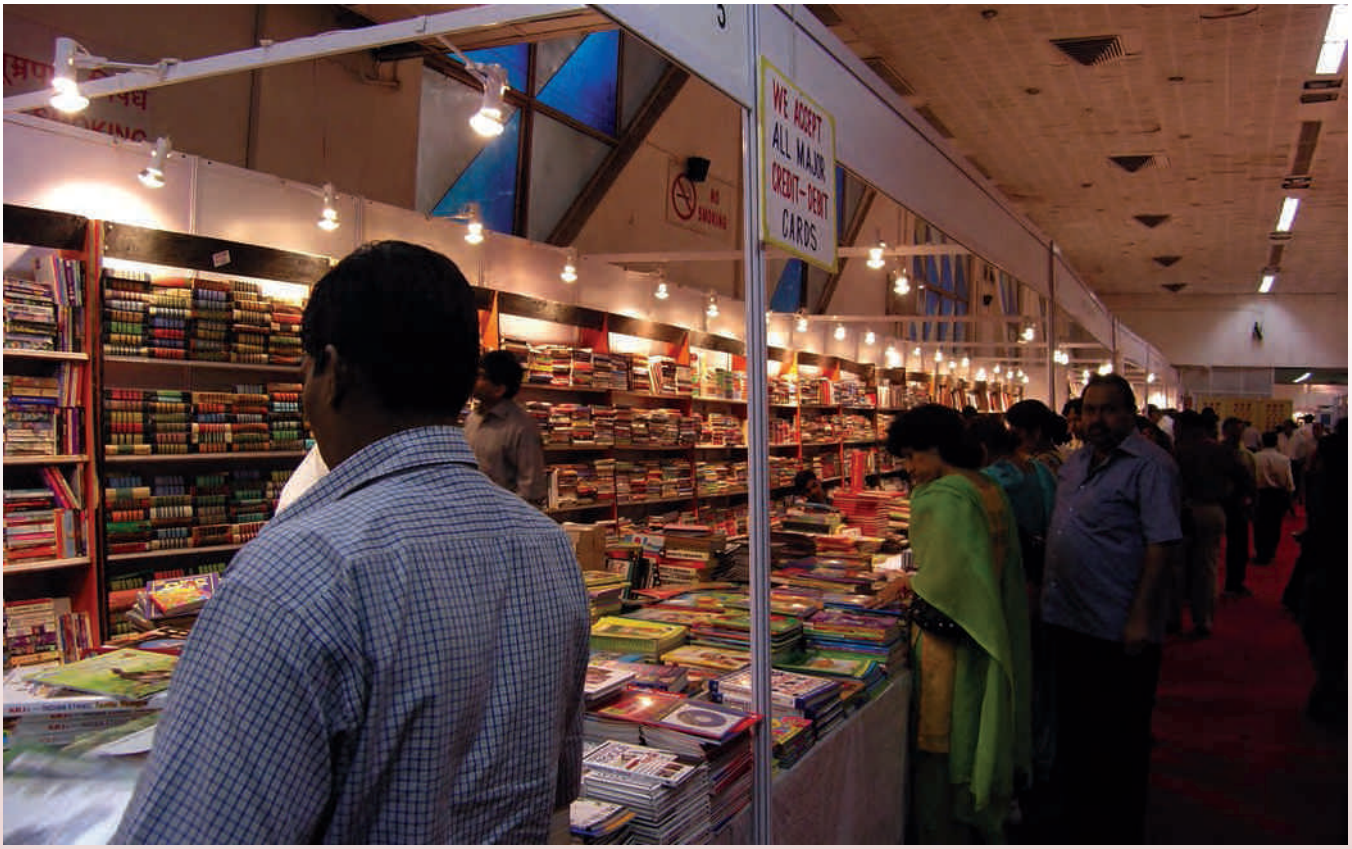

सम्बन्ध, लिटरेरी एजेंट की सकारात्मक भूमिका व पुस्तकों की विश्वस्तरीय मार्केटिंग, ऐसे कई पक्ष हैं जिनमें विकास की सम्भावनाएं हैं। हमारा भारतीय प्रकाशन व्यवसाय बहुत छोटा है, फिर भी हमारी भाषाओं में से अकेली हिन्दी ही विश्व के 38 विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है। अनेकों हिन्दी अख़बारों में एक अख़बार प्रतिदिन तीन करोड़ पाठकों तक पहुंचता है।

हमारे पास टेलेंट है, पर साधन की कमी है। इस वजह से हमें साधनहीन न समझा जाए। मिसाल के तौर पर ई-बुक का हम स्वागत करना चाहते हैं, परन्तु भारतीय भाषाओं के लिए ई-बुक की तकनीक अभी सुरक्षित नहीं है, जिस दिन हम तकनीक पर भरोसा कर लेंगे उस दिन हमारे बाज़ार में 40 से 45 प्रतिशत का विस्तार होगा। हमारे देश में पाठकों के विभिन्न स्तर हैं। सभी को पुस्तकें उपलब्ध कराना प्रकाशन का कार्य है, परन्तु यह इतना विशाल क्षेत्र है कि यदि विश्व के बड़े प्रकाशक हमारे साथ विश्वास व गम्भीरता से हाथ मिलाएं तो असीम सम्भावनाएं बन सकेंगी। हम उनका खुले दिल से स्वागत करेंगे। हमारे बाज़ार में विदेशी पुस्तकें हैं, परन्तु विदेशी बाज़ार में हमारी भाषा की पुस्तकें नहीं हैं जबकि भारतीय डायस्पोरा विश्वभर में है और अपने देश, अपनी दुनिया को बार-बार पढ़ना चाहता है। यहां पर हमें विश्व बाज़ार की आवश्यकता है कि वे भारतीय भाषाओं की किताबों को स्थान दें।

साउथ एशियंस पब्लिशिंग इंडस्ट्री विश्व की अन्य भाषाओं में जाना चाहती है बल्कि विशेष रूप से हिन्दी के लिए कहूं, विश्व की भाषाओं में जाना ही नहीं बल्कि विश्व की भाषाओं को भारतीय भाषाओं में लाना भी चाहती है। खड़ी बोली हिन्दी के विशाल पाठक समुदाय को अनुवाद पढ़ने की आदत है। हिन्दी अनुवादों की भाषा है। हम भारतीय भाषाई प्रकाशक दक्षिण एशियाई भाषा पर केन्द्रित प्रकाशन कर रहे हैं। बांग्ला, उर्दू और नेपाली साहित्य बहुत बड़ी मात्रा में हमारे पास उपलब्ध है और अब सिंघली और श्रीलंकाई तमिल साहित्य हमारे लक्ष्य हैं।

अन्ततोगत्वा, फ्लिपकार्ट/अमेजन, ई-बुक, अनुवाद, नई तकनीक, विदेशी प्रकाशकों का सहयोग हिन्दी व भारतीय भाषाओं को मिले तो हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय विश्वस्तर पर अपना स्थान बनाकर अपने लक्ष्य के समीप पहुंच सकेगा।

vaniprakashan@gmail.com

हिंदी प्रकाशन जगत में लोकप्रिय साहित्य के क्षेत्र में श्री नरेन्द्र वर्मा का नाम अग्रणी पंक्ति में आता है। न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व में उनका वितरण तंत्र है। सोशल मीडिया और इंटरनेट ने पुस्तकों को कैसे परास्त कर दिया, वे बता रहे हैं।

पुस्तकें इंसान की सबसे अच्छी मित्र हैं

नरेन्द्र कुमार वर्मा

किसी ने सच ही कहा है कि 'पुस्तकें इंसान की सबसे अच्छी मित्र होती है' परंतु भाग-दौड़ से भरे इस प्रतियोगी संसार में आज मनुष्य इस मित्र से भी वंचित-सा होता नजर आ रहा है, क्योंकि उसकी नजरें पुस्तकों पर कम, मोबाइल और कम्प्यूटर पर ज़्यादा टिकने लगी हैं, उंगलियां पन्नों को पलटने की ज़हमत न उठाकर स्क्रीन के टच से दोस्ती करने लगी हैं और पुस्तकें जो मित्र बनकर जीवन व व्यक्तित्व का निर्माण कर सकती थीं, वे अलमारियों में कैद धूल-मिट्टी की पर्तों से दबी जा रही हैं।

फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सअप जैसी सोशल मीडिया से पठन रुचि का ह्रास हो रहा है। यह अत्यंत चिंता का विषय है। लोगों में विशेषकर युवा वर्ग में पुस्तकों के प्रति रुझान कम हो रहा है। वह मॉल में फ़िल्म देखने, पीज़ा खाने में हज़ार रुपये तो खर्च कर सकता है, परंतु सौ रुपये की एक पुस्तक खरीदने में हिचकिचाता है। उसे यह तो पता है कि किसी के कम्प्यूटर का पासवर्ड कैसे हैक किया जाता है, परंतु यह नहीं पता कि हमारा राष्ट्रगान किसने लिखा है या हमारा पहला राष्ट्रपति कौन था!

बात सिर्फ ज्ञान की ही नहीं, भाषा की भी है क्योंकि जिस भाषा का प्रयोग सोशल मीडिया साइट्स पर लोग करते हैं, न तो वह हिन्दी है, न ही इंग्लिश। वह हिंग्लिश बनकर रह गई है। ऐसे में हम लाख बात करें हिन्दी के सम्मान की या सम्मेलनों व पुस्तक मेलों की, सब निरर्थक एवं बेबुनियादी से होते नजर आ रहे हैं।

हिन्दी सप्ताह तो जैसे सरकारी विभागों में जबरन मनाया जाने वाला एक औपचारिक सप्ताह बनकर रह गया है और पुस्तक मेले लोगों के लिए पिकनिक स्पॉट्स बनते जा रहे हैं। माना कि टैक्नोलॉजी का जमाना है। हमें समय के साथ चलना चाहिए, परंतु हमें इस बात का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए कि ये सोशल मीडिया साइट्स हमें क्या परोस रही हैं! ये क्या प्रचारित व प्रसारित कर रही हैं? मनोरंजन से परिपूर्ण इनकी जानकारियां हमें रोमांचित तो करती हैं, परंतु आत्मा के स्तर पर हमारे भीतर कोई रूपांतरण नहीं कर पातीं।

इतिहास गवाह है कि हमारी पुस्तकों एवं ग्रंथों ने कभी किसी को गुमराह नहीं किया बल्कि

गुरु बनकर मार्गदर्शन ही किया है, परंतु सोशल साइट्स के चलते न केवल क्राइम बढ़ा है बल्कि शोध बताते हैं कि मनुष्य पहले की बनिस्पत मानसिक एवं शारीरिक रूप से अधिक रुग्ण व कमजोर हुआ है।

हम चाहते हैं पठन रुचि का विकास हो। पुस्तकों को पढ़ने की आदत का विकास हो। ज्ञान का प्रकाश फैले और इस बदलती दुनिया में पुस्तकें इतिहास न बन जाएं। हर गांव, जिला, स्कूल, कॉलेज, यूनिवर्सिटी में लायब्रेरी हो, पुस्तकों की सूची हो और किताब पाठक को जारी भी की जाए। यह देश का सबसे ज़रूरी और बड़ा काम है जो रुका हुआ है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय को जागरूकता के साथ इस काम को करना चाहिए।

यदि हम मानव एवं देश का या इस पृथ्वी का भला चाहते हैं तो हमें मनुष्य को फिर से पुस्तकों से जोड़ना होगा, उसे उसके महत्व और योगदान को समझाना होगा। पुस्तकें मात्र पुस्तकें नहीं, हमारे देश की संस्कृति और संस्कार का आधार हैं। पुस्तकों का मर जाना किसी देश के गौरव, सम्मान और संस्कृति का मर जाना है। ऐसे में प्रकाशक, पुस्तक मेले एवं विश्व हिन्दी सम्मेलन आदि जो कुछ कोशिश कर रहे हैं, हमें उनका सहयोग करना चाहिए। उनके कार्य एवं हौसलों को बढ़ावा देना चाहिए, क्योंकि इन्हीं पुस्तकों के माध्यम से हम न केवल अपनी भाषा व साहित्य को बचा सकते हैं, बल्कि देश की संस्कृति एवं संस्कार को भी जिन्दा रख सकते हैं।

nk@dpb.in

लेखक सुप्रसिद्ध कथाकार, नाटककार तथा जामिआ मिल्लिआ इस्लामिया से अवकाशप्राप्त प्रोफेसर हैं। आपको अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मानों से नवाज़ा गया है।

हिंदी भी और हिंदी समाज भी

प्रो. असग़र वजाहत

मध्य योरोप के देश हंगरी की राजधानी बुदापैश्त में **'ओत्वोश लोरांद विश्वविद्यालय के भारोपीय अध्ययन'** विभाग में पांच साल हिंदी पढ़ाने के अनुभवों के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि विदेशों में हिंदी की पढ़ाई केवल पढ़ाई तक या हिंदी की परम्परागत पढ़ाई तक सीमित नहीं होती। भारत में हिंदी का जो अर्थ या अभिप्राय है वह विदेशों में जाकर और व्यापक हो जाता है। विदेशों में हिंदी का अर्थ हिंदी भाषा, हिंदी समाज का इतिहास, हिंदी समाज की संस्कृति, विचारधाराएं, विश्वास, आचार-व्यवहार आदि हिंदी में शामिल हो जाते हैं। इस तरह विदेश में हिंदी का अर्थ व्यापक हो जाता है।

मैं सन् 1992 की जुलाई में बुदापैश्त पहुंचा था। यहां सोलवीं शताब्दी में स्थापित 'ओत्वोश लोरांद विश्वविद्यालय के भारोपीय अध्ययन' विभाग में पिछले डेढ़ सौ साल से संस्कृत की विधिवत पढ़ाई हो रही है। यह जानकारी मुझे पहले नहीं थी। यह भी नहीं मालूम था कि पिछले पचास-साठ साल से यहां हिंदी की पढ़ाई भी जारी है। मैंने यह जानने का प्रयास किया था कि यहां छात्र संस्कृत और हिंदी क्यों पढ़ते हैं। मैं अपने भारतीय अनुभवों के आधार पर यह समझ रहा था कि संभवत: हिंदी पढ़ाई का उद्देश्य नौकरी पा लेना होता होगा। लेकिन यहां पता चला कि ऐसा नहीं है। हंगेरियन छात्रों का उद्देश्य संस्कृत और हिंदी की पढ़ाई के माध्यम से ज्ञान अर्जित करना होता है।

भाषा और साहित्य का ज्ञान उस समय तक पूरा नहीं हो सकता जब तक भाषा जहां बोली जाती है वहां के समाज और संस्कृति का ज्ञान न हो। इसलिए यूनीवर्सिटी का भारोपीय अध्ययन विभाग पहली नज़र में मुझे भारत का एक टुकड़ा लगा था। दीवारों पर भारत था, मेज़ पर भारतीय कलाकृतियां थीं, भारतीय कुशन कवर थे, हिंदी के कलैंडर थे और हिंदी विभाग की अध्यक्षा डॉ. मारिया नेज्यैशी भारतीय कपड़े पहने थीं। यह मुझे बाद में पता चला कि डॉ. मारिया भारतीय कपड़े ही पहनती हैं। हिंदी भाषा और संस्कृति ने पूरी तरह उन्हें अपनी जकड़ में ले लिया है।

भारोपीय अध्ययन विभाग में छात्रों को आसानी से प्रवेश नहीं मिलता। जो छात्र बहुत मेहनती होते हैं। जिनके अंदर लगन होती है वे ही विभाग में प्रवेश पाते हैं। यही कारण है कि हिंदी की पढ़ाई जिस गति से आगे बढ़ती है उसकी कल्पना करना कठिन है। पहले वर्ष जो छात्र आते हैं

उन्हें पहले सप्ताह में ही हिंदी की पूरी वर्णमाला समझने और याद करने का आदेश दिया जाता है और वे वैसे ही करते हैं। हंगेरियन छात्र वैसे भी बहुत मेहनती और जिज्ञासु होते हैं। पहला वर्ष पूरा होने के बाद ये छात्र थोड़ी-बहुत हिंदी बोल और समझ लेते हैं। इस अवसर पर भारत से गए हिंदी अध्यापक की भूमिका शुरू होती है। हंगरी में भारत से गए शिक्षक के लिए एक और बड़ी चुनौती यह है कि हंगेरियन स्कूल शिक्षा बहुत **सुदृढ़** है और स्कूल में ही, 12वीं क्लास पास करते-करते छात्रों का विश्व साहित्य की महत्वपूर्ण रचनाओं से परिचय हो जाता है। इस कारण हिंदी अध्यापक यदि छात्रों को युग के अनुसार कविता पढ़ाने का प्रयास करता है तो काफी दिक्कतें सामने आती हैं। उदाहरण के लिए मैं एक बार कक्षा में मैथिलीशरण गुप्त की एक कविता पढ़ा रहा था और देख रहा था कि छात्रों के चेहरे पर संतोष का भाव नहीं है। वे मैथिलीशरण गुप्त की सीधी-सादी कविता से बिल्कुल प्रभावित नहीं लग रहे थे। मुझे यह आभास अच्छी तरह हो गया कि वे इस प्रकार की कविता को पसंद नहीं कर रहे हैं। तब मेरे लिए इसके अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं था कि छायावाद पूर्व हिंदी कविता को छोड़ कर छायावाद और नई कविता पढ़ाने लगूं।

जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं बुदापैश्त में हिंदी का व्यापक अर्थ है। इसके अंतर्गत सभी छात्र-छात्राएं प्रमुख भारतीय पर्व बड़े उत्साह से मनाते हैं। 'दिवाली' के दिन सभी छात्राएं भारतीय कपड़े पहन कर आती हैं। उनकी रंग-बिरंगी साड़ियां और दूसरे पहनावे विभाग में चका-चौंध पैदा कर देते हैं। छात्र भी यह प्रयास करते हैं कि भारतीय कपड़े पहन कर विभाग में आएं। प्रत्येक छात्र अपने घर से किसी प्रकार का भारतीय पकवान लाती हैं और छात्र पेय पदार्थों की व्यवस्था करते हैं। पूरे विभाग में बड़े उत्साह से दिवाली मनाई जाती है। एक-दो गाने की पंक्तियां गाई जाती हैं। मिठाई खाई जाती है। इस अवसर पर सभी लोग हिंदी में बातचीत करते हैं। इसी तरह दूसरे पर्व मनाए जाते हैं और ख़ास तौर से 'होली' अपने तमाम रंगों के साथ विभाग को रंगीन बना देती है।

संस्कृत और हिंदी के प्रति आस्था का एक बहुत रोचक प्रसंग मेरे सामने आया था। मुझे यह बताया गया कि एक हंगेरियन संस्कृत-हिंदी के विद्वान आजीविका चलाने के लिए घोड़ों का पालन-पोषण करते हैं और खाली समय में संस्कृत और हिंदी का अध्ययन करते हैं। मैं उनसे मिलने उनके गांव गया था। जहां मैंने स्वयं देखा कि वह दिन भर घोड़ों की सेवा में लगे रहते हैं जिससे उसे जीविका चलाने लायक आमदनी हो जाती है। शाम को हमने देखा कि नहा-धोकर वे अपने स्टडी में आए और उन्होंने हमें बताया कि आजकल वे क्या पढ़ और लिख रहे हैं। संस्कृत और हिंदी में गहरी रुचि के कारण उन्होंने एक ऐसा रास्ता चुना है जो उन्हें अपने 'पहले प्रेम' से जोड़े रखता है।

बुदापैश्त के भारतीय दूतावास ने भी हिंदी भाषा और संस्कृति को लोकप्रिय बनाने की दिशा में बहुत अधिक योगदान दिया है। दूतावास से जुड़ा सांस्कृतिक केन्द्र हंगरी और भारत के बीच एक सांस्कृतिक कड़ी का काम करता है। वैसे इसकी स्थापना से पहले भी हंगरी में ऐसे लेखकों, कवियों, रंगकर्मियों, संगीतज्ञों की कमी नहीं रही जो अपने-अपने स्तर पर भारतीय संस्कृति से ताल-मेल बैठाते रहे हैं। महान सितारवादक रवि शंकर के शिष्य अन्द्राश कोज़मा पिछले तीस-पैंतीस साल से हंगरी में सितार बजा रहे हैं। सलाइ पीटर तबला बजाते हैं। शोमी पंका ने बुदापैश्त में 'भरतनाट्यम' संस्थान खोला है। राम कथा पर केन्द्रित 'हंगेरियन नाटक' भी काफी चर्चा में रहा था। इसके अतिरिक्त हिंदी से हंगेरियन अनुवादों का कार्य भारोपीय अध्ययन विभाग में लम्बे समय से हो रहा है।

हंगेरियन हिंदी के विद्वान अच्छी तरह जानते हैं कि हिंदी प्रदेशों की कल्पना समोसे और गुलाब जामुन के बिना नहीं की जा सकती। यही कारण है कि समोसे हंगेरियन हिंदी विद्वानों के भोजन का एक प्रमुख हिस्सा बन चुके हैं। वे घरों में समोसे बना लेते हैं। यह बात ज़रूर है कि उन्हें तेल में तलने के बजाय 'बेक' करते हैं। गुलाब जामुन भी बनाने के प्रयास होते रहते हैं। कुल मिलाकर हिंदी और उत्तर भारतीय भोजन एक-दूसरे के पूरक हैं।

पांच साल तक बुदापैश्त में हिंदी पढ़ाने के अनुभव के उपरान्त मैं यह कह सकता हूं कि हर विदेश में हिंदी पढ़ाने का अलग-अलग तरीका खोजने की आवश्यकता है। यह नहीं हो सकता कि किसी एक तरीके से हर देश में हिंदी पढ़ा दी जाए। प्रत्येक देश कि अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपना इतिहास और अपना समाज है। हिंदी शिक्षण उसके अनुकूल होना चाहिए। स्थानीयता को महत्व देना चाहिए। दूसरों की बात समझे बिना अपनी बात थोपने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। संसार के सभी देश हिंदी में रुचि ले रहे हैं क्योंकि हिंदी समाज में उनकी रुचि बढ़ रही है।

awajahat45@gmail.com

हिंदी बोली मैं तुम्हारे घर आऊंगी

डॉ. विजया सती

लेखिका विगत चार दशक से दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में पढ़ा रही हैं। कुछ समय तक वे जीवन पर्यंत शिक्षण संस्थान में हिंदी ई-लर्निंग के लिये पाठ योजनाएं विकसित करती रही हैं। हंगरी और कोरिया में उन्होंने हिंदी शिक्षण किया है। वे एक संवेदनशील कवयित्री और प्रखर समीक्षक हैं।

आज से कई वर्ष पहले जब मैं विदेश में हिंदी पढ़ाने के लिए स्वयं को तैयार कर रही थी, तब पहले साक्षात्कार में पूछे गए इस प्रश्न का ठीक उत्तर मेरे पास नहीं था कि मैं उन छात्रों को हिंदी कैसे पढ़ाऊंगी जो हिंदी तो जानते ही नहीं साथ ही अंग्रेज़ी भी नहीं जानते और मैं उनकी भाषा नहीं जानती!

कई बार पहले कठिन मालूम होने वाला काम सरल और पहले सरल मालूम पड़ने वाला काम कठिन निकल आता है। कुछ ऐसा ही विदेश में हिंदी शिक्षण को लेकर मेरे साथ हुआ। आईसीसीआर के सौजन्य से मुझे सवा दो वर्ष हंगरी की राजधानी बुदापैश्त में हिंदी पढ़ाने का अवसर मिला। पिछले वर्ष मैं दक्षिण कोरिया की राजधानी सिओल के विदेशी भाषा विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाने गई।

सौभाग्य से मुझे ऐसे विद्यार्थी मिले जिन्हें वर्णमाला के स्तर तक आरम्भिक हिंदी का ज्ञान था, किन्तु सिओल में मैंने वर्णमाला से भी आरम्भ किया। दोनों ही देशों में विद्यार्थियों की अंग्रेज़ी बहुत अच्छी नहीं थी। तब मेरे सामने क्या रास्ता था? आज लिख सकती हूं कि सब कुछ इतना कठिन भी नहीं था। दरअसल विदेश में हिंदी शिक्षण हमसे उस देश की भाषिक शब्दावली और भाषा की प्रकृति को थोड़ा बहुत जान लेने की मांग भी करता है। पहले-पहल हंगरी में जब विभाग में आते-जाते मैंने 'विराग' और 'पतिका' जैसे लगभग हिंदी शब्द लिखे हुए देखे, तब मैं उनका अर्थ जान लेने को उत्सुक हुई। यह अनुभव छात्रों के लिए सुखद रहा कि नई प्रोफ़ेसर हमारी भाषा समझने की कोशिश कर रही हैं! जब पढ़ाने से पहले मैंने तमाम सब्जियों के नाम, दिन, सप्ताह, महीनों के नाम और गिनती हंगेरियन में जान ली तो राह सचमुच आसान हो गई। कुछ ही समय बाद छात्रों के साथ मिल कर समान उच्चारण वाले शब्दों की सूची बनाई। यह बहुत रोचक खेल जैसा हो गया। हंगेरियन भाषा का कुथ्या हमारा कुत्ता है, जेब के लिए उनका उच्चारण येब है। बड़े आकार की प्लेट उनके लिए ताल है, जो हमारे थाल के कितना निकट है! अध्यापन में थोड़ी मदद अभिनय से भी ली। लेना, छीनना और झपटना जैसे शब्दों के अर्थ मैंने अभिनय द्वारा ही समझाए! अपनी बात को रोचक तरीके से स्पष्ट करने में मुहावरे बहुत काम आए, ईद का चांद मुहावरे का कोई सन्दर्भ हंगरी के छात्रों के पास नहीं था। तब मैंने उनके त्यौहारों, उनकी तैयारी और धूमधाम की बात की, उपहार, दोस्त, परिवार, प्रियजन से मिलने की बात की। तभी भारतीय त्यौहारों के भी

इसी पहलू को दिखाते हुए ईद तक आ गए। इस अवसर पर चांद के दिखाई देने के महत्व को दर्शाया और फिर समझ गए वे कि ईद का चांद होने का क्या अर्थ है! इसी सन्दर्भ में प्रेमचंद के परिचय से उनकी कहानी ईदगाह तक भी हम साथ-साथ आए। कहानी ने हर मन को ऐसा आंदोलित किया कि अंतत: मंच पर कहानी का नाट्यरूप प्रस्तुत करके ही छात्र संतुष्ट हो सके।

सिओल में सभी कक्षाओं में इंटरनेट-प्रोजेक्टर सुचारू चलते थे। एक और अनेक की अवधारणा को समझाने के लिए जब मैंने 'एक चिड़िया' गीत का वीडियो सामने रखा तब उन चित्रों ने न केवल एक और अनेक का अर्थ स्पष्ट किया बल्कि छात्र तितली, गिलहरी, चिड़िया का अर्थ भी स्मृति में बसा सके। यहीं मैंने तितलियां, गिलहरियां जैसी बहुवचन की अवधारणा को भी स्पष्ट कर दिया। इसी गीत में तमाम भारतीय फूलों के नाम भी आ गए, उनके पाठ्यक्रम का हिस्सा बन कर, आखिरकार उन्हें तो हिंदी भाषा की अधिकाधिक शब्दावली को अर्थ सहित याद रखना है।

विदेश में हिंदी शिक्षण रोचक और रचनात्मक है। हमें हर समय यह सोचकर पाठ सामग्री तैयार करनी है कि वह छात्रों के लिए रुचिकर और ज्ञानवर्धक हो। भाषा के साथ देश को जानने की जिज्ञासा का समाधान करने का साधन भारतीय फ़िल्म, संगीत और नृत्य बने। भारतीय परिधान हिंदी फ़िल्मों से अधिक अच्छी तरह कहां देखे जा सकते थे? 'पथेर पांचाली' फ़िल्म देखने के बाद हंगेरियन छात्रा ने प्रश्न किया कि क्या भारतीय महिलाएं साड़ी पहन कर सोती हैं? बदलते भारत की चर्चा करना ऐसे ही प्रश्नों के जवाब में संभव होता था। दोनों देशों में बॉलीवुड नृत्य समूह बने थे, जो अपनी प्रस्तुतियां भी देते थे। फ़िल्मी गीतों के माध्यम से हिंदी के शब्द संसार पर बात करना और हिंदी-उर्दू की निकटता को समझाना भी सहज हो सका।

भाषिक स्तर पर विदेशी छात्रों के लिए हिंदी के यह प्रयोग देर से समझ में आने वाले सिद्ध हुए –

मैं तुम्हारे घर आऊंगी।

मैं तुम्हारे घर जाऊंगी।

मेरा परिवार ठीक है जैसे प्रयोग के स्थान पर वे अपना परिवार ठीक है जैसा प्रयोग ही करते। एक छात्रा ने अपने निबंध में यह लिखा—

मेरे लिए अपने पिता जी प्रेरणात्मक व्यक्ति हैं।

नहीं को वाक्य में कहां स्थान दें यहां भी वे अक्सर गड़बड़ा जाते|

यह घर नहीं सुन्दर है, अक्सर ऐसा ही लिखते-बोलते।

न शब्द का प्रयोग उनकी समझ के अनुसार नकारात्मक ही हो सकता है, इसलिए हिंदी में न के आग्रहपूर्ण सकारात्मक प्रयोग को समझना उनके लिए काफी मुश्किल होता।

आ जाओ न, चले आओ न, खा लो न!

कई बार छात्रों ने एक शब्द की तर्ज़ पर दूसरा शब्द गढ़ दिया।

वह चला गया

उसका घर जला (जल) गया।

समान उच्चारण वाले शब्द – त्सुकोर यानी शक्कर

हिंदी अध्यापन में बीबीसी हिंदी वेबसाइट और हिंदी विकिपीडिया बहुत सी जानकारियां देने में सहायक हुए।

भाषा का पुल

जहां मैं हिंदी पढ़ा रही थी उन दो देशों में दो विशिष्ट नदियां शहर की पहचान थीं।

बुदापैश्त में डैन्यूब जिसका लोकप्रिय हंगेरियन नाम दुना था और सिओल में हान। दोनों नदियों पर कई खूबसूरत पुल थे और आसपास था जीवन का भरपूर उल्लास। दूर देश में मेरे जीवन में हिंदी भाषा एक अनूठे पुल की तरह थी, उसीसे होकर मैं छात्रों तक पहुंचती और वे मुझ तक आते। 'अपना कहा आप ही समझे तो क्या समझे' की पीड़ा न थी। सारी जीवन्तता हिंदी भाषा की ही देन थी, बिन हिंदी सब सून!

बुदापैश्त में एक कक्षा थी देश परिचय। भाषा के साथ भारतीय रहन-सहन, रीति-रिवाज़, खान-पान, पहरावे, नृत्य-संगीत-कलाओं के परिचय की कक्षा। इस कक्षा ने मुझे उस देश के बारे में यही सब जान लेने का आह्लादकारी अनुभव दिया जहां मैं अतिथि थी। भारतीय जीवन की सच्चाई उकेरने वाले लेखकों के बारे बताते हुए जरा पूछ-भर लेते ही कि आप भी ऐसे ही किसी हंगेरियन लेखक के विषय में बताएं, जिस उमंग के साथ वे दर्ज करते अपने देश की साहित्यिक उपलब्धियां, उसे संक्षेप में शब्दबद्ध करना संभव नहीं।

इस कक्षा में हमने देश के परिवेश की भी बात की, पेड़-पौधे, नदी-पहाड़, समुद्र और शहर। हिंदी भाषा में पाठ्य पुस्तक तैयार हो गई, बुदापैश्त दर्शन! वे गंगा और हिमालय के बारे में जानते और मैं तीसा नदी और कार्पाथ पर्वत श्रृंखलाओं के बारे में। वे बनारस की सैर करते और मुझे ले जाते कला की नगरी पेच।

यह समस्त सामग्री भारोपीय अध्ययन विभाग की भित्ति-पत्रिका 'प्रयास' (htpp://elteprayashi.blogspot.hu) के ग्रीष्म, वसंत, शरद अंकों की आधार-सामग्री बन जाती। एक पंथ दो ही काज क्यों – यहां तो तीन काज होते !

vijayasatijuly1@gmail.com

लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक और प्रयोगधर्मी शिक्षा-शास्त्री हैं। आपको अनेक देशों में हिंदी शिक्षण का सुदीर्घ अनुभव है। वे चंद्र-बिंदु लगाने के पक्षधर हैं।

हिंदी-नाट्य–मंचन एक शैक्षिक सोपान

डॉ. हरजेन्द्र चौधरी

विदेशों में हिंदी-शिक्षण में नाटकों का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान है। विदेशी विश्वविद्यालयों व संस्थानों में देशज भाषा-भाषी ('नेटिव स्पीकर') प्राध्यापक के निर्देशन में हिंदी नाटक के पूर्वाभ्यास में जुटे विद्यार्थी जब पूरे कार्य विदेशों में हिंदी-शिक्षण में नाटकों का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान है। विदेशी विश्वविद्यालयों व संस्थानों में देशज भाषा-भाषी ('नेटिव स्पीकर') प्राध्यापक के निर्देशन में हिंदी नाटक के पूर्वाभ्यास में जुटे विद्यार्थी जब पूरे कार्य (एक्शन), हाव-भाव व उतार-चढ़ाव के साथ बोलने लगते हैं तो उनके उच्चारण में अभूतपूर्व सुधार आने लगता है। उनकी अपनी भाषा की ध्वनि-व्यवस्था का हस्तक्षेप घटता जाता है तथा वे हिंदी भाषा की अपरिचित ध्वनियों के 'अटपटेपन' से परेशान होना छोड़कर उन नई ध्वनियों के नए पन व मिठास से पहले चमत्कृत होते हैं और फिर धीरे-धीरे सहज रूप से उन ध्वनियों के प्रयोग के आदी होते जाते हैं। ऐसे में हिंदी सीखने-सिखाने की प्रक्रिया अधिक रुचिकर व गतिशील हो जाती है।

नाटक के पूर्वाभ्यास के दौरान नाटक-विशेष से जुड़े परिवेश को उसके सूक्ष्म ब्यौरों में समझने -पकड़ने का उपक्रम भी साथ-साथ चलता रहता है। भारतीय संस्कृति व समाज को समझने में विदेशी विद्यार्थियों को पर्याप्त सहायता मिलती है। स्पष्ट है कि विदेशी विश्वविद्यालयों व संस्थानों में विद्यार्थियों के लिए हिंदी-नाट्य-मंचन हिंदी भाषा व उससे जुड़ी संस्कृति को जानने-समझने की एक व्यावहारिक व मनोरंजक प्रविधि है, जिसके दूरगामी सकारात्मक परिणाम सामने आते हैं। यह बात मैं जापान के ओसाका विदेशी भाषा-अध्ययन विश्वविद्यालय (1994-1996) व ओसाका विश्वविद्यालय (2010-2012) तथा पोलैंड के वारसा विश्वविद्यालय (2001-2005) के अपने अध्यापन-अनुभवों के आधार पर कह रहा हूं।

जापान के ओसाका विदेशी भाषा-अध्ययन विश्वविद्यालय में हिंदी-शिक्षण की प्रविधि के रूप में हिंदी-नाट्य-मंचन की परम्परा का श्रीगणेश 1994 में हुआ। उस वर्ष विश्वविद्यालय के वार्षिक उत्सव में हिंदी नाटक के मंचन का निर्णय मूलतः जून-जुलाई में लिया गया था। दक्षिण एशियाई विभाग के विद्यार्थियों व प्राध्यापकों के उत्साहपूर्ण सहयोग से करीब तीन महीने चले नियमित नाट्य-पूर्वाभ्यासों के बाद हिंदी में महाकवि कालिदास का विश्व-प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुंतलम' मंचित किया गया तो अनेक तरह की आशंकाओं का निवारण तो हुआ ही, साथ ही

जापानी विद्यार्थियों की हिंदी-नाट्य-क्षमता के प्रति एक विश्वास भी जागा। इस मंचन के अवसर पर अनेक जापानी हिंदी-प्रेमियों व भारतीयों की ओर से उत्साहजनक प्रतिक्रिया पाकर हमें अपना श्रम और प्रयास सार्थक लगने लगा। यह एक ऐसी शुरुआत थी, जिससे जापान में हिंदी नाटक की ठोस परम्परा चल निकली।

आज से बीस साल पहले, 1995 में 'साचिको की शादी' नामक नाटक का मंचन किया गया। जापान व भारत के भाषायी-सांस्कृतिक सन्दर्भों को इस नाटक में बख़ूबी पिरोए जाने से भाषा-शिक्षण की प्रविधि के तौर पर इसका आवश्यकतानुसार उपयोग करना सम्भव हो सका। दोनों देशों की जीवन-पद्धति के अंतर से जुड़े अनेक दृश्यों तथा स्थितियों के प्रस्तुतिकरण से नाटक बहुत दिलचस्प और गुदगुदाऊ हो गया था। मुख्यतः भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया को सहज-सुचारू बनाने के लक्ष्य को ध्यान में रखकर तैयार व मंचित किए गए इस नाटक में हिंदी भाषा के जनप्रचलित वैविध्य को विभिन्न भाषायी-शैक्षिक पृष्ठभूमियों वाले भारतीय पात्रों के माध्यम से सामने लाया गया। नाटक में एक सिख पात्र पंजाबी व पंजाबी-प्रभावित हिंदी का इस्तेमाल करता है तो एक अन्य पात्र अपनी हिंदी में अंग्रेज़ी के शब्दों और वाक्यांशों को घुसेड़कर दिल्ली शहर की इस विशिष्ट भाषायी बीमारी के लक्षण प्रकट करता रहता है। ओसाका विश्वविद्यालय के तत्कालीन विद्यार्थियों को हिंदी भाषा की ध्वनियों, उनके विशिष्ट उच्चारणों का अभ्यास कराने के अलावा हिंदी के वैविध्यपूर्ण और जीवंत रूप से उनका परिचय कराने में इस नाटक ने एक सार्थक भूमिका निभाई थी।

ओसाका विदेशी भाषा-अध्ययन विश्वविद्यालय का नाट्य-मंचन 1995 में इस अर्थ में ऐतिहासिक घटना बन गया कि उसने विश्वविद्यालय-परिसर की परिधि को तो लांघा ही, ओसाका शहर की सीमाओं के बाहर भी अपने झंडे गाड़ दिए। 'साचिको की शादी' नामक इस नाटक ने पश्चिमी जापान की तत्कालीन हिंदी-गतिविधियों के प्रचार-प्रसार में अभूतपूर्व इज़ाफा किया। मंचन का निर्णय किए जाने के बाद अनेक नए-पुराने विद्यार्थी हिंदी-नाटक-मंडली में शामिल होने को आगे आए। जब तीसियों जोशीले युवा (अभिनेता-अभिनेत्रियां) नाटक में हिस्सा लेने के लिए सामने आए तो उन सबको नाटक में भूमिका देने के उद्देश्य से 'साचिको की शादी' के लेखक-निर्देशक के नाते मुझे दो अंकों वाले उस नाटक का तीसरा अंक भी लिखना पड़ा था। नवम्बर 1995 में विश्वविद्यालय के वार्षिक समारोह के अवसर पर एक मनोरंजक और गतिशील कॉमेडी के रूप में वह नाटक ख़ूब सराहा गया। दिसम्बर 1995 में भारतीय दर्शकों के लिए व उनके सहयोग से कोबे नामक शहर में इसका मंचन किया गया, जापानी अभिनेताओं-अभिनेत्रियों के मुख से 'ठेठ' हिंदी सुन-सुनकर भारतीय दर्शक ख़ूब उल्लसित, गर्वित और लोटपोट हुए। जापानी मीडिया में भी हिंदी के इस सांस्कृतिक आयोजन को जगह मिली। रेडियो जापान (एन.एच.के. तोक्यो) से इस नाटक के कुछ अंशों के अलावा लेखक-निर्देशक की भेंटवार्ता व कुछ अभिनेता-अभिनेत्रियों के साक्षात्कारों का प्रसारण किया गया। इससे प्रोत्साहनपूर्ण परिवेश निर्मित हुआ।

नाटक में भाग लेने वाले अनेक विद्यार्थी हिंदी में बातचीत करने में होने वाली हिचक से मुक्ति पाने लगे। 'अभिज्ञान शाकुंतलम' व 'साचिको की शादी' की प्रस्तुतियों के सकारात्मक परिणाम देखने में आ रहे थे। स्पष्ट हो गया था कि हिंदी-नाट्य-मंचन हिंदी-शिक्षण को सुचारू व रुचिकर बनाने में प्रभावी भूमिका निभाता है।

विदेशी विश्वविद्यालयों में कक्षा की चारदीवारी के भीतर बहुधा शुद्ध व मानक हिंदी का प्रयोग किए जाने के कारण विद्यार्थी हिंदी की जीवंत अनेकरूपता और उसके सम्पन्न वैविध्य से प्रायः अछूते रह जाते हैं। यही कारण है कि भारत आने पर उन्हें बोलचाल की हिंदी समझने व बोलने में अच्छी-ख़ासी दिक़्क़त पेश आती है। विदेशों में पढ़ाने वाले भारतीय प्राध्यापक परिस्थितिवश जनप्रचलित हिंदी सिखाने के विशेष दायित्व को निभाने का सीमित प्रयास ही कर पाते हैं। जापान में 'साचिको की शादी' नाटक के मंचन-अनुभव से मैंने जाना कि कक्षा के बाहर हर रोज़ तीन-तीन, चार-चार घंटे नाटक के पूर्वाभ्यास के दौरान इस दायित्व का बेहतर और अधिक कारगर निर्वाह किया जा सकता है। विदेशों में हिंदी-भाषा-शिक्षण के समांतर हिंदी-नाट्य-मंचन जैसी सांस्कृतिक गतिविधियों के अधिक ठोस और दूरगामी परिणाम सामने आते हैं। मेरे उस दौर के अनेक विद्यार्थी आज अलग-अलग ढंग से हिंदी से जुड़े हुए हैं। मसलन, दो विद्यार्थी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं तथा दो रेडियो जापान की हिंदी-सेवा में कार्यरत हैं। इस समय जापान में अनेक ऐसे भूतपूर्व विद्यार्थी मिल जाएंगे, जिनकी हिंदी-नाटक में रुचि और गति रही है।

'साचिको की शादी' नाटक के मंचन के अनुभव ने ओसाका विदेशी भाषा-अध्ययन विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर तोमिओ मिज़ोकामि को इतना प्रेरित व उत्साहित किया कि उन्होंने हर वर्ष हिंदी नाटक का मंचन करने की ठान ली। फलस्वरूप, जापान में हिंदी नाट्य-मंचन की ठोस परम्परा तो आगे बढ़ी ही, कालांतर में जापानियों द्वारा हिंदी नाटक के मंचन ने एक अंतर्राष्ट्रीय आयाम ग्रहण कर लिया।

विदेशी विश्वविद्यालयों के अपने अध्यापन-अनुभव के आधार पर मैं कहना चाहता हूं कि हिंदी-शिक्षण की प्रविधि के रूप में हिंदी-नाट्य-मंचन के लिए ऐसे नाटकों या कहानियों-उपन्यासों के अंशों का प्रयोग करना श्रेयस्कर व सार्थक होगा, जिनके माध्यम से भारतीय संस्कृति व जीवन-पद्धति के वैशिष्ट्य तथा 'विदेश' व भारत की परिस्थितियों और लोक-व्यवहारों के बीच की समानता-असमानता को सहज रूप में रेखांकित किया जा सके।

visproharwar@yahoo.com

लेखक वरिष्ठ आलोचक और इग्नू में प्रोफेसर हैं। उनके पास विदेशों में हिंदी शिक्षण का लम्बा अनुभव है।

एलिन पेलिन के वेष में

सत्यकाम

प्रेमचंद को अरसे से पढ़ता और पढ़ाता रहा हूं। परंतु बल्गारिया के विद्यार्थियों को प्रेमचंद की कहानियों से रू-ब-रू कराना बिलकुल नया अनुभव रहा है। कहानियों के चयन का ज़िम्मा विभाग ने मेरे ऊपर सौंपा और मैंने जो कहानियां चुनीं वे इस प्रकार हैं :

'पूस की रात' प्रेमचंद, 'उसने कहा था' चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, 'खेल' जैनेन्द्र कुमार, 'चीफ की दावत' भीष्म साहनी, 'बादलों के घेरे' कृष्णा सोबती, 'सजा' मन्नू भंडारी, 'रतिनाथ का पलंग' सुभाष पंत। इन कहानियों के ज़रिए विद्यार्थी न केवल हिन्दी कहानी के विविध रूपों और विषयों से परिचित हुए बल्कि इससे उन्हें भारतीय संस्कृति और समाज के विभिन्न पक्षों की भी जानकारी मिली। भारतीय दाम्पत्य जीवन और प्रेम जैसे विषयों में विद्यार्थियों ने खास रूचि ली।

आम तौर पर यही लगता है कि भाषा स्वाभाविक रूप से प्राप्त होती है परंतु सब जानते हैं कि ऐसा नहीं है। एक बच्चे का धीरे-धीरे अपनी मातृभाषा का ज्ञान होना भी अभ्यास पर आधारित है। हम पहले भाषा बोलना सीखते हैं तब पढ़ना, लिखना। एक निरक्षर व्यक्ति भी कोई न कोई भाषा बोलता ही है। द्वितीय भाषा यानी मातृभाषा से अलग भाषा सीखना, खास तौर पर उसे बोलना एक कठिन अभ्यास है और इससे मेरे विद्यार्थी भी जूझते हैं। द्वितीय भाषा सीखने में मातृभाषा ही सबसे बड़ी बाधा बनती है क्योंकि उसका जो सॉफ्टवेयर हमारे दिमागी कम्प्यूटर में संयोजित होता है वह दूसरे भाषा के सॉफ्टवेयर को प्रवेश करने की अनुमति नहीं देता है। इसके लिए हमें फिर से प्रोग्रामिंग करनी पड़ती है। मनुष्य भी जब दूसरी भाषा सीखने लगता है तब उसकी मातृभाषा की ध्वनियां, व्याकरण और कुल मिलाकर भाषिक संरचना दूसरी भाषा से मेल नहीं खाती और उसे अपनी भाषा के दायरे से बाहर निकलना पड़ता है।

हिन्दी कहानी और खासकर प्रेमचंद की 'पूस की रात' पढ़ाते वक्त मैंने एक प्रयोग किया और मुझे यह बताते हुए काफी खुशी हो रही है कि यह प्रयोग काफी सफल रहा। मैंने अपने विद्यार्थियों को गृह कार्य दिया, ग्रामीण जीवन और समाज के वंचित और शोषित वर्ग के जीवन की कथा लिखने वाले बल्गारियाई कथाकार की खोज। अगली कक्षा में विद्यार्थी एक बल्गारियाई लेखक एलिन पेलिन के बारे में सूचना इकट्ठा कर लाए। एलिन पेलिन का मूल नाम दिमितेव इवानोव है। वे प्रेमचंद के समकालीन कथाकार (1817-1949) हैं और इनकी रचनाओं के केन्द्र में गांव, किसान और खेतिहर मजदूर हैं। प्रेमचंद और एलिन पेलिन

का रचनाकाल तो एक है ही, रचना दृष्टि और जीवन दर्शन में भी अदभुत साम्य है। दोनों रचनाकार एक ही समय अलग-अलग देश और परिवेश में गांवों और किसानों की दुर्गति और दुर्दशा का चित्रण करने के साथ-साथ भावी राष्ट्र कैसा हो इसकी तस्वीर भी पेश कर रहे थे। राष्ट्र की चिंता इन दोनों ही लेखकों का मुख्य सरोकार है जिसके केन्द्र में हैं किसान। उदाहरण के लिए 'गर्मियों का एक दिन' (एलिन पेलिन) कहानी में नशे में धुत्त पात्र कहता है, 'मैं पीता हूं, मुझे तो शराब दो...ही-ही-ही। ...अबे! हम गरीब हैं दयादका...ग-री-ब हैं हम। चाहे खेतों में खटें या न खटें एक ही बात है उससे होना-हवाना कुछ नहीं है।'

एलिन पेलिन के इस कथन के संदर्भ में विद्यार्थियों को हल्कू का यह कहना कि 'मजदूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें' सटीक रूप में समझ में आया। 'पूस की रात' के संदर्भ में इस कहानी को देखना दिलचस्प रहा और विद्यार्थियों की दिलचस्पी भी बढ़ी। इसी प्रकार जब एलिन पेलिन के 'कटाईगार' और प्रेमचंद की 'पूस की रात' के अलाव को एक साथ रखकर विचार किया तो विद्यार्थियों को भी लगा कि बल्गारिया के किसान और भारत के किसान की नियति एक जैसी है। यह अलाव ठंड में किसान का आसरा भी है और किसानों के भीतर धधक रही आग का प्रतीक भी। दोनों ही कहानियां क्रमश: एक किसान और मजदूर के अभाव और मुक्ति के प्रयास के रूप में उभरती है। यह कहने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं है कि एलिन पेलिन और प्रेमचंद की कहानियों को साथ रखकर पढ़ने से विद्यार्थियों को प्रेमचंद की कहानियों और उनके पात्रों को समझने में मदद मिली। एलिन पेलिन और प्रेमचंद की कहानियों में साम्य विद्यार्थियों को दिलचस्प लगा। 'दो बैलों की कथा' का ऑडियो पाठ (एनसीईआरटी द्वारा तैयार) विद्यार्थियों ने सुना और फिर एलिन पेलिन का 'बूढ़ा बैल', 'एक मुलाकात' और 'खेत पर' जैसी कहानियां विद्यार्थियों ने गृहकार्य में पढ़ी। इस प्रकार विद्यार्थियों को एलिन पेलिन की रचनाओं के मार्फत प्रेमचंद और उनकी रचनाओं को समझने में मदद मिली और एक दिन मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मेरी एक छात्रा पुस्तकालय से 'मानसरोवर' ले रही है।

प्रेमचंद की भाषा में ऐसे शब्दों की भरमार है। इनका ग्रामीण भाषा में तद्भवीकरण हो जाता है या लोकभाषा की चक्की में पिसकर उनका वेष भी बदल जाता है। 'पूस की रात' पढ़ाते समय जो शब्द मुझे मिले उनका जिक्र मैं कर रहा हूं : जनम (जन्म), मजूरी (मजदूरी), कम्मल (कम्बल), दरद (दद), बाचा (बच्चा), भागवान (भाग्यवान) आदि। कुछ शब्द तो ठेठ ग्रामीण शब्द हैं जैसे टांठा (जवान), चिचोड़ना (चबाना), दंदाना (तीव्रता), हार (खेत)।

प्रेमचंद की भाषा को मानक मानने पर भाषा शिक्षण में मानकीकरण के सवाल पर भी विचार करना चाहिए। प्रेमचंद की रचनाओं में आता है जमावेगा, आवेगा, जावेगा और आज इनका मानकीकृत रूप है जमाएगा, आएगा, जाएगा। प्रेमचंद की रचनाओं में लोक जीवन और कृषि संस्कृति से जुड़े अनेक शब्द आते हैं जिन्हें विशेष तौर पर विद्यार्थियों को बताया जाना चाहिए जैसे पुआल, खटोला, गाढ़े की चादर, दोहर, चिलम, टप्पा आदि।

अंत में, प्रेमचंद के पाठ की विश्वसनीयता का सवाल भी महत्वपूर्ण है। प्रेमचंद की रचनाओं से मिल्कियत (रॉयल्टी) की सीमा समाप्त होने के बाद पाठ की विश्वसनीयता का सवाल खड़ा हो गया है। इसके कई अशुद्ध पाठ और घटिया संस्करण भी सामने आ रहे हैं। उनसे सावधान रहने और बेहतर संस्करण का चुनाव अपेक्षित है। इन चुनौतियों, अपेक्षाओं और सावधानियों को ध्यान में रखकर प्रेमचंद की भाषा को आधार, मानक और प्रतिमान मानकर भाषा शिक्षण को सुदृढ़ और कारगर बनाया जा सकता है। प्रेमचंद के वेष में एलिन पेलिन को देखना बड़ा ही सुखद रहा। प्रेमचंद आज भी प्रासंगिक हैं। उनकी रचनाओं के माध्यम से ही भारत की असल तस्वीर बनती है। ऐसे में प्रेमचंद को भारत में ही नहीं पूरी दुनिया में पढ़ाना लाजिमी है।

satyakamji@gmail.com

भाषा और संस्कृति की ख़ुशबू नृत्य में

शशिप्रभा तिवारी

लेखिका प्रसिद्ध संगीत समीक्षक हैं। सांगीतिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर उनकी टिप्पणियां नई पीढ़ी को प्रोत्साहित करने वाली होती हैं।

भारतीय शास्त्रीय नृत्य को साधना माना जाता है। नृत्य देह और आत्मा का संपूर्ण और समग्रता का पर्याय है। वह आत्मा में देह का ओर देह में आत्मा का महोत्सव है। वह यथार्थ का आनंद उत्सव है। जिसमें हर अंग को अपने होने का आनंद मनाता है। वास्तव में, नृत्य वह अवसर होता है, जब देह के सब अंग बोलते हैं, अपने मौन को तोड़ने की कोशिश करते हैं और अपनी अलग-अलग उपस्थिति की समेकित कविता गढ़ते हैं। नृत्य के दौरान नर्तक या नृत्यांगना की आंखें बोलती हैं, हाथ देखते हैं, पांव याद करते हैं, चेहरे स्पर्श करते हैं। मन में उठते भाव देह की किसी न किसी गति या क्रिया से साकार हो जाते हैं।

भारतीय शास्त्रीय नृत्य विश्व परिदृश्य में अन्यतम है। इसमें मानवीय भावों-संवेदनाओं को झंकृत करने की अतुलनीय क्षमता है। आज के परिदृश्य में भी हर समर्पित कलाकार का सपना होता है कि वह अपने नृत्य या संगीत से भाव और रस की धारा प्रवाहित करे। वह नंदिकेश्वर के 'अभिनयदर्पण' के श्लोक के अनुसार जहां हाथ हो वहां दृष्टि, जहां दृष्टि हो वहां मन, जहां मन हो वहां भाव और जहां भाव हो वहां रस होना चाहिए। नृत्य की परिकल्पना रस और भाव के बिना नहीं की जा सकती है। क्योंकि नृत्य की आत्मा साहित्य और संगीत की तरह नवरस में ही समाहित है। भाव और रस के पारस्परिक संयोग से ही अभिनय पूर्ण होता है। जिस प्रकार सुस्वादु पकवान में व्यंजन और मसाले दोनों का संयोग रहता है, उसी तरह श्रेष्ठ अभिनय में रस और भाव एक-दूसरे से मिले रहते हैं। चाहे वह उत्तर भारत का कथक नृत्य हो या दक्षिण का भरतनाट्यम या कथकलि या कुचिपुड़ी या पूर्वोत्तर का मणिपुरी या सत्रिय नृत्य।

यहां सबसे पहले कथक के संदर्भ में चर्चा शुरू करते हैं। कला मर्मज्ञ डॉ. कपिला वात्स्यायन के अनुसार कथक नृत्य में भारतीय परंपरा और साहित्य में जो कुछ उत्कृष्ट है वह उसमें निहित है। लेकिन, ऐसा भी हुआ है कि किसी कला-विधा का कोई विशिष्ट रूप परंपरा से विच्छिन्न होकर विकृत हो गया है और हम उसका मौलिक रूप भूल गए हैं। कालांतर में कथक नृत्य पर ब्रज की रासलीला का भी बहुत प्रभाव पड़ा।

कथक के खुलेपन के बरक्स दक्षिण भारतीय शास्त्रीय नृत्यों- भरतनाट्यम, मोहिनीअट्टम,

कुचिपुड़ी के प्रदर्शन, अधिकांश नृत्य विधाओं में कुछ प्रसंग मिथक और इतिहास के ऐसे हैं, जिनका प्रयोग और प्रदर्शन अब तक रूढ़ि या परिपाटी की तरह होता चला आ रहा है। जैसे-सीता स्वयंवर, दशावतार वर्णन, शिव तांडव, कृष्ण लीला के विभिन्न प्रसंग। इस बारे में नृत्यांगना सोनल मानसिंह बताती हैं कि दरअसल, जो प्रसंग आसानी से जनमानस में बैठ और रच-बस गए हैं, उनका प्रयोग कलाकार आसानी से करते रहते हैं। ज़्यादातर कथा प्रसंगों में, जो एक आम आदमी को आसानी से ग्राह्य है। इनके प्रचलन में उन प्रसंगों का बार-बार दोहराया जाना आसानी से दर्शकों को कम्युनिकेट करता है।

बहरहाल, शास्त्रीय नृत्य की विभिन्न शैलियों में कलाकार तमिल, तेलुगु, संस्कृत के अलावा, ब्रज भाषा, हिंदी, उर्दू, गुजराती, मराठी रचनाओं, सूफी रचनाओं पर नृत्य कर रही हैं। महाकवि कालिदास, तुलसीदास, विद्यापति सूरदास, मीराबाई, रामधारी सिंह 'दिनकर', मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं पर नृत्यांगनाएं भरतनाट्यम नृत्य पेश कर रही हैं। वहीं मराठी के संत कवियों रामदास, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, बाहिनाबाई, सोयराबाई, बेनाबाई, जनाबाई की रचनाओं पर कथक और भरतनाट्यम नृत्य प्रस्तुत किया जा रहा है। कथक में जयदेव की अष्टपदी, महाकवि कालिदास, अष्टछाप कवियों, अमीर खुसरो, छायावादी कवियों, मांगनियार गायकों आदि की रचनाओं पर आधारित नृत्य पेश कर अभिनव प्रयोग किए जा रहे हैं। इतना ही नहीं, ओडिशी में तुलसीदास के रामचरितमानस पर आधारित नृत्य रचनाएं, कबीर, महाराजा स्वाति तिरूनाल की रचनाओं को नृत्य में ढाला जा रहा है। गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की रचनाओं पर कथक, भरतनाट्यम, ओडिशी, कुचिपुड़ी, मोहिनीअट्टम, कथकलि नृत्य पेश किया जा रहा है। इस तरह से देखें, तो हिंदी समेत कई भाषाएं नृत्य की सेवा कर रही हैं।

shashiprabha.tiwari@gmail.com

जां मेरी हिंदी, मां मेरी हिंदी

पवन दीक्षित

जां मेरी हिंदी, मां मेरी हिंदी,
कितनी है शीरीं, ज़ुबां मेरी हिंदी!

दर्शन की भाषा है, चिंतन की भाषा
पूजा की थाली, ये अर्चन की भाषा
आशा किरण है ये जीवन की भाषा
हर मन की भाषा, ये जन-जन की भाषा
सुनने समझने में, आसां मेरी हिंदी!

राग द्वेष हिंदी के मन में नहीं है
ख़ार कोई इसके चमन में नहीं है
नफ़रतों की बोली चलन में नहीं है
इसके जैसा तारा गगन में नहीं है
हर दिल का सच्चा बयां मेरी हिंदी!

मित्र भाव रखती है हिंदी हमारी
आत्मसात करती है भाषाएं सारी
हिंदी ने कोई ना भाषा नकारी
हिंदी को 'ना' न कहो, है मां हमारी
आओ विश्व घोष करें, 'हां' मेरी हिंदी।

kavipawandixit@gmail.com

सहयात्री हिंदी वेब-लिंक्स

रेखा श्रीवास्तव

लेखिका रचनात्मक लेखन, अनुवाद एवं शोध कार्यों में संलग्न हैं। बच्चों के लिए लिखी कहानियों की एक पुस्तक 'पॉली आंटी की बगिया' को सर्वत्र सराहना मिली। आपकी रचनाएँ प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित होती रहती हैं।

इन दिनों गूगल सर्च का बोलबाला है। छोटी-छोटी जानकारियों के लिए हम गूगल की शरण में जाते हैं। किसी एक प्रविष्टि के लिए हज़ारों की संख्या में परिणाम आ भी जाते हैं, लेकिन सवाल ये है कि उनकी वरीयता का क्रम क्या होता है? खोजनेवाला पहले आठ-दस खोज परिणामों तक तो जाता है, उसमें आगे जाने का धैर्य नहीं होता, जबकि श्रेष्ठ सामग्री नई जानकारियों के कारण पीछे धकेली जा चुकी होती है। इसलिए इस बात की आवश्यकता महसूस की गई थी कि हिन्दी भाषा सीखने वाले और विदेश में रहकर हिन्दीभाषा का अध्ययन करने वाले हिंदी प्रेमियों को एक ही स्थान पर प्रमुख वेबसाइटों की जानकारी मिल सके। जिसका उपयोग वे अपने अध्ययन में कर सकें। इन वेब-लिंकों को देने के पीछे हमारी यह भी कोशिश हैं कि हिन्दी भाषा को इंटरनेट के माध्यम से जिन लोगों ने समृद्ध करने की कोशिश की है उनकी यह कोशिश भी सभी के सामने आए। लोग इस वर्चुअल समृद्धि का लाभ तो उठाएं ही साथ ही दूसरे लोगों को भी इनका उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करें।

आज तकनीक के समय में यही वे साधन हैं जो देश की सीमा से बाहर निकालकर वैश्विक स्तर पर लोगों को एकजुट कर सकता है। हिन्दी साहित्य की शक्ति, हिन्दी भाषा की मिठास और भारतीय संस्कृति की छाप इंटरनेट के माध्यम से पूरे विश्व में फैले यही कोशिश है। पाठकों की सुविधा के लिए वेब लिंक्स को क्रमबद्ध तथा विषयानुसार संग्रहीत किया है ताकि उपयोग करना बहुत ही सुविधाजनक हो।

हिंदी पत्रिकाएं

साहित्य कुंज	[http://www.sahityakunj.net]
चंदामामा	[http://www.chandamama.com]
लघुकथा	[http://www.laghukatha.com]
पांचजन्य	[http://www.panchjanya.com]
साहित्य सरिता	[http://www.hindi.sahityasarita.org]

भारत दर्शन	[http://www.bharatdarshan.co.nz]
वागर्थ	[http://www.vagarth.com/]
मेरी सखी	[http://www.merisakhi.in]
हिंदी नेस्ट	[http://www.hindinest.com/]
हिंदी परिचय	[http://www.hindiparichay.com/]
लेखनी	[http://www.lekhni.net/]
भारतीय पक्ष	[http://www.bhartiyapaksha.com]
अन्यथा	[http://www.anyatha.com]
तदभव	[http://www.tadbhav.com]
अनुरोध	[http://www.anurodh.net]
मीडिया-विमर्श	[http://www.mediavimarsh.com]
देवपुत्र	[http://www.devputra.com]
निरंतर	[http://www.nirantar.org/]
ताप्तिलोक	[http://www.taptilok.com/]
उदंती	[http://www.udanti.com]
कलायन पत्रिका	[http://www.kalayan.org/]
कथाक्रम	[http://www.kathakram.in/]
हिमालिनी	[http://www.himalini.com]
देशकाल	[http://www.deshkaal.com]
ख़बर इंडिया	[http://www.khabarindiya.com]
सृजनगाथा	[http://www.srijangatha.com]
हिंदी मागजीने नेपाल	[http://www.himalini.com]
कल्पना	[http://www.kalpana.it]
समयांतर	[http://www.samayantar.com]
स्वर्गविभा	[http://www.swargvibha.tk]
अनुभूति	[http://www.anubhuti-hindi.org]
कौतुभी	[http://www.kautubhi.com]
कृत्या	[http://www.kritya.in]
अपनी माटी	[http://www.apnimaati.com]
ज़िंदगी माटी	[http://zindagilife.com]
गृह लक्ष्मी	[http://www.dpb.in/magazines]
देशकाल	[http://www.deshkaal.com]
कविता किताब	[http://www.hindi-poetry.com]
अक्षर पूर्व	[http://www.aksharparv.com]
गीता कविता-संग्रह	[http://www.geeta-kavita.com]

साहित्य कोश एवं शब्दकोश

कविता कोश	[http://www.kavitakosh.org]
सरल हिंदी	[http://www.saralhindi.com]
साहित्य वैभव	[http://www.sahityavaibhav.com]
समकालीन साहित्य	[http://www.samakalinsahitya.com]
हिंदी गगन	[http://www.hindigagan.com]
हिंदी-अंग्रेज़ी शब्दकोश	[http://www.shabdmala.com]
हिंदी सेवा	[http://www.hindisewa.com]
हिंदी भाषी	[http://www.hindibhashi.com]
हिंद युग्म	[http://www.hindyugm.com]
हिंदी-अंग्रेज़ी शब्दकोश	[http://www.aksharamala.com]
उर्दू से हिंदी शब्दकोश	[http://urduwhindi..blogspot.com]
शब्दकोश.कॉम	[http://www.shabdkosh.com]

राष्ट्रीय पोर्टल

भारत का राष्ट्रीय पोर्टल	[http://www.bharat.gov.in]
राजभाषा विभाग	[http://www.rajbhasha.gov.in]
राष्ट्रीय ज्ञान आयोग	[www.knowledgecommission.gov.in]
लोकसभा चुनाव	[http://www.loksabhachunav.com]
बी.एस.एन.एल.	[http://www.bsnl.co.in]
भारतीय भाषाओं के लिए	[http://www.ildc.in/hindi]
केंद्रीय हिंदी निदेशालय	[www.hindinideshalaya.nic.in]
भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान केंद्र	[http://www.isro.org]
केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल	[http://www.hindisansthan.org]
सूचना कार्यालय	[http://pib.nic.in]
भुवन (इसरो)	[http://www.bhuvan.nrsc.gov.in]
भारत विकास प्रवेश द्वार	[http://www.indg.in/india]
इफको	[http://www.iffco.nic.in]
भारतीय राज्य फार्म निगम	[http://www.sfci.nic.in]
भारत जल पोर्टल	[http://www.indiawaterportal.org]
टी डी आई एल	[http://www.tdil.mit.gov.in]
भारतीय विमानपत्तन प्रा.	[http://www.airportsindia.org.in]
हिंदुस्तान एरोनॉटिक्स लि.	[http://www.hal-india.com]
पीएफसी	[http://www.pfcindia.com]
टी सी आई एल	[http://www.tcil-india.com]

वेब पोर्टल

भारतकोश	[http://www.bharatkosh.org]
वेब दुनिया	[http://www.webdunia.com]
स्वतंत्र आवाज़	[http://www.swatantraawaz.com]
याहू हिंदी में	[http://in.hindi.yahoo.com]
तरकश	[http://www.tarakash.com]
कैफेहिंदी	[http://cafehindi.com]
हिंदी वेब	[http://www.hindiweb.net]
एम.एस.एन.हिंदी में	[http://www.msn.co.in/hindi]
हिंदी सागर	[http://www.hindisagar.com]
सिफी-वेब पोर्टल	[http://www.sify.com/hindi]
हिंदी पोर्टल	[http://www.thatshindi.oneindia.in]
रोजगार समाचार	[www.rojgarsamachar.gov.in]
रविवार	[http://www.raviwar.com]
माई वेब दुनिया	[http://www.mywebdunia.com/]
नुक्कड़	[http://www.nukkad.info]
विस्फोट	[http://visfot.com]
अ ओ एल (AOL) हिंदी में	[http://www.aol.in/hindi/]
ओपन ऑफिस	[http://www.hi.openoffice.org/]
राष्ट्रीय पोर्टल	[http://India.gov.]

भड़ास 4 मीडिया	[http://www.bhadasymedia.com]
प्रभा साक्षी	[http://www.prabhasakshi.com/]
जन संदेश	[http://www.jansadesh.com]
एन.एन.आई. न्यूज	[http://www.nnilive.com]
पत्रकारिता कोश	[http://hindustanimedia.com]
कावेरी न्यूज	[http://www.kaverinews.com]
वेब वार्ता	[http://www.webvarta.com]
अपनी बात	[http://www.apnibaat.org/]
मीडिया मंच	[http://www.mediamanch.com]
ख़बरयार	[http://www.khabaryaar.tk/]आंजरिया
भोजपुरी पोर्टल	[http://www.anjoria.com]
गुडप्लेस फोर आल	[http://www.agoodplaceyall.com]
स्वपन ऑनलाइन	[http://www.swapanonline.com]

शिक्षा

जेएनयू	[http://www.jnu.ac.in]
दिल्ली विश्वविद्यालय	[http://www.du.ac.in]
इग्नू	[http://www.ignou.ac.in]
महात्मा गांधी अं.हिं.वि.वि.	[http://www.hindivishwa.org]
एनसीईआरटी	[http://www.ncert.nic.in]
हिंदी विकिपीडिया	[http://hi.wikipedia.com]
कम्प्यूटर शिक्षा	[http://www.tech-faq.com/lang/hi/]
हिंदी पुस्तकें	[http://www.pustak.org/]
सरल हिंदी	[http://www.saralhindi.com]
निरोग स्वास्थ्य पत्रिका	[http://www.nirog.info]
कैरियर सलाह	[http://www.careersalah.com]
पुस्तक संग्रह	[http://www.hinkhoj.com]
तकनीक कॉम	[http://takneek.com]
कैरियर दिशा	[http://www.careerdisha.org]
इग्नू	[http://www.ignou.ac.in]
अक्षय जीवन	[http://www.akshyajeevan.com]
आई.आई.टी. कानपुर	[http://www.iitk.ac.in/hindi]
भाषिणी	[http://www.bhashini.com]
आई.आई.टी. बॉबे हिंदी में	[http://www.iitb.ac.in/hindi/]
आई.आई.टी. दिल्ली	[http://www.iitd.ac.in]

हिंदी शिक्षण/ यंत्र/हिंदी निर्देशिका

मस्ट डाउनलोड	[http://www.mustdownloads.com/]
गुरूजी हिंदी खोज	[http://www.guruji.com/hi]
विस्फोट.कॉम	[http://www.visfot.com/]
रफ्तार हिंदी में खोजें	[http://www.raftaar.com]
हिंदी टूलबार पिटारा	[http://hindiblog.ourtoolbar.com/]
यूनीकोड हिंदी यंत्र	[http://www.unicodehindi.com]
हिंदी ब्लॉग्स	[http://www.hindiblogs.org]
हिंदी कलम	[http://hindikalam.com]
हिंदीखोज.कॉम	[http://www.hinkhoj.com]
भारतीय भाषाओं के लिए	[http://www.ildc.in/hindi]
यंत्र हिंदी खोजक	[http://yanthram.com/hi]
छहारी हिंदी कीबोर्ड	[http://www.chhahari.com/unicode]
हिंदी गियर	[http://www.hindigear.com]
हिंदी एडिटर	[http://www.hindieditor.com]
संधान हिंदी खोज	[http://www.sandhaan.com]
नारद-हिंदी चिट्ठा संग्रहक	[http://narad.akshargram.com]
राईटका हिंदी टकण यंत्र	[http://www.writeka.com]
वलपैड हिंदी टकण	[http://quillpad.com/hindi]
हिंदी वर्ड प्रेस	[http://www.wordpress.com]
हिंदी की बिंदी	[http://Hindikibindi.com/index.php]
तरकश संचिका	[http://www.tarakash.com/dir]
पॉड-भारती	[http://www.podbharti.com]
ब्लॉग वाणी	[http://www.blogvani.com]
चिट्ठा जगत	[http://www.chitthajagat.in]
ब्लॉग लिखी	[http://bloglikhi.com/]
सारथी-हिंदी चिट्ठा संग्रहक	[http://sarathi.info/]
युयम-समाचार संग्रहक	[http://hindi.yuyam.com/]
हिंदी संसार	[http://www.hindisansar.com/]
विश्व हिंदी	[http://www.vishwahindi.com/]
अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति	[http://www.hindi.org]
राष्ट्रीय स्वाभिमान आंदोलन	[http://www.swabhiman.in]
अक्षरग्राम हिंदी चिट्ठा समाज	[http://www.akshargram.com/]
पिन कोड खोजें	[http://hi.pincode.net.]

धर्म

इस्लाम हाउस	[http://www.islamhouse.com]
अल कुरान	[http://www.aquran.com]
सनातन संस्था	[http://www.sanatan.org]
गुरु जी महाराज	[www.gurujimaharaj-ki-vani.info]
बाइबल कोर्स	[http://www.biblecourses.com/hi]
ओशो टाइम्स ऑनलाइन	[http://www.osho.com]
अल-शिया (हिंदी)	[http://www.al-shia.com/html/hin]
साईं लीला	[http://www.thesaileela.com]
आर्य समाज	[http://www.aryasamaj.org/newsite/]

खेल

इंडिया स्पोर्ट्स	[http://www.indiasports.page.tl]
क्रिकेट टुडे	[www.dpb.in/magazines]
दिमाग़ बढ़ाने वाले खेल	[http://www.gamesforthebrain.com]
हिंदी खेल	[http://forum.hinkhoj.com]
आई.पी.एल.क्रिकेट समाचार	[http://www.iplnewsonline.com]
दैनिक भास्कर खेल-खिलाड़ी	[http://www.bhaskar.com/sports/]
जागरण क्रिकेट	[http://ind.jagran.com/cricket/]

वेब दुनिया खेल	[http://www.webdunia.com/sports/]
जोश का खेल पे वेबपेज	[http://www.joshv.com/sports.html]
राजस्थान पत्रिका	[http://www.rajasthanpatrika.com]
इंडियन क्रिकेट लीग	[http://www.indiancricketleague.in]
ट्रेवियन	[http://he.travian.in/]
एशियन फुटबॉल कंफेडरेशन	[http://www.the-afc.com/hindi/]

अख़बार

महानगर टाइम्स	[http://www.mahanagartimes.net/]
अपनी दिल्ली	[http://www.apnidilli.com]
बिहार ऑनलाइन	[http://www.biharonline.gov.in]
हरि भूमि	[http://www.haribhoomi.com/]
इंडियन न्यूज़ सर्विस	[http://www.indiannewsservice.com]
नवभारत टाइम्स	[http://www.navbharattimes.com]
दैनिक जागरण	[http://www.jagran.com]
दैनिक भास्कर	[http://www.bhaskar.com]
बी.बी.सी.हिंदी ख़बरें	[http://www.bbc.co.uk/hindi]
डेली हिंदी न्यूज	[http://www.dailyhindinews.com]
अमर उजाला	[http://www.amarujala.com]
एनडीटीवी ख़बर	[http://www.ndtvkhabar.com/]
जनादेश	[http://www.janadesh.in]
आजतक सबसे तेज	[http://www.aajtak.in]
राष्ट्रीय सहारा	[http://www.rashtriyasahara.com]
तहलका हिंदी	[http://www.tehelkahindi.com/]
राजस्थान पत्रिका	[http://www.rajasthanpatrika.com]
हिंदुस्तान दैनिक	[http://livehindustan.com]
सहारा समय समाचार	[http://www.saharasamay.com]
प्रतिवाद	[http://www.prativad.com]
इंडिया टुडे	[http://hindi.india-today.com/]
दैनिक जागरण ई-पेपर	[http://epaper.jagran.com/]
नई दुनिया	[http://www.naidunia.com]
यूनी वार्ता	[http://www.univarta.com/]
बिज़नेस स्टैण्डर्ड हिंदी में	[http://hindi.business-standart.com]
नवभारत	[http://www.navabharat.net/]
आई.बी.एन.ख़बर	[http://www.khabar.joshv}.com/]
प्रभात ख़बर	[http://www.prabhatkhabar.in]
देशबंधु हिंदी अख़बार	[http://www.deshbandhu.co.in]
अमेरिका की आवाज़	[http://www.voa.gov/hindi]
आज-दैनिक पत्रिका	[http://www.ajsamachar.com/]
ख़ास ख़बर	[http://www.khaskhabar.com/]
ख़बर-नेट	[http://www.khabarnet.co.cc]
सहारा समय	[http://www.samaylive.com/hindi]
टोटल टीवी	[http://totaltv.in]
मेरीव ख़बर	[http://www.merikhabar.com]
पत्रिका.कॉम	[http://www.patrika.com]
न्यूज़-आपकी	[http://www.newsaapki.com]
जन समाचार	[http://www.jansamachar.net]
स्वतंत्र वार्ता	[http://www.swatantravaarttha.com/]
लोकसभा चुनाव	[http://www.loksabhachunav.com/]
इस्पात टाइम्स	[http://www.ispattimes.com/]
समय लाइव	[http://www.up.samaylive.com]
हिंदी समाचार रेटिंग	[http://www.hindipaper.com/]
दैनिक पूर्वोदय	[http://www.dainikpurvoday.com]
हिन्दी खोज	[http://news.hinkhoj.com]
महामीडिया	[http://www.mahamedha.com]
लोकमंच	[http://www.lokmanch.com/]
स्वतंत्र चेतना	[http://www.swatantrachetna.com]
पूर्वांचल समाचार	[www.purvanchalsamachar.com/]
डेली हिंदी मिलाप	[http://www.hindimilap.com/]
द गुजरात	[http://www.thegujarat.com]
हिंदवी	[http://www.hindvi.com]
द संदे इंडियन	[http://hindi.thesundayindian.com/]
इंडियन रूरल न्यूज़ एजेंसी	[http://www.irna-news.com/]
लाइव हिंदुस्तान	[http://www.livehindustan.com]
रांची एक्सप्रेस	[http://www.ranchiexpress.com]
प्रभासाक्षी	[http://www.prabhasakshi.com]
वेबचर्चा.कॉम	[http://www.webcharcha.com]
डोयचे वेले	[http://www.dw-world.de/hindi]
भारतीय ज्ञानपीठ	[http://www.hi.bharatdiscovery.org]
साहित्य अकादमी	[http://www.sahitya-akademi.gov.in]
नेशनल बुक ट्रस्ट	[http://www.nbtindia.gov.in]
पुस्तक खोज	[http://www.pustak.org]
हिंदी भाषी	[http://www.hindibhashi.com]
हिंदी सेवा	[http://www.hindisewa.com]

rekhaashrivastava@gmail.com

हिंदी पावन गंगा

गजेन्द्र सोलंकी

अमर रहे वैभव तेरा, हिंदी मातु महान।
करें हम अंतिम सांस तक, तेरा ही यशगान॥

मेरे देश के बसैया हिंदी को अपनाओ रे!
हिंदुस्तान के बसैया हिंदी को अपनाओ रे!!
'जय हिंदी' का नारा मिलकर सभी लगाओ रे!!!

हिंदी जन-जन के अंतर में प्रेम-सुधा बरसाती है
ज्योति नवल-नूतन हिंदी की, जीवन धन्य बनाती है
मन के गहन तिमिर को हर कर, आशा-दीप जलाती है
नई चेतना भर कर मन में साहस नया जगाती है।

हिंदी दुर्गा, हिंदी काली, सरस्वती कल्याणी है
हिंदी ब्रह्मा, विष्णु औ' शिव की महाशक्ति क्षत्राणी है
हिंदी लक्ष्मी, पार्वती, कमला का है अवतार अमर
शब्द ब्रह्म की अनुपम पुत्री और अनूठी वाणी है।
हिंदी पावन गंगा गोता सभी लगाओ रे!
ओ, मेरे देश के बसैया ....

सूफ़ी, संतों ने जिस भाषा का हर पल यशगान किया
तुलसी, सूर, कबीरा सबने हिंदी का आह्वान किया
वल्लभ, विट्ठल और जायसी, हिंदी का गुणगान किया
मीरा औ' रसखान सभी ने हिंदी अमृत का पान किया।

नानक औ' रैदास, मलूका, भक्तिभाव महकाती है
हों रहीम, रत्नाकर, भूपति हिंदी सबको भाती है
प्रेमचन्द, भारतेन्दु, बिहारी हिंदी सबकी थाती है
केशव, रामानन्द, गजानन का गौरव बतलाती है।
मन के सिंहासन पर हिंदी को बैठाओ रे!
ओ मेरे देश के बसैया ....

बच्चन, पंत, निराला, दिनकर हिंदी-महिमा गाई है
शुक्ल, द्विवेदी औ' भूषण ने भी हिंदी अपनाई है
चंदर बरदाई के छंदों में हिंदी मुस्काई है
नागर, धूमिल, नागार्जुन ने हिंदी-कथा सुनाई है।

जयशंकर औ' गुप्त, सुभद्रा हिंदी-गाथा कहते हैं
स्नातक, केदार, कोहली इस धारा में बहते हैं
देवराज, त्यागी, नेपाली और व्यास भी कहते हैं
हिंदी का आशीष मिला हम सबके दिल में रहते हैं।
हिंदी मां की ममता-छैयां मत बिसराओ रे!
ओ मेरे देश के बसैया ....

विद्यापति, शमशेर, त्रिलोचन, निर्मल, शानी आए हैं
घनानंद हरिऔध और रत्नाकर मन को भाए हैं
रमानाथ, परसाई, जोशी और प्रगल्भ लुभाए हैं
मुक्तिबोध, अज्ञेय, अश्क़ ने हिंदी के गुण गाए हैं।

काकाजी, नीरज, बैरागी, इंदीवर मन भाए हैं
हों प्रदीप या भरत व्यास, हिंदी के गीत सुनाए हैं
विष्णु प्रभाकर, कमलेश्वर ने हिंदी पुष्प खिलाए हैं
माणिक, शैल, आदित्य, चक्रधर हिंदी मंच सजाए हैं।
विजय-पताका हिंदी की जग में फहराओ रे!
ओ मेरे देश के बसैया ....

भाषाओं की नदियां मिलतीं हिंदी ऐसा सागर है
छलक रही अमृत-घट सम जो हिंदी ऐसी गागर है
भारत की रग-रग में बहता हिंदी प्रेम-सुधाकर है
गली-गांव औ' नगर-नगर में हिंदी ज्ञान-प्रभाकर है।

हिंदी, संस्कृत की बेटी है, नित-नित नयी-नवेली है
गुजराती, कन्नड़, मलयालम या बोली बुंदेली है
तमिल, मराठी, बंग्ला, उर्दू, पंजाबी अलबेली है
भारत की हर भाषा अब हिंदी की सखी-सहेली है।
हिंदी-गौरव की सुगंध जग में फैलाओ रे!
ओ मेरे देश के बसैया ....

अंग्रेज़ो, तुम 'भारत छोड़ो', बापू ने उच्चारा था
'ख़ून के बदले आज़ादी' यह नेताजी का नारा था
आज़ादी का हर परवाना, हिंदी में हुंकारा था
'जय जवान औ' जय किसान' भी हिंदी का ही नारा था।

हिंदी ही तो आज़ादी के संघर्षों की शक्ति रही
भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु औ' शेखर की भक्ति रही
अशफ़ाकुल्ला औ' बिस्मिल की हिंदी में अनुरक्ति रही
हिंदी ही तो क्रांति कामना औ' पौरुष-अभिव्यक्ति रही।
हिंदी प्रेम-पुजारी बन सब शीश झुकाओ रे!
ओ मेरे देश के बसैया ....

हिंदी मन की भाषा, हिंदी जन-जन की अभिलाषा हो
नयी सदी, नवयुग में हिंदी नवचेतन की आशा हो
कोटि-कोटि जन प्रेम करे अब ऐसी कुछ परिभाषा हो
हिंदी के मस्तक पर छाया अब तो दूर कुहासा हो।

अपनी भाषा हिंदी अपनी संस्कृति का उद्धार करें
साधक बन ऋषियों-मुनियों के सपनों को साकार करें
अलंकार, रस, छंदों से अब हिंदी का श्रृंगार करें
अपमानित ना हो घर में ही ऐसा कुछ उपचार करें।
सौ करोड़ सब मिल हिंदी को तिलक लगाओ रे!
ओ मेरे देश के बसैया ....

ओ, मेरे देश के बसैया हिंदी को अपनाओ रे!
ओ मेरे देश के बसैया ....

gajender.solanki@gmail.com

'निकष' NIKASH : भाषा दक्षता परीक्षा

प्रस्तुति : प्रो. अशोक चक्रधर
(पूर्व उपाध्यक्ष, केन्द्रीय हिंदी संस्थान)

केन्द्रीय हिंदी संस्थान में रहते हुए एक सपना देखा था कि अंग्रेजी और दूसरी विदेशी भाषाओं के समकक्ष अन्य भाषा हिंदी दक्षता का एक परीक्षण कार्यक्रम बनाया जाए, जो न केवल हिंदी सीखने को प्रोत्साहित करे बल्कि भाषा-दक्षता की परीक्षा भी ले। अध्यापक साथियों और प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों के साथ एक प्रारूप बनाया गया जिसका परिचय सार यहां प्रस्तुत है।

अपनी हिंदी, प्यारी हिंदी, हमारी हिंदी, हम भावनाओं में बहकर कहते हैं, लेकिन बहुतों के लिए हिंदी एक अन्य भाषा है। उनके लिए एक कार्यक्रम—

निकष NIKASH

अंग्रेजी और दूसरी विदेशी भाषाओं के समकक्ष अन्य भाषा हिंदी दक्षता परीक्षण कार्यक्रम
(National & International Knowledge Accreditation Standards for Hindi)

निकष का अर्थ है : कसौटी

यह कौशल एवं दक्षता परीक्षण कार्यक्रम परीक्षार्थियों के चारों भाषाई कौशलों (श्रवण, भाषण, वाचन, लेखन) की दृष्टि से उनके आधारभूत भाषा ज्ञान और कौशल का परीक्षण करेगा और अंतरराष्ट्रीय भाषा दक्षता मानकों के अनुरूप उन्हें क्रेडिट्स प्रदान करेगा। निकष के माध्यम से निर्धारित परिसीमा में उनके हिंदी ज्ञान और कौशल की दक्षता का मूल्यांकन किया जाएगा।

कौन-कौन सीखना चाहेगा?

जिसके लिए हिंदी जरूरी है।

किसके लिए हिंदी जरूरी है-

1. व्यापार और विशिष्ट प्रयोजन
2. शिक्षा और संस्कृति

3. व्यक्तिगत पारिवारिक सामाजिक संबंध (बोलचाल कीभाषा)
4. साहित्य और अनुसंधान

निकष की अभिरचना

- शिक्षण-प्रशिक्षण और सामग्री शिक्षार्थी की मातृभाषा में
- निकष का बहुभाषी इंटरफ़ेस
- निकष परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले शिक्षार्थियों को उनके राज्य या देश में हिंदी शिक्षक, प्रचारक के रूप में नियुक्त किया जा सकता है।

निकष क्यों?

- भारत की राजभाषा और अखिल भारतीय संपर्क भाषा के रूप में हिंदी भारत को जानने और भारत में रहकर काम करने का आधार है।
- आज दुनिया में एक अरब से अधिक हिंदीभाषी हैं और यह संख्या लगातार बढ़ रही है।
- विश्व के 40 से अधिक देशों में हिंदी का लगातार अकादमिक, व्यापारिक एवं विशिष्ट प्रयोजनपरक विस्तार हुआ है।
- आज विश्व के 165 विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों में हिंदी पढ़ाई जा रही है।
- प्रतिवर्ष भारत में दुनिया के विभिन्न देशों से हज़ारों अध्ययनार्थी शिक्षण, प्रशिक्षण, अनुसंधान पाठ्यक्रमों में दाखिला लेते हैं।
- भारतीय भाषा-साहित्य, कला, पुरातत्व एवं संस्कृति, नृविज्ञान, योग, आयुर्वेद, संगीत आदि विभिन्न विषयों पर भारत के उच्च शिक्षण संस्थानों में और संबंधित क्षेत्र विशेष में जाकर अध्ययन अनुसंधान करने वाले विदेशी अध्येताओं के लिए संपर्क, संवाद के लिए हिंदी एक महत्वपूर्ण साधन का काम करती है।
- इस प्रकार की भूभाषिक (Geo linguistic) और बहुसांस्कृतिक (Multicultural) परिस्थितियों में हिंदी के बहुपयोगी अन्य भाषा दक्षता परीक्षण कार्यक्रम (Foreign Language Proficiency Testing Programme) की नितांत आवश्यकता है।
- दुनिया भर में विभिन्न विदेशी भाषाओं के अनेक अन्य भाषा दक्षता परीक्षण कार्यक्रम प्रचलित हैं, जैसे अंग्रेजी में TOEFL, IELTS, फ्रेंच में DELF/ DILF/DALF, स्पेनिश के DELE.

इन्हीं के समकक्ष हिंदी के लिए है NIKASH **निकष।**

इस ऑनलाइन 'अन्य भाषा दक्षता परीक्षण' प्रस्ताव पर विद्वज्जन व्यावहारिकता की ओर ले जाने वाला विचार करें।

ऐसे अहिंदीभाषी जिन्हें लगता है कि उन्हें हिंदी नहीं आती है, वे एक बार निकष पर खरे तो उतरें। जिन्हें आती है वे देखें कि परीक्षा कैसे ली जाती है।

कम्प्यूटर ऑनलाइन परीक्षा लेगा।
सुझाव देगा।
प्रोत्साहित करेगा।

जय हिंद। जय हिंदी॥

इस अंक के छायाचित्रों में एकल छायाचित्र लेखकों से प्राप्त हुए हैं, शेष में से अधिकांश, संपादक के निजि संग्रह से लिए गए हैं। हम छायाकार सर्वश्री नरेश शर्मा, मीनाक्षी पायल, देवेन्द्र राज 'अंकुर', बागेश्री चक्रधर, गगन कोहली, दिविक रमेश, अनुराग चक्रधर, जवाहर कर्नावट, राकेश पांडे और आदित्य चौधरी के आभारी हैं। —सं.

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....
.....
.....
.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....
.....
.....
.....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष.....	एक वर्ष ₹ 500/- (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200/- (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10 % पुस्तक विक्रेता 25 %		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं.....
दिनांक.....
रु./US$..... बैंक.....भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....
नाम.....
पद.....
दिनांक.....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पांच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनांचल (हिंदी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिंद (अरबी) और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल हैं। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिंदी, अंग्रेजी व अन्य भातीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गए हैं।

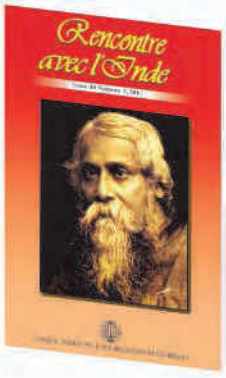

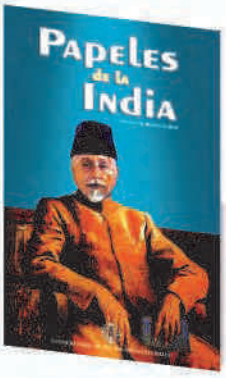

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

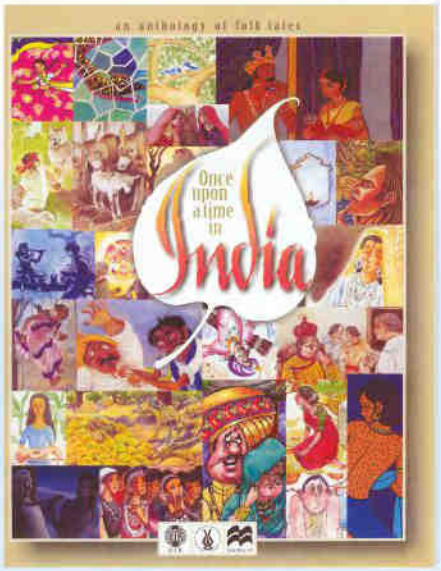

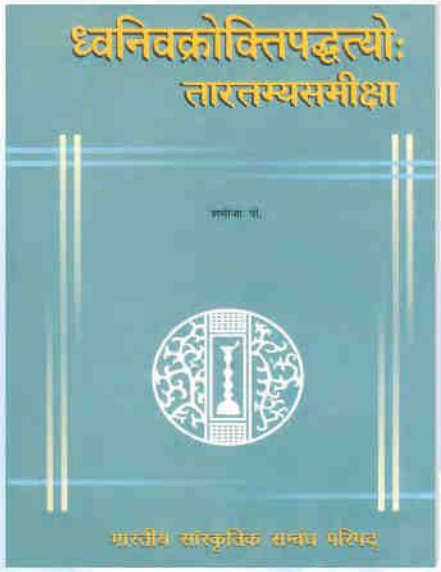

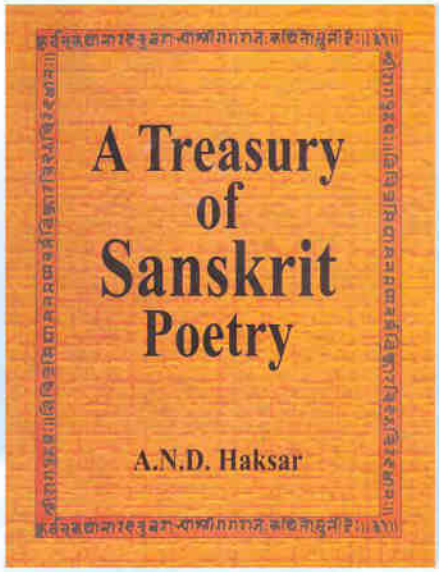

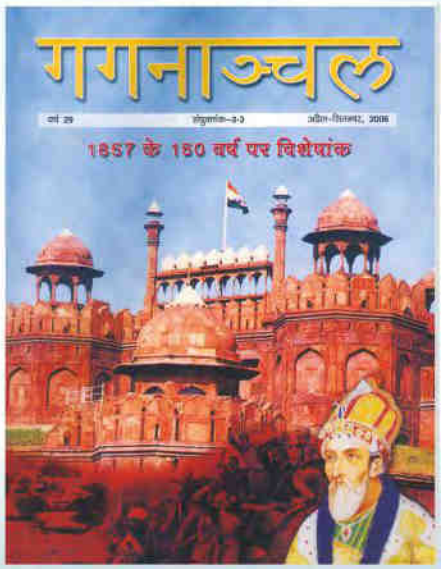

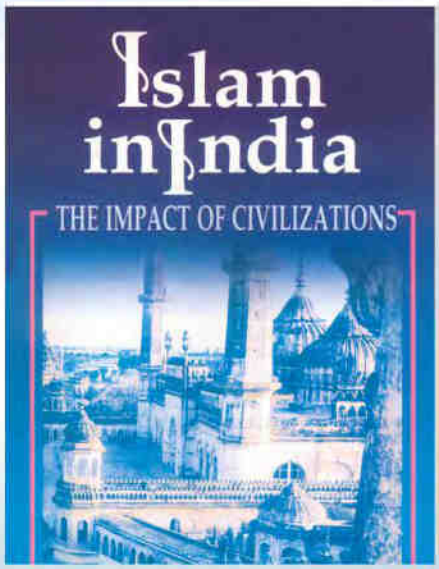

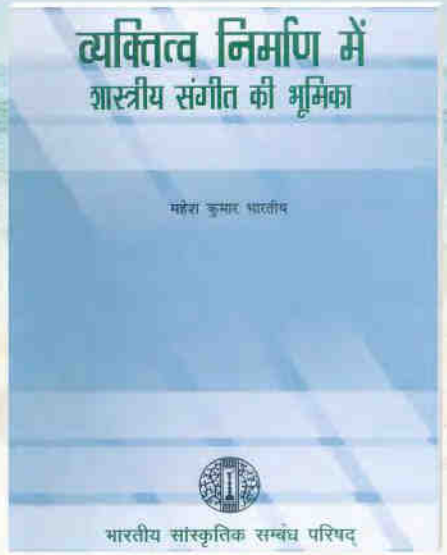

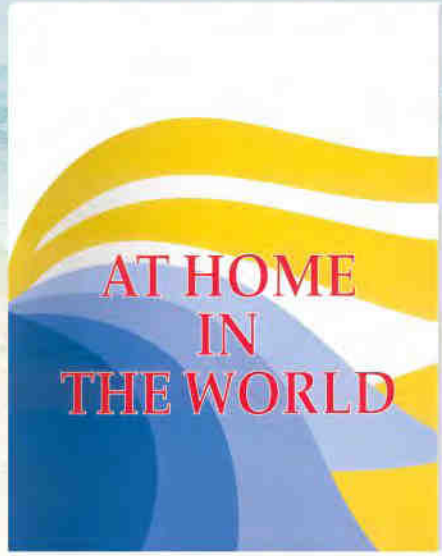

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

हमारे दिलों की गीली हलचलों को
समंदर ले जाता है भू पर,
मणि रत्नों के समान
गूंजती हुई वर्णमाला आ जाती है ऊपर।

विश्व भर में गूंजती यह गूंज
हम सबकी हिंदी ही तो है,
और सूरज गगनांचल में दमकती हुई
हिंदी की बिंदी ही तो है।

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310, 23359355
फैक्स: 23378639, 23378647, 23370732, 23378783
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccr.gov.in